मे कुछ साधु खेती करने के काम को निषिद्ध बताते थे, परन्तु आचार्यश्री ने खेती का महत्त्व शास्त्र सम्मत तरीके से सामने रखा । खेती करना श्रावको के लिये निषिद्ध नही हो सकता, यह उन्होने आनन्द एव कामदेव जैसे श्रावको का उदाहरण देकर बताया । दोनो श्रावक भगवान् महावीर के १२ व्रतधारी श्रावक थे व उनके यहा बहुत बडी खेती होती थी । खेती करने वाला अनाज का उत्पादन करता है जिससे ससार का पोषण होता है । अच्छी तरह से खेती करना, अच्छा अनाज पैदा करना व उचित मूल्य से जनता को देना, इस पवित्र भावना से खेती करनी चाहिये । खेती करना निषिद्ध बताना, यह अकर्मण्यता को प्रोत्साहन देना ही कहा जायगा ।

विदेशी वस्त्र एव मिलो के वस्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिये। इस पर आचार्यश्री काफी बल देते थे । खुद वे खादी का ही उपयोग करते थे । उनके उपदेश से कई श्रावको ने खादी पहनने का व्रत लिया था ।

तपस्या करने के साथ जो आडम्बर किये जाते, उसका भी आचार्यश्री ने घोर विरोध किया था । तपस्या कर्मो की निर्जरा के लिये एव आत्मा को शुद्ध करने के लिये की जाती है । आडम्बर युक्त तपस्या करने से उसका असली उद्देश्य व महत्त्व ही खत्म हो जाता है । तपस्या मे शुद्ध आचार-विचार रख कर धर्म-चितन करना चाहिये ।

साधु-सत एव श्रावक को धर्ममय-जीवन रखने के लिये स्वास्थ्य-युक्त शरीर रखने की नितान्त आवश्यकता है, जिससे मन शात रह सके Healthy mind in healthy body । इस ओर भी उन्होंने समाज का ध्यान आकर्षित किया था । नियमित योगासन करने चाहिये जिससे शरीर नीरोग रह कर धर्म-क्रिया करने मे उत्साह रहेगा । यह बात आचार्यश्री ने सिर्फ दूसरो के लिये ही नही कही, आचार्यश्री स्वय नियमित शीर्षासन, योगासन करते थे । यह स्वय मैंने देखा है ।



परमात्मा का मौखिक नामस्मरण करने से सच्चा शरण नही मिलता । परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट धर्ममार्ग पर चलने से ही सच्चा शरण मिलता है

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

जीवन धर्म के व्याख्याता

○ श्री भूरेलाल बया

पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज जैसे भव्य, उदात्त और गहन गभीर के पदासीन आचार्य प्रवर श्री जवाहरलाल जी महाराज सचमुच ही नरश्रेष्ठ और क्रातिकारी सत थे। यदि उनके शासनकाल का विचार किया जाय तो वह समय ऐसा था, जब सारा देश अग्रेजो की दासता मे जकडा हुआ था और कहने को ६०० के करीब देशी रियासतें और उनके नीचे हजारो की सख्या में बडे-छोटे जागीरदार व जमीदारो की अपनी सत्ता थी, किन्तु उनमें से अधिक लोकहित के बजाय भोग-विलास मे फसे हुए थे और जनता उनके आतक से भय-ग्रस्त थी।

गाधीयुग के उदय से जहा देश मे नई चेतना का उदय हुआ, वहीं चरखा, खादी और स्वदेशी की बात करना अपने आपको खतरे मे डालना था। अत साधुमना लोग ऐसी बातो से दूर ही रहा करते थे। जैन समाज की स्थिति तो इससे भी सोचनीय थी। सैद्धातिक मतभेद, साम्प्रदायिकता के साथ आपसी वैमनस्यता का बोलबाला होने से उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी।

ऐसे नाजुक समय मे चरित्रनायक का, श्रमण-परपरा मे, आचार्य के रूप मे उदय होना, देश मे नव जागरण और स्वतन्त्रता की जो हवा बह रही थी, उसको वेग देने वाली घटना ही कही जा सकती है। सब तरह के आरभ समारभ से बचने की एकागी दृष्टि के बजाय जैन समाज मे चूला, चक्की और चर्खे की आवाज गूजने लगी। प्रारम्भ मे जहा कट्टर माने जाने वाले वाले साधु और श्रावक-श्राविकाओ के विरोध का सामना करना पडा, वहा उन्ही मे से एक ऐसे समुदाय का उदय हुआ जिन्होंने आचार्यश्री के उपदेश के अनुसार अपने जीवन को ढाला, जिसका असर जैनेतर तथा राष्ट्रीय विचारो के लोगो पर भी पडा। जैन समाज मे आज जितने खादीधारी दिखाई देते है,

उनमें से अधिकतर पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के उपदेश से ही प्रभावित हुए थे। यही कारण था कि स्वयं महात्मा गांधी भी आपके व्याख्यान मे शामिल हुए और कई बार मिलकर चर्चा-वार्ता करने का अवसर आया।

आचार्यश्री की दृष्टि कितनी विशाल थी, इसका प्रमाण उनके व्याख्यानो से मिलता है। आपने 'जीवनधर्म' की व्याख्या करते हुए जो क्रांतिकारी विचार प्रकट किये, वे आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं।

"जीवनधर्म" का मर्म समझने का अर्थ है—आत्मा को पहिचानना। ग्रामधर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म आदि जीवन के अंग-उपांग हैं। जहा तक समानता का आदर्श जीवन मे नही उतरता, वहा तक आत्मा की पहिचान नही होती और समानता का आदर्श जीवन मे उतारने के लिये सबसे पहले जीवन मे मानवता प्रकट करनी पडती है, क्योंकि सभी धर्म महान् हैं, किन्तु मानव धर्म उन सब मे महान् है।

मानवधर्म इतना सादा है कि उसे घडी भर मे सब सीख सकते हैं। फिर भी मानव धर्म मे रहने वाली गहनता इतनी उदार और भव्य है कि वह जीवन भर की शुद्धि की माग करती है। जीवन धर्म का आदर्श विकारो को जीतना और विश्वबन्धुत्व सीखना है।



मोतियो की माला पहिन कर लोग फूले नही समाते, परन्तु उससे जीवन का वास्तविक कल्याण नही हो सकता। वीरवाणी रूपी अनमोल मोतियो की माला अपने गले मे धारण करने वाले ही अपने जीवन को कल्याणमय बना सकते हैं।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

विलक्षण एवं अद्भुत व्यक्तित्व

श्री महावीरचंद धाड़ीवाल

आचार्य श्री गुरुदेव के नाम मात्र से बचपन की धुंधली सी स्मृति सजीव हो उठती है । गौर वर्ण, स्थूल शरीर, ओज से प्रदीप्त मुख मडल, नेत्रो से झलकता विद्युत का सा तेज, सुधा सी मीठी वाणी, युक्तियो मे तेज सी तीक्ष्णता और विवेचन मे नभ मण्डल सी विशालता । जिसने देखा वह सहज ही नही भूल सकता विशालतम व्यक्तित्व के धनी स्व० आचार्य देव को । अद्भुत आकर्षण था उनके व्यक्तित्व मे । कुछ ऐसी विलक्षणता एव अद्भुतता रही हुई थी, जो सहज ही दर्शको को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी ।

मुझे याद आ रही है पोरबन्दर की एक छोटी सी घटना । हजारो की जन-मेदिनी मन्त्रमुग्ध आचार्य श्री देव का प्रवचन सुन रही थी । मैं छोटा, बहुत छोटा था । अचानक उठा और धीरे-धीरे चलते २ भरे व्याख्यान मे आचार्य श्री गुरुदेव की गोद मे जा बैठा । आज जब कभी चिन्तन के क्षणो मे होता हू तो सोचता हूँ कि ऐसा कौनसा आकर्षण था, जो बरबस मेरे चचल किन्तु बालक मन को उन तक खीच ले गया । अल्पज्ञ होने के कारण आज भी यह प्रश्न के रूप मे खडा है और मैं सोचता ही रह जाता हूँ ।

मैंने भीनासर मे असह्य पीडा मे भी शान्ति-रूप गुरुदेव को देखा है । उस समय मुझे ऐसा लगता था कि गुरुदेव आत्मस्थित हो गये है, देह का जरा भी मोह नही । डाक्टर आपरेशन कर रहे हैं । आप होश मे हैं । स्वाध्याय मे तल्लीन । प० सिरेमल जी म सा स्वाध्याय सुना रहे हैं । कही किंचित् भी व्यवधान नही । उफ् शब्द नही । चकित डाक्टर उनकी ओर निहार रहे है और आपस मे कह रहे हैं—अद्भुत सहनशीलता है । ये मानव नहीं, महामानव है ।

स्व० आचार्य श्री गुरुदेव वस्तुत युग-प्रवतक आचार्य थे । अल्पारंभ

एवं महा आरंभ की जो आगम–सम्मत व्याख्या आपने जगत् के समक्ष रखी, वह इस युग की नवीन एव मौलिक उपलब्धि मानी जायेगी । वर्षों पूर्व दिये गये व्याख्यान जो 'जवाहर किरणावलियो' के रूप मे सकलित है, आज भी उतने ही मौलिक एव पठनीय हैं, जितने उस युग मे थे । राष्ट्र प्रेम एव राष्ट्र-कल्याण की मगल भावना, मानवोत्थान की सतत जिज्ञासा से ओतप्रोत आपकी अद्भुत व्याख्यान शैली ने राष्ट्र के बडे–बडे नेताओ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और महात्मा गाधी, लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय, सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे राष्ट्र नेता समय २ पर आपके दर्शनार्थ आये ।

आज बडी प्रसन्नता की बात है कि ऐसे महान युगप्रवर्तक आचार्य श्री देव के जन्म शताब्दी महोत्सव को वर्ष भर राष्ट्रस्तर पर मनाने का आयोजन किया गया है एव स्व० आचार्य श्री का स्वप्न "वीर सघ योजना" को मूर्त रूप दिया गया है । इस शताब्दी महोत्सव पर स्व० आचार्य श्री गुरुदेव के चरणो मे शतशत वन्दन के पश्चात् यही कामना करता हूँ कि देव ! आपके बताये हुए मार्ग पर चलकर हम अपनी आत्मा का कल्याण करें ।



तुझे मानव–शरीर मिला है, जो ससार का समस्त वैभव देने पर भी नही मिल सकता । सम्पूर्ण ससार की विभूति एकत्र की जाय और उसके बदले यह स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय तो क्या ऐसा होना सम्भव है ?

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा

गहरी सूझबूझ के धनी

○ श्री प्रतापचंद्र भूरा

स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलाल जी म मा का जैसा नाम है, उनमे वैसे ही गुण भी थे। वे सचमुच जवाहर थे, एक रत्न थे, सच्चे पारखी थे, मनोविज्ञान के पूर्ण ज्ञाता थे। उनके क्रातिकारी विचार गहरे चितन-मनन पर आधारित थे। वे दूरदर्शी थे और उनकी सूझ-बूझ बहुत गहरी थी।

मोटा भाग/खोटा भाग

एक समय आप देशनोक मे विराजे हुए थे। सध्या का समय था। प्रतिक्रमण हो चुका था। कुछ श्रावक 'वृहदालोयणा के दोहे' बोल रहे थे। उनमें एक दोहा आया—'पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।' इतना सुनते ही आचार्य श्री बोल उठे "अरे, यह क्या कह रहे हो ? यो कहो "पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो खोटा भाग। अगर पाप छिप जायगा तो वह सावधान नही होगा, अधिक पाप करेगा। उसका भाग मोटा नहीं, खोटा हो जायेगा। पाप का छिपना नही, प्रकट होना ही मोटा भाग है।"

आचार्य श्री का यह सारगर्भित वाक्य सुनते ही श्रावको ने आचार्य श्री के सामने "तहत्" शब्द कह कर अपनी कृतज्ञता और स्वीकृति प्रकट की और उस दोहे को पुन बोलने लगे—

पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो खोटा भाग।
दाबी-दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग॥

परम्परा से चले आ रहे 'वृहदालोयणा के दोहे' मे यह मनोवैज्ञानिक और क्रातिकारी परिवर्तन आचार्य श्री के गहरे चिन्तन-मनन का ही परिणाम था।

जिलाश्रो श्रौर जीने दो

आचार्य श्री की गहरी सूझ और क्रातिकारी विचारो के अनेक उदाहरण मिलते हैं । जहा सारा ससार कहता है–"जिओ और जीने दो," वहा आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा कहते हैं "जिलाओ और जीने दो"। वात ठीक है । जैन सस्कृति इतनी सकुचित नही है कि वह जीने से ही सतुष्ट रहे। वह तो जिलाने की वात कहती है । जीने का कार्य तो पशु भी करते हैं, फिर मनुष्य और पशु मे अतर क्या रहा ? यदि मनुष्य स्वय जीवे और किसी मरते हुए को, कष्ट पीडित को नही जिलावे तो उसमे मानवता कहा रही ? वह पशु से विशेप कहा रहा ? उसकी करुणा का क्या हुआ ? जैन समाज ही नही, सारा ससार उनके इस नवीन विचार "जिलाओ और जीने दो" के लिये उनका आभारी है ।



आत्मवल प्राप्त करने की सीधी–सादी क्रिया यह है कि सच्चे अन्त करण से अपना वल छोड दो अर्थात् अपने वल का जो अहकार तुम्हारे हृदय मे आसन जमाये वैठा है, उसे निकाल वाहर करो । परमात्मा की शरण मे चले जाओ । परमात्मा से जो वल प्राप्त होगा, वही आत्मवल होगा । जव तक तुम अपने वल पर—भौतिक वल पर निर्भर रहोगे, तव तक आत्मवल प्राप्त न हो सकेगा ।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.



महान् दिव्य ज्योति

● श्रीमती विजयादेवी सुराणा

महान् क्रांतिकारी स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज सा. के प्रथम दर्शन का सौभाग्य अपने माता-पिता के साथ मुझे करीब ११ वर्ष की अवस्था मे ही सौराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर जामनगर मे हुआ। उनके विस्तृत भाल, स्फीत वृक्ष, वृषभस्कध, प्रलवित वाहु तथा तेजोमय विशाल वपु के प्रथम दर्शन, कर ही मैं इतनी अधिक प्रभावित हुई कि मेरे मन मे उनके दर्शन की सतत लालसा रहने लगी। मेरे माता-पिता के पुण्य योग से मुझे पुन १३ वर्ष की उम्र मे वगडी नगर के चातुर्मास में चार माह तक लगातार उनकी सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ। उस समय पूज्य श्री गुरुदेव के मुखारविंद से पहली वार 'सुखविपाक सुत्त,' सुवाहुकुमार जी एव राजा हरिश्चद्र तारामती का जीवन-चरित सुनने का सौभाग्य मिला, जिसके फलस्वरूप मेरे मन मे पापो के प्रति वितृष्णा का भाव एव सत्य पर अडिग आस्था उत्पन्न हुई। यह मेरा सौभाग्य ही था कि मेरे पुण्य योग से मेरी ससुराल वालो का भी उसी समय चार महीने के लिये पूज्य श्री गुरुदेव की दर्शन सेवा के लिए विराजना हुआ, जिससे हम दोनो को पूज्य श्री गुरुदेव के मुख से एक ही समकित प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य श्री गुरुदेव के त्याग, तपस्या एव तेज से प्रभावित होकर नित्य एक सामायिक, पाचो तिथि हरी सब्जी, सातो कुव्यसन, रात्रि भोजन तथा धप-भापण का त्याग एव अपने से वडो को प्रणाम, नवकारसी आदि ही मेरी जीवन-साधना के अनिवार्य अग हो गये। सामाजिक कार्य करने की शक्ति भी मुझे श्री गुरुदेव की कृपा से ही प्राप्त हुई।

पूज्य श्री गुरुदेव के अतिम दर्शन का सौभाग्य मुझे वीकानेर मे प्राप्त हुआ। उस समय उनके शरीर मे महान् वेदना थी। केवल दूध ही उनके जीवन का आधार हो गया था। ऐसी स्थिति मे भी गुरुदेव की शात छवि को देखकर महान् आश्चर्य होता था। ऐसे तो वे हर छोटी-मोटी वीमारी मे भी

तेले की तपस्या कर लेते थे । उनके राष्ट्रभक्ति पूर्ण उद्गारो एव अल्पारंभ-महारभ सम्वन्धी सदुपदेशो से प्रभावित होकर मेरे पतिदेव ने आजीवन खादी धारण करने का सकल्प किया, जिससे मेरे मन मे भी खादी के वस्त्र धारण करने की इच्छा वलवती होने लगी । कुछ वर्षों के वाद मेरी धर्ममाता की आज्ञा प्राप्त होने पर मेरी धर्ममाता और मैंने खादी धारणा करना प्रारभ किया । खादी धारण करने से मुझे जो शाति प्राप्त हुई, वह अकल्पनीय है।

मेरे पूज्य माता-पिता ने मेरे विवाह के अवमर पर मुझे 'जवाहर साहित्य' भेंट किया था, जिसके प्रभाव से मैं अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों मे भी सदा प्रसन्नता का अनुभव किया करती थी । इसी वीच अचानक मेरे धर्मपितामह का स्वर्गवास हो जाने से मेरी धर्ममाता रौद्रध्यान मे रहने लगी । 'जवाहर किरणावली' के पुण्यश्रवण के प्रताप से ही उनके जीवन की दिशा को नया आयाम प्राप्त हुआ और वे पूज्य श्री गुरुदेव की परम भक्त श्राविका वनी, एव विशेप रूप से धर्म साधना के साथ प्रतिवर्ष पूज्य श्री गुरुदेव के दर्शन-सेवा का लाभ लेने लगी थी । ऐसे प्रभावशाली गुरु की महती कृपा भव-भव के लिये सुखदायिनी है, जिसे मैं कभी विस्मृत नही कर सकती । जो भी पुण्यात्मा एक वार उनके दर्शन लाभ ले पाते थे, वे उन्हे कभी भी विस्मृत नहीं कर पाते थे । उस महान् दिव्य ज्योति के पुण्य चरणो मे मेरा शतशत वदन ।



यह ससार तपोमय है । तप से देवता भी काप उठते हैं और तप के वशवर्त्ती होकर तपस्वी के चरणो की शरण ग्रहण करते हैं । ऋद्धि-सिद्धि, सुख-सम्पत्ति भी तप से ही मिलती है। तीर्थङ्कर की ऋद्धि सव ऋद्धियो मे श्रेष्ठ है । वह भी तपस्वी के लिये दूर नही है ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा

दूरद्रष्टा निर्भीक आचार्य

श्रीमती धूरीदेवी पिरोदिया

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म सा दूरद्रष्टा आचार्य थे। उन्होंने अछूतोद्धार एव सामाजिक रूढियो–कुरीतियो के सम्वन्ध मे तव कहा था, जव देश परतन्त्र था। उस युग मे कही गई वात आज अपना विशेष महत्त्व रखती है। एक वार का प्रसग है कि रतलाम चातुर्मास मे जगल पधार कर चादनी चौक मे स होकर मुकाम पर जाते समय आपने देखा कि एक वीमार कुत्ता सडक पर पडा है। लोग उसकी सेवा कर रहे हैं। कुत्ते को टाट विछाकर लेटाया गया है। पास मे पानी का वर्तन व दूध, मिठाई, पूडी आदि रखी है। पूज्यश्री ने व्याख्यान मे कहा—यहा के लोग वडे ही सेवा–भावी व दयालु हैं। वीमार कुत्ते की सेवा करते हैं पर यदि कोई हरिजन भाई–वहिन वीमार पड जावे तो क्या आप उसकी सेवा इसी प्रकार करेंगे? आप लोगो की चुप्पी से मालूम पडता है कि नही कर सकेंगे, क्योकि वह अछूत है। इस पर आपने कहा कि मनुष्य की पुनवानी वडी है या पशु की पुनवानी वडी? भगी आपका मैला उठा कर सफाई करता है, वह मरे पशु को उठाता है पर कुत्ता उसे खा जाता है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से वताया कि कुत्ता आपके चौक मे जा सकता है, पर मनुष्य का कपडा अटक जाने मे अपवित्र हो जाता है। अछूतोद्धार के इस मार्मिक प्रसग ने लोगो को झकझोर डाला था। कई लोगो ने अछूतोद्धार की दिशा मे कार्य करने के नियम आदि लिये।

पूज्यश्री अल्प पाप, महापाप की व्याख्या वहुत सार-युक्त करते थे। एक वार काठियावाडी वहन से पूज्यश्री ने पूछा—आप तो मिल का आटा नही खाती होगी? वहन ने कहा—मने तो कोई हरकत नथी। पर ये म्हारी वहुये करेछै अमो तो वम्वई नी सेठानिया थइ एटल पीसवानो काम पीसवानो दुन वीजाने आपो। पूज्यश्री ने कहा—सन्तान को जन्म देना महान दु ख मानते। वीजाने सुपर्द कीइ के नही। इस पर वहुत अच्छा प्रकाश डाला।

एक ममय जब अजमेर में पूज्यश्री विराजते थे, उस समय की वात है। एक वहन सूरजवाई चूडीवाले के यहा चूडा पहन रही थी। महाराज साहब को देख कर वहन ने परदा (घू घट) निकाला। पूज्यश्री ने परदा करने के विपय मे व्याख्यान मे कहा—इस वहन को सबसे बुरी दृष्टि वाला मे ही दिखाई पडा क्या ? इस प्रकार परदा व अन्य सामाजिक कुरीतियो को दूर करने मे महत्त्वपूर्ण योग दिया।

एक घटना रतलाम चातुर्मास की है। पूज्यश्री व्याख्यान मे खादी पहनने का व विदेशी वस्त्रो के त्याग का उपदेश देते थे। उस वक्त रतलाम के मुख्य श्रावक श्री वर्धमान जी सेठ ने कहा, "गुरुदेव। यहा की सरकार खादी से वहुत नाराज है। अभी इस विपय पर कहना विपदग्रस्त है।" पूज्यश्री ने नि सकोच कहा—यह मेरी जवावदारी है और वडे जोरो से लोगो को स्वदेशी धर्म समझाया। खादी के कपडे पहनने का उपदेश वे देते ही रहे।



गरीव की आत्मा मे शुद्ध भावना की जो समृद्धि होती है, वह अमीर की आत्मा मे शायद ही कही पाई जाती है। प्राय अमीर की आत्मा दरिद्र होती है और दरिद्र की आत्मा अमीर होती है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)



यथा नाम तथा गुण

❁ श्री कालूराम नाहर

हमारे चरित्रनायक श्रीजवाहराचार्य जी का नाम, यथा नाम तथा गुण वाला सिद्ध हो रहा है। आपके माता-पिता ने आपका नाम जवाहरलाल रख कर आशा प्रकट की कि यह बालक आगे जाकर अनेक जौहर दिखायेगा और इनकी आशा पूर्ण सफल हो गई। आपके पिता के देहावसान पर आप के मन मे अत्यन्त हृदय-विदारक वेदना हुई और वैराग्य की भावना के अकुर बढने लगे। आपने जो व्यापार पूरे जोर शोर से कर रखा था, उसको समेटना शुरु किया और वैराग्य की ओर अग्रसर होकर प० मुनि श्री मगनलाल जी म सा के पास दीक्षित हो गये। थोडे ही समय के बाद आपके गुरु जी का साया भी आप से हट गया। आपके गुरु भाई प० मुनि श्री मोतीलाल जी म ने पूरी सान्त्वना देकर आपको ज्ञानार्जन करवाया। जिस प्रकार प० मोतीलाल जी नेहरू के सान्निध्य मे प० जवाहरलाल जी नेहरू चमके, उसी प्रकार हमारे चरित्रनायक श्री मोतीलाल जी की अनुकम्पा से धार्मिक क्षेत्र मे चमक उठे। गुजरात के महान् कवि मेघाणी ने अपने लेख मे लिखा है कि हमारे देश मे दो जवाहर हैं, एक राष्ट्रनायक-दूसरा धर्मनायक।

परम पूज्यश्री जवाहराचार्य अपने समय मे एक महान् क्रांतिकारी आचार्य हुए हैं। आपने थली प्रदेश मे जो नई क्राति की, उसकी समता अन्यत्र उपलब्ध होना कठिन है। आपने कठिन परिषह सहन करके वहा की जनता में वीतराग धर्म के सही तथ्य का प्रचार-प्रसार किया, वह अविस्मरणीय है। यहा पर स्थानकवासी सन्तो का पधारना अत्यन्त ही दुर्लभ था। लोगो के अन्दर ऐसी अन्ध-विश्वासी मान्यताए डाल दी गई कि माता-पिता की सेवा मे एकात पाप है। अपने साधुओ के सिवाय अन्य साधुओ को अन्न-पानी देना व सेवा करना एकान्त पाप है। यहा के भोले-भाले प्राणियो को जानकारी नही कि जैन धर्म के असली सिद्धात क्या है? उनकी दशा तो सिर्फ कूप-मन्डूक जैसी

वनी हुई थी । ऐसी स्थिति मे वजर रेगिस्तान के थली प्रदेश मे जो क्राति का वृक्षारोपण किया, वह हमारे सामने आज वट वृक्ष की भाति लहरा रहा है । इसका सिंचन आपके पाटानुपाट आचार्यों द्वार किया जा रहा है ।

आपका व्यक्तित्व भी अनूठा था । एक दफा गाधी जी के मन में आप जैसे जैनाचार्य के दर्शनो की अभिलाषा उठी । आपने श्री जवाहराचार्य के दर्शन किये और कहा कि आप जैसे महान व्यक्ति अगर राजनैतिक क्षेत्र मे हो, तो हमारा देश वहुत जल्दी उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है, लेकिन एक जवाहर हमारे पास है, वह राजनीति के क्षेत्र से देश की सेवा कर रहा है, दूसरे आप हैं जो हमारे देश में धर्म-क्षेत्र मे रहकर महान क्राति कर रहे हैं ।

महा आरम्भ से मिल के वने हुए विदेशी वस्त्रो मे वचते हुए सादा जीवन व शुद्ध खादी का प्रयोग करने की महान् क्राति आपकी वाणी द्वारा की गई । आपने अपने समय मे नारी-समाज मे क्राति का सूत्रपात किया । आपने अपने ओजस्वी प्रवचनो से नारी को समान सुशिक्षा एव सुसस्कारी वनाने व पर्दा प्रथा व अन्य कुरीतियो पर काफी प्रभाव डाल कर नई क्राति की लहर पैदा की । आपने साहित्य क्षेत्र मे अभूतपूर्व कदम वढा कर जो साहित्य समाज को प्रदान किया वह चिरस्मरणीय है । आपके साहित्य को पढ कर मानव अपने जीवन को श्रावक के रूप मे भी रख कर आत्म-कल्याण सहज मे ही कर सकता है । जवाहर किरणावली व अन्य जीवनोपयोगी साहित्य आपकी अमूल्य देन है । हम आज ऐसे क्रातिकारी आचार्यश्री की जन्म-शताब्दी मनाते हुये गौरव अनुभव करते हैं क्योकि —

(१) भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव पर आपके शताब्दी-वर्ष का आगमन हुआ है । आपने नारी सामाज मे जो क्राति का सूत्रपात किया, वह नारी-वर्ष आपके जन्म-शताब्दी वर्ष मे मनाया जा रहा हैं।

(२) अछूतोद्धार जो कि आपकी परम अभिलाषा थी, वह भी इस शताब्दी के अवसर पर आपके पट्टधर श्री नानेशाचार्य ने मालव प्रान्त मे धर्मपाल वना कर अनुपम उदाहरण पेश किया है ।

(३) आपके अन्तर्मन मे जो पूर्ण अभिलाषा थी कि एक गृहस्थ व साधु के वीच ऐसा वर्ग तैयार हो ताकि साधु अपनी मर्यादा से नीचे न उतरकर अपना साधना-पूर्ण जीवन व्यतीत कर सके और वीतराग धर्म का प्रचार-प्रसार हो सके । आपकी यह अभिलाषा भी जन्म-शताब्दी महोत्सव पर पूर्ण हुई है । इस वर्ष में साधुमार्गी जैन सघ द्वारा 'वीर सघ योजना' को मूर्त्त रूप दे दिया गया है ।

❀❀❀

प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व

◉ श्री राजमल चोरड़िया

बात सवत् १९८० की है । आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा बम्बई चातुर्मास करने के लक्ष्य से धूलिया से विहार करके बादरा कतलखाने के रास्ते से चल रहे थे । यकायक दुर्गन्ध आई । आगे देखा तो खून की नाली बह रही थी । पूज्यश्री चौंक उठे । पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यहा गाय, भैंस आदि पशु काटे जाते है । हजारो मूक पशुओ के कत्ल की बात सुन कर मुनिश्री का हृदय द्रवीभूत हो गया । वे आगे नही बढे और वही घाटकोपर मे ही वह चातुर्मास व्यतीत किया । वहा भैंसो आदि पशुओ को बचाने के लिये 'जीव दया मडल' की स्थापना हुई । आचार्यश्री की प्रेरणा से इस मण्डल ने सक्रिय रह कर हजारो पशुओ के प्राण बचाये । इसी चातुर्मास काल मे हरिश्चन्द्र–तारामती के चरित्र पर एक सुन्दर रचना भी आचार्यश्री ने की ।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा बडे कष्टसहिष्णु थे । शारीरिक व्याधियो का उनके मन पर कोई प्रभाव नही पडता । बात स १९८१ की है, जब वे चातुर्मास हेतु जलगाव पधारे थे । वहा उनकी हथेली मे एक छोटी सी फुन्सी उठी । उस फुन्सी ने धीरे–धीरे विकराल रूप धारण कर लिया । पर आचार्यश्री उस फुन्सी की पीडा से कभी परेशान नही रहे । डा० प्राणजीवन मेहता जब उनकी हथेली का ऑपरेशन करने लगे तो उन्होने अपना हाथ डाक्टर के सामने आगे कर दिया । उन्हे न क्लोरोफार्म सू घने की आवश्यकता पडी और न हाथ सुन्न करने के इन्जेक्शन की । धन्य है, ऐसे विराट् सहनशील व्यक्तित्व को ।

आचार्यश्री अन्धविश्वासो से कोसो दूर थे । समाज मे जो अन्धविश्वास घर कर चुके थे उन्हें नष्ट करने के लिये उन्होंने भरसक प्रयत्न किया । उस समय लोग गृहस्थ के लिये सूत्र वाचना निषिद्ध समझते थे और

कहते थे—"वाचे सुतर तो मरे पुतर" । पुत्र मृत्यु के भय से लोग शास्त्र को हाथ से छूते नही थे । इस अधविश्वास का आचार्यश्री के मन मे बड़ा खेद था । उन्होने अनेक श्रावको को सूत्र वाचने की प्रेरणा दी और उन्हे व्याख्यान हेतु ऐसे स्थानो पर जाने के लिये प्रेरित किया, जहा मुनिवृन्द नही पहुच पाते। आचार्यश्री की सहज प्रेरणा से प्रेरित हो मैं भी अनेक क्षेत्रो मे जाकर पर्युषण मे सूत्र–वाचन और व्याख्यान आदि देता रहा हूँ । मेरे व्याख्यानो से प्रेरणा पाकर अनेक भाई–वहिनो को तप–त्याग मय जीवन जीने की प्रेरणा मिली है। मेरे पिता श्री रतनचद जी भी अनेक स्थानो पर व्याख्यान, सूत्र–वाचन आदि के लिये जाते थे । यह सव आचार्यश्री के आशीर्वाद और प्रेरणा का ही फल है ।



अज्ञानी पुरुष को जिन पदार्थों के वियोग से मर्मवेधी पीडा पहुचती है, ज्ञानीजन को उनका वियोग साधारण-सी घटना प्रतीत होता है । ज्ञानवान् पुरुष सयोग को वियोग का पूर्वरूप मानता है । वह सयोग के समय हर्ष–विभोर नही होता और वियोग के समय विषाद से मलिन नही होता । दोनो अवस्थाओ मे वह मध्यस्थभाव रखता है । सुख की कुजी उसे हाथ लग गई है, इसलिए दुःख उससे दूर ही दूर रहते हैं ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

अपूर्व आत्मबली

श्री हीरालाल नांदेचा

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब ने अपने उपदेशो द्वारा जैनियो को इस बात का भान कराया कि जैन कायर नही होते है, बल्कि आत्मबली होते हैं ।

जब पूज्यश्री को वेदनीय कर्म ने सताया तब उन्होने आत्मबल का प्रत्यक्ष भान कराया । जलगाव मे शक्कर की बीमारी से हाथ मे फोडा हुआ था, तब बगैर शीशी सू घे हाथ का ऑपरेशन कराया । इसी प्रकार भीनासर मे गर्दन पर भयानक फोडा हुआ तो बगैर वेदना वेदते सुखे-सुखे उसका ड्रेसिंग कराया। ऐसे आत्मबली को धन्य है ।

इसी प्रकार पूज्यश्री चारित्र के पक्षपाती थे । उन्हे चेलो का मोह नही था । सैद्धान्तिक प्ररूपणा मे विशेष श्रद्धा रखते थे और उसका यथार्थ रूप मे अर्थ भिन्न-भिन्न करके समझाते थे । उनके विचारो को आज भी महत्त्व दिया जाता है ।



दूसरे के अधिकार को अपहरण करके यश प्राप्त करने की इच्छा मत करो, जिसका अधिकार हो उसे वह सौंप कर यश के भागी बनो ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

कभी न भूलने वाला वह प्रभात

● श्री वक्षलाल कोठारी

एक सध्या—छोटी सादडी का अपार जनसमूह—श्रावक-श्राविका ही नही, वल्कि छोटे-छोटे वच्चे भी हर्ष-विभोर हो रहे हैं। चारो ओर एक ही चर्चा थी—प्रात काल पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा का इस नगरी मे पदार्पण हो रहा है।

आचार्यश्री के स्वागतार्थ, प्रात काल नगर से वाहर पहुँचने की सूचना जैन गुरुकुल मे सघ की ओर से जैसे ही हम छात्रो को मिली—हमारी प्रसन्नता का पारावार नही रहा। सभी छात्रो के मन मे एक अजीव-सा उत्साह था, सभी सोचते थे—कव सूर्योदय हो और हम स्वागत के लिये पहुचे। वडी अधीरता से हमारी वह रात्रि व्यतीत हुई। प्रात ज्यो ही गुरुकुल मे लगे घडियाल पर सुवह के पाच वजने के टकारे लगे कि हम छात्र गुरुकुल भवन से वाहर निकल पडे और चल पढे उस दिशा की ओर, जिस ओर से आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा का आगमन होने वाला था।

गर्मी का मौसम था। हम छात्रो मे एक होड सी थी— आगे वढने की। हर छात्र आगे वढने की होड मे था, प्रत्येक यह चाहता था कि वह सव से आगे रहे, ताकि सवसे पहिले आचार्यश्री के दर्शन करने का उसे ही सौभाग्य प्राप्त हो। यह हमारा पहिला ही अवसर था आचार्यश्री के दर्शनो का। छात्र उत्साह व उल्लासपूर्वक आगे से आगे वढे चले जा रहे थे। हमारे पीछे नगर-निवासियो का विशाल समूह था।

हम लोग नगर से करीव ३-४ मील आगे वढ गये होगे कि एकाएक कुछ दूरी पर हमे एक तेज-पुज अपनी शिष्य मुनि-मडली सहित तेज गति से आता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। उस समय सारा वायुमडल "आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की जय" "पूज्य गुरुदेव की जय" आदि गगनभेदी नारो से गूज

उठा । उस समय एक ऐसी अलौकिक हर्ष-लहर हमारे दिलो मे व्याप्त हो गई थी कि जिसे शब्दो के माध्यम से व्यक्त नही किया जा सकता। देखते ही देखते आचार्यश्री हमारे सामने पधार आये और हजारो मस्तक आचार्यश्री के चरणो मे झुक गये ।

आचार्यश्री के दर्शन कर, मगल पाठ सुन, भव्य जुलूस छोटी सादडी की ओर बढा । नगरनिवासी आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा जैसे महान् सत के दर्शन कर हर्ष-विभोर थे । आचार्यश्री के व्याख्यान गुरुकुल भवन के विशाल प्रागण मे होते थे । भवन का प्रागण समय से पूर्व विशाल मानव समुदाय से परिपूर्ण हो जाता था। यह उनकी ओजस्वी वाणी का प्रभाव था। मेरा वह बचपन था मगर मुझे पूरा स्मरण है कि आचार्यश्री का वह प्रवचन प्रभु सभवनाथ की प्रार्थना की इन कडियो से प्रारम्भ हुआ था—

"आज म्हारा सभव जिणजी का हित-चित्त से गुण गास्या राज"

प्रार्थना की इन कडियो के भावो के अनुरूप ही पूज्य श्री की भाव-मगिमा भी होती जाती थी । उनकी तेजस्वी वाणी का श्रोताओ पर एक जादू का सा असर होता था, चारो ओर सपूर्ण शाति छाई रहती। श्रोता अमृतमय उपदेश का रसास्वादन करते रहते ।

अत मे वह दिन भी आ पहुँचा जब आचार्यश्री का विहार होने वाला था । आचार्य देव का हम छात्रो को अतिम उपदेश था—तुम छात्रो का भावी जीवन सादगीपूर्ण रहे, इस बात का पूरा ध्यान रखना । आज आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा हमारे बीच नही हैं पर उनके वे प्रेरणादायी उपदेश आज भी हमारे मार्ग-प्रदर्शन का काम करते हैं । उस ज्योतिपुञ्ज के चरणो मे मेरा शतशत वन्दन ।



छिपाने की चेष्टा करने से पाप घटता नही, वरन बढता जाता है । पाप के लिए प्रकट रूप से प्रायश्चित्त करने वाला परमात्मा के सन्निकट पहुचता है ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

और वे वचन अमृत बन गये !

श्री अजीत कड़ावत

जीवन के अनजाने पथ का मुसाफिर नये मोडो पर घवरा कर जानते हुए भी वहुत ही निम्न स्तरीय निर्णय लेकर अपने आपको, अपने भविष्य को अवेरे कूप मे धकेल देता है, किन्तु ज्ञानियो द्वारा प्रदत्त अनन्त ज्ञान राशि का कुछ प्रकाश मिलते ही अधेरे कूप की ओर अग्रसित मानव अपने को वचा लेता है, असम्भाव्य समाधान का हल पाकर सही दिशा की राह पा लेता है ।

ऐमी ही प्रकाश–लौ पूज्य जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा के प्रकाश स्तम्भ से निकली थी । वह मेरे स्नेही के शव्दो मे " और वे वचन अमृत वन गये ।

घटना इस प्रकार थी—

आशा, शातिलाल जी की चौथी सतान थी। शातिलाल जी ने अपनी दो लडकियो की शादी अच्छे घरानो मे अच्छे प्रकार से कर दी थी । उनकी तत्कालीन परिस्थिति अच्छी थी किन्तु समय की गति ने उन्हे कुछ ढीला कर दिया था । आशा का रग अन्य सतानो से कुछ पक्का था । काल के क्रूर प्रवाह ने नारी की सदा उपेक्षा की । उसी उपेक्षा या प्रतिशोध के दहन मे दहेज प्रथा भी काफी कारगर रही है । वर्तमान मे दहेज का दानव कई ललनाओ को वे–समय खा गया है फिर भी तथाकथित समाज मौन साधे वैठा हुआ है । शातिलाल जी भी भरसक प्रयत्नो के वाद आखिर इन्ही शव्दो के साथ नि श्वास छोडने लगे—"इसके आगे तो मैं पनाह माग गया । धर्मध्यान करने के दिनो मे मुझे इतनी परेशानी उठानी पड रही है । न केवल पिताजी मे वल्कि मा की ममता मे भी फर्क प्रतीत होने लगा। मा वात–वात मे गुस्सा- होती, डाटती मानो आशा की सौतेली मा हो। एक दिन आशा मधु के काफी आग्रह को देखकर कुछ देर के लिये कालेज से आते वक्त रुक गई तो मा

विफर पडी । आशा कहती–मा तुम हर वात पर वरस पडती हो । "वरसूंगी नही तो क्या तेरी आरती उतारूंगी ? कालेज से आकर यहा वहा घूमना और फिर ऊपर से मुह लगाना। अच्छा हुआ सूरत शक्ल मे कोयला मात खाता है, नही तो तू न जाने कितनी भटकती फिरती ।"

सूरत शक्ल की वात सुनकर उसका कलेजा ठडा हो जाता । उसके भाई भी उसके काले रग पर काफी टोने कसते । उसका दिल घटो रोता । वह अन्दर ही अन्दर झुलती रहती । अपने जन्म को कोसती । वह सोचती कि दुनिया मे मेरा कोई नही है । सव ही की नफरत मुझे सालती है । इस दुनिया मे रग रूप ही मनुष्य का अस्तित्व वना सकता है। कुरूप को जीने का कोई अधिकार नहीं है क्या ? उसे अपने इस चारो ओर नफरत के कारण धीरे–धीरे जीवन से नफरत हो गई, वह अपने जीवन को निस्सार मानने लगी ।

[२]

विवाह की तलाश मे घूमते हुए पिता ने आखिर एक परिवार को आशा को देखने के लिये आमन्त्रित किया । उन्हे पहला डर तो दहेज का था ही किन्तु दूसरा डर और था । कही आशा का रग देखकर नापास न कर दें । इस पर मा ने सुझाव दिया–पडौसी दुवेजी की रेखा को घूघट निकाल कर वैठा दें । पिताजी ने पूछा—क्या दुवेजी तैयार हो जायेंगे ? क्यो नहीं होंगे जी, क्या उन पर हमारे कम अहसान हैं ? मा ने गठीला उत्तर दिया, किन्तु दर-वाजे की आड मे खडी सुन रही आशा चीख पडी—"मा, चाहे दुवेजी तैयार हो जायें किन्तु मै ऐसा कभी नही होने दूगी।" मा गूज उठी–नहीं होने देगी तो क्या तुझ करम–जली कोयले को वे पसद कर लेंगे ? पहले ही तो पैसो के लिये मुह फाड रहे हैं, क्या तू जन्म भर कुआरी रह कर हमारे सिर पर वैठे खायेगी ?"

रुधे गले मे आशा वोली—"नही मा ! इस साल की पढाई के वाद मैं स्वय नौकरी कर लूगी आपको मुझसे छुटकारा मिल जायेगा। रही कुंवारी रहने की वात सो मैं तव तक कुआरी रहूँगी जव तक मुझे ऐसा व्यक्ति न मिले जो हृदय की स्वच्छता को शरीर की सफेदी और चादी की नापाक चमक से अधिक मूल्यवान समझे ।"

आखिर आगन्तुक आये और जिसका डर था, वही हुआ । आग-न्तुको ने आशा को देखने के वाद कहा—"मुआफ कीजियेगा साहव ! ३५ हजार की इतनी कम रकम लेने के वाद भी मुझे घर मे अधेरा नहीं करना है।"

शांतिलाल जी जडवत खडे रहे और आशा की आत्मा दु ख, क्षोभ और अप-मान से एक बारगी चीत्कार उठी । इस निर्मम चोट से, अपने जीवन की यत्रणा से छूटने का उसे केवल एक मार्ग दिखाई दिया और उसकी बोझिल पलको मे एक निश्चय झलक उठा ।

[३]

उस रात आशा पढती रहने का बहाना कर काफी देर रात तक जागती रही । घटी ने बारह बजाये । खिडकी के बाहर झाककर देखा, तीज का कटारी चाद शात भाव से उसकी ओर निहार रहा था । आशा सोचने लगी–मेरे मरने के बाद भी यह निकलेगा, तारे उगेंगे, सृष्टि का वही क्रम, कही कोई व्यवधान नही । नीद मे पहुँचती दखल देखकर शातिलाल जी ने बिजली का स्विच ऑफ किया और कुछ ही देर मे खर्राटे भरने लगे । आशा ने सोचा — एक पत्र लिख दू , नही, नही, पत्र लिखने की मुझे क्या जरूरत है, कौन मेरा ? आशा जी कडा करके अलमारी की ओर बढी जहा उसने कालेज से लाई हुई एक पुडिया छिपा दी थी । उसने किताबें यहा वहा करके पुडिया ढूढना चाहा, पुडिया तो न मिली पर एक पुस्तक धडाम से नीचे आ गिरी । पुस्तक गिरने की आवाज सुनकर शातिलाल जी की नीद टूट गई । पूछा, कौन ? क्या है ? आशा ने धडकते हृदय से उत्तर दिया—'जी ! कुछ नही, पुस्तक गिर पडी है । पिताजी पुन सो गये, तब कही आशा अपनी जगह से हिल सकी । उसने फर्श पर पडी पुस्तक को उठाया—"जवाहर किरणावली ।" अनायास ही उसकी दृष्टि खुले पृष्ठ पर पडी और वह ठिठक कर रह गई—

"मनुष्य की शरीर के प्रति आसक्ति उसका अज्ञान है । शरीर तो एक वस्त्र है जिसे आत्मा जीर्ण शीर्ण होने पर उतार फैंक देती है । मनुष्य इसी अज्ञानता के कारण इस शरीर को 'मैं' कहता है और आत्मा को भुला बैठता है । मनुष्य का कर्तव्य है कि कृत्रिम, बाह्य साधनो द्वारा शरीर को अलकृत करने की अपेक्षा हृदय को सवार कर विश्व के प्रत्येक कण मे उस विराट का दर्शन करे, इस विश्व मे आत्मा और हृदय का सौन्दर्य ही शाश्वत है, अमर है ।

और जब आशा ने उस पुस्तक की आखिरी पक्ति समाप्त की तो क्षितिज की अनुरागमयी आभा भास्कर के आगमन की सूचना दे रही थी । पक्षी किसी रहस्यमय आलोक की वदना कर रहे थे और आशा के जीवन का भी नवीन अध्याय आरम्भ हो रहा था । आशा ने दृढ निश्चय कर लिया था कि

वह अपनी आत्मा और हृदय को सवारेगी । पढाई के पश्चात् वह अधे अनाथ बच्चो के आश्रम मे जा कर उन अभागो को अन्तरात्मा की रूप राशि से मुग्ध कर देगी और' और शायद अधे बच्चे ही उस कुरूपा मे छिपी सुन्दरता को देख सके हो, तभी तो वे उसे स्नेह, श्रद्धा और भक्ति के मिश्रित सुमन अर्पण कर अपने को धन्य मानते हैं ।

शून्य मे विलीन होते, तिमिराच्छन्न मे भटके हुए जीवन को प्रकाश किरण मे उजियाले की ठोस तली पर ले आने वाले हे महापुरुष ! आपकी जन्म-शताब्दी पर मैं कोटि-कोटि श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ । आपका महान् साहित्य ही आपको आज भी वैसा ही बनाये है, आप धन्य हैं ।



हे गरीब, तू चिन्ता क्यो करता है ? जिसके शरीर मे अधिक कीचड लगा होगा, वह उसे छुडाने का अधिक प्रयत्न करेगा । तू भाग्यशाली है कि तेरे पैर मे कीचड अधिक नही लगा है । तू दूसरो से ईर्ष्या क्यो करता है ? उन्हे तुझसे ईर्ष्या करनी चाहिए । पर देख, सावधान रहना, अपने पैरो मे कीचड लगाने की भावना भी तेरे दिल मे न होनी चाहिए । जिस दिन, जिस क्षण, यह दुर्भावना पैदा होगी, उसी दिन और उसी क्षण ते । सौभाग्य पलट जाएगा । तेरे शरीर पर अगर थोडा-सा भी मैल है तो उसे छुडाता चल । उसे थोडा समझकर उसका सग्रह न किये रह ।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.

उदार हृदय

● श्री श्रीलाल कावड़िया

ससार मे समय समय पर मानव को भौतिक वातावरण मे विरक्त करने हेतु महापुरुपो का अवतरण होता रहा है और उनके सदुपदेशो एव ग्रथो द्वारा आत्मबोध पाकर अनेक भव्य आत्माओ ने भव-भ्रमण से छुटकारा पाया है।

महाप्रतापी स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा भी उन्ही महापुरुपो मे से एक महान विभूति हो गये हैं। जवाहर किरणावलियो के रूप मे आपके प्रवचनो का सग्रह करके समाज ने विश्व को अनुपम देन दी है। यद्यपि आपके प्रवचन ५० वर्ष पूर्व के हैं, परन्तु आज के इस वैज्ञानिक युग मे भी वे शिक्षित एव अशिक्षित वर्ग के हृदय को झकझोर देने मे पूर्ण सक्षम है और आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करते हैं।

स्वर्गीय आचार्यश्री के दर्शनो का सौभाग्य मुझे भी मिला, अत मैं अपने को अत्यन्त भाग्यशाली समझता हू। आचार्यश्री के बगडी चातुर्मास मे मुझे सर्वप्रथम दर्शनो का लाभ प्राप्त हुआ। आचार्यश्री धर्म स्थानक मे तिबारियो मे घूम रहे थे और मैं भी उनके श्री चरणो मे उपस्थित था। उस समय मेरी अवस्था छोटी थी परन्तु आचार्यश्री का प्रेम बालको एव बडो पर एकसा था। आचार्यश्री ने मुझे भी कई बातो का दिग्दर्शन कराया एव एक बालक से भी उतनी ही बातें की जितनी एक प्रतिष्ठित एव वयोवृद्ध श्रावक से करते हैं। मैं तभी से आचार्यश्री से बहुत प्रभावित हुआ एव उन पर मेरी अटूट श्रद्धा रही। उसके पश्चात् दर्शन करने के कई अवसर आये। मुझ पर सदा उनके उदार हृदय व व्यक्तित्व की गहरी छाप पडी। आचार्यश्री की सूक्तिया किसी धर्म एव सम्प्रदाय को महत्त्व न देते हुए, जीवन को ऊचा उठाने मे बडी प्रभावशाली हैं।

मैं स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा के श्री चरणो मे भावभीनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कामना करता हूं कि उनके सदुपदेशो का पालन कर अपनी आत्मा को उन्नत करू। 

आचार्यश्री व मौलाना शौकत अली की वह भेंट

● श्री जीवराज मेहता

स १९७७ मे श्रीमद् जवाहराचार्य का सातारा चातुर्मास था। मैं उस समय करीब ९ साल का था। अपने पिताजी के साथ सातारा गया। यहा जवाहराचार्य के दर्शन हुए। लबा डीलडोल, चौडी लिलाट जिसमे चारित्र व विद्वत्ता की मानो तेजी चमकती थी। व्याख्यान की शैली गजब की थी। वहां माहेश्वरी बिरादरी के भी काफी घर थे, सो प्राय व्याख्यान मे सब आते, श्रवणकर सभी अत्यन्त प्रभावित होते।

स. १९८४ का चातुर्मास ब्यावर मे हुआ। उस समय मैं करीब १४ साल का था। सोजत दरबार स्कूल मे मिडिल मे पढता था। उस समय मेरे मामासा श्री लक्ष्मीचन्द जी धाडीवाल बगडी मे काफी समय रहा करते थे। मामासा की धर्म पर अटूट श्रद्धा थी, शास्त्र थोकडो आदि की अच्छी जानकारी थी। उनके सान्निध्य मे रहने से जो कुछ धर्म का सस्कार मेरे मे आया, उनका ही उपकार मानता हू। चातुर्मास मे मामासा के साथ बगडी से ब्यावर जवाहराचार्य के दर्शनार्थ मैं भी गया। उस दिन पक्खी थी। मैं मामासा के साथ प्रतिक्रमण मे बैठा। प्रतिक्रमण समाप्ति के बाद हम लोग बैठका समेट रहे थे कि एक बग्गी (घोडागाडी) नया वास स्थानक के पास आकर खडी हुई। पहले एक दो जने उतरे। अच्छे मौलवी सरीखे दिखे। तीसरे व्यक्ति ६ फुट ऊचे, लबा सुडोल कसा हुआ शरीर, सिर पर बाल वाली ऊची ४॥ इची करीब टोपी जिसमे चाद का कसीदा कोरा हुआ, बग्गी (घोडा गाडी) मे से नीचे उतरे। उनके उतरते ही हलचल मच गई। वे मौलाना शौकत अली थे। आते ही प्रथम जवाहराचार्य के दर्शन किये, शिष्टाचार से हाथ जोड नत मस्तक होकर। बाजू मे पडित श्री घासीलाल जी महाराज व श्री गणेशीलाल जी म.

विराजे हुए थे। श्रीमद् जवाहराचार्य के साथ मौलाना साहाव का जो वार्तालाप हुआ, उसकी स्मृति अव भी मुझे है।

आचार्यश्री—मौलाना साहव ! आपकी मौजूदगी मे व आप सरीखे आलिमफाजिल व देश के कर्णधारो की हयात मे देश में अशाति, दगे व विषमता क्यो वढी हुई है ? आप जरा शाति से काम लेकर लोगों को शाति का मार्ग वताकर समझाये तो आपका प्रभाव अच्छा पडेगा।

मौलाना साहव—क्या करें पूज्यश्री ! कुछ लोग इस तरफ भी शरारती व उस तरफ भी शरारती रहने से नाहक मे देश मे दूषित वातावरण होकर विषमता वढती है। मैंने तो अपने जाहिर भाषण मे कई दफे लोगो को शान्ति कायम करने के लिये वार-वार समझाया। मगर गलती दोनो तरफ की, सो नाहक वगैर कसूर लोग उस मे मारे जाते है। क्या करें पूज्यश्री ?

आचार्यश्री—मौलाना साहव ! आप का प्रभाव देश-देशान्तर सव जगह है। आप अगर पूर्ण दिलचस्पी लेकर जनता को पूर्ण शाति से रहने का हितोपदेश देवें तो आपके शव्दो का लोगो पर काफी असर पडेगा। जनता आपकी वात मानती है। नाहक देश मे अशाति का वातावरण होने से फालतू विषमता वढती है सो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इस वात को जरूर तवज्जह देंगे। ऐसी मुझे खातरी है।

मौलाना शौकत अली आचार्यश्री से विचार-विमर्श कर काफी प्रभावित हुए और उन्होने देश मे शान्ति व सद्भाव वनाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न करने का अपना सकल्प दोहराया।



वादविवाद किसी वस्तु के निर्णय का सही तरीका नही है। जिसमे जितनी ज्यादा वुद्धि होगी, वह उतना ही अधिक वादविवाद करेगा। वादविवाद करते-करते जीवन ही समाप्त हो सकता है। अतएव इसके फेर मे न पडकर भगवान् के निर्दिष्ट पथ पर चलना ही सर्वसाधारण के लिए उचित है।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.

तृतीय खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य

काव्यांजलि

श्रीमज्जवाहराचार्य-गुणाष्टकम्

● श्री नानेशाचार्यस्य चरणचञ्चरीकः मुनिः पार्श्वः

[१]

मुखचन्द्रविशेषसुधानिचय,
तपसा प्रविभाति युगाक्षिवरम् ।
श्रुतिपूर्णसुशोभितकर्णयुग,
प्रणमामि जवाहरपूज्यवरम् ॥

[२]

कलिकालमहार्णव-सेतुवर,
जनपापविनाशकर विमलम् ।
जिनधर्मजयध्वजवृ हणक,
प्रणमामि जवाहर-साधुवरम् ॥

[३]

भविवोधकर खलु शान्तिकर,
भवभीतिहर त्रयतापहरम् ।
समतारसदानकर शुभद,
प्रणमामि जवाहर-भानुवरम् ॥

] ४]

जिनशास्त्रसुमन्थनदक्षपरा,
परिनृत्यति गी. खलु यस्य मुखे ।

तमहं करुणानिधिपूर्णकलं,
प्रणमामि जवाहरमिन्दुवरम् ॥

[५]

शशिना हि विभाति निशा नियतं,
रविणा खलु भाति दिनं विमलम् ।
निशिवासरशोभितमस्य मुखं,
प्रणमामि जवाहरलालमहम् ॥

[६]

कटुतोपवमध्यगता नियता,
जडता हि गता जडवस्तुषु वा ।
अभिमानलवोऽपि गतो हि न तं,
प्रणमामि जवाहर दिव्य गुरुम् ॥

[७]

मनसापि विकारपथं न गतं,
शुचिसंयमसाधनतानिरतम् ।
तपसा परकार्यहिते हि रतं,
प्रणमामि जवाहर-बोधिपरम् ॥

[८]

सुसमाधियुतं सुवचं सहितं,
गुणरत्नपरीक्षणकारिपटुम् ।
प्रतिभारतसाधुजनैर्विनुतं,
प्रणमामि जवाहर-योगिवरम् ॥



पुण्य स्मरणम्

श्री रमेश मुनि

[राजस्थान केसरी श्री पुष्करमुनि जी के शिष्य]

उपजातिवृत्तम्

[१]

रराज सूर्योपमद्दिव्यदीप्ति
रत्नौघधारा धरणीधरोऽयम् ।
जवाहरो नाम मता वरेण्य
जात शरण्यो भुवि देववन्द्य ॥

[२]

अह सदा सयतभावपूर्णं
नमामि त प्राञ्जलिरानत सन् ।
विदा वदान्य मुनिवृन्दवन्द्यम्
जवाहर सन्ततमन्ततोऽलम् ॥

[३]

कथ नु कीर्तिस्तवमङ्गलेयम्
प्रदीप्यतेऽद्यापि मनस्विवृन्दे ।
यथाहि पुण्यात्तजनि सुगन्धि
पुण्याकरो भूतलमाविर्भाति ॥

[४]

नभो विभागे तरणिर्विभाति
विभाति नित्य विमलाभिराभि ।
तथैव दिव्ये जिनशासनेऽस्मिन्
जवाहर सूरिवरश्चकास्ते ॥

[५]

गुर्वग्रणीभिर्मम पुष्करैस्तं
यशो हि प्रत्यापितमस्ति दिव्यम् ।
मुनी रमेशो हृदये निधाय
गुणान् वरीतु यतते प्रकामम् ॥

श्री जवाहर चालीसा

※ श्री सुमेर मुनि

चौपाई

जैन जवाहर जय सुखकारी ।
जनकल्याणकरण तनुधारी ॥ १ ॥

नाथी नदन जनमनरजन ।
जीवराज–सुत, दु ख–निकदन ॥ २ ॥

नगर थादला, जन-मन भाया ।
जन्मभूमि, वन जग यश पाया ॥ ३ ॥

नश्वर जग, जजाल निहारा ।
महावीर पावन पण धारा ॥ ४ ॥

मगन ज्ञान रवि, सत गुरु धारे ।
वने जैन जग के उजियारे ॥ ५ ॥

ज्ञान चरण रवि किरण समाना ।
अज्ञ तिमिर-हर सव जग जाना ॥ ६ ॥

करुणा, कोमलता दिल धारी ।
सौम्य मूर्ति सज्जन मनहारी ॥ ७ ॥

जैनागम मर्मज्ञ मुज्ञानी ।
अनेकात नय युक्ति वखानी ॥ ८ ॥

गुणगण हीरक पूर्ण पिटारी ।
शिव सुर मदिर पद अधिकारी ॥ ९ ॥

पूर्णचद्र सम काति तिहारी ।
दीन–वधु भवि भव भयहारी ॥ १० ॥

घन गभीर मधुर स्वर प्यारा ।
जीवनपथ का एक सहारा ॥ ११ ॥

नई क्रांति जग मे चमकाई ।
धनिक-श्रमिक समकक्ष बनाई ॥ १२ ॥

देशाटन कर देश सुधारा ।
नष्टकरी रूढि वल टारा ॥ १३ ॥

मरुधर नभ दभी घन छाये ।
ज्ञान पवन से दूर हटाये ॥ १४ ॥

उच्च अहिंसा के अवतारी ।
मरुधर-मानस पक पखारी ॥ १५ ॥

देकर सम्यक् ज्ञान चपेटा ।
दया विरोधी दुर्मत मेटा ॥ १६ ॥

योग-युक्त हो पूरण योगी ।
विश्व श्रेय रत हो सहयोगी ॥ १७ ॥

चातक सघ मेघ तुम सोहे ।
वर्षा ज्ञानामृत मन मोहे ॥ १८ ॥

श्री अरिहत-सिद्ध-पद कामी ।
शिष्यवृन्द सब ही अनुगामी ॥ १९ ॥

श्रीपति नरपति भक्त तुम्हारे ।
ज्ञानदान दे जन्म सुधारे ॥ २० ॥

सम्यक् दर्शन ज्योति जगाई ।
शिवपथ की शैली समझाई ॥ २१ ॥

जिनशासन उपवन विकसाया ।
ज्ञान-सुमन सौरभ फैलाया ॥ २२ ॥

मिथ्या तम का क्षय कर डारा ।
हुआ सत्य का शुभ उजियारा ॥ २३ ॥

सम्मेलन मे सुषमा न्यारी ।
सोभित थे शशि सम अविकारी ॥ २४ ॥

महावीर पथ मे अनुरक्ता ।
महा-अल्प आरभ मुवक्ता ॥ २५ ॥

आज्ञाकारी संघ तिहारा ।
निर्मल व्रत जिसमे विस्तारा ।। २६ ।।
प्रतिभा अति ही प्रखर तुम्हारी ।
भ्रात हृदय की भ्रान्ति निवारी ।। २७ ।।
श्री गण ईश शरण तव लीना ।
करी कृपा निज सम पद दीना ।। २८ ।।
ज्ञान रतन इक इक अनमोले ।
दे उपदेश हृदय पट खोले ।। २६ ।।
जिनमत मे निष्क्रियता छाई ।
तुमने नव चेतना लाई ।। ३० ।।
मुद्रा शात विलोक तिहारी ।
हो अति प्रमुदित जनता सारी ।। ३१ ।।
जनसेवक निज पद बतलाया ।
भारत का नग रतन कहलाया ।। ३२ ।।
सत्य भाव से जो हो दासा ।
उच्च लोक पावें शिव वासा ।। ३३ ।।
पूज्य शिरोमणि दीन दयाला ।
नाम रटत तव होत निहाला ।। ३४ ।।
मोह तिमिर को दूर निवारा ।
सत्य ज्योति हित जीवन धारा ।। ३५ ।।
आत्मशुद्धि करी करि सथारा ।
अत समय सुरलोक सिधारा ।। ३६ ।।
अतर मे अतर कछु नाही ।
पर बाहर यह असह जुदाई ।। ३७ ।।
जैन जगत का तेज सितारा ।
हृदय बसो भवि भक्त सहारा ।। ३८ ।।
मरुधर जनपद के उजियारे ।
सदा ऋणी हम सर्व तुम्हारे ।। ३६ ।।
यही प्रबल विश्वास हमारा ।
सुखी निरतर भक्त तुम्हारा ।। ४० ।।

दोहा

पूज्य जवाहरलाल के, गुण गण ललित ललाम ।
जो "सुमेरु" निशि दिन रटे, पावे शिव सुखधाम ।।

कोटि नमन है

● हास्यकवि श्री हजारीलाल 'काका'

दिया आपने सारे जीवन जग को सदा मार्गदर्शन है,
पूज्य श्री आचार्य जवाहरलाल आपको कोटि नमन है।

[१]

सयम और साधना द्वारा सदा ज्ञान की ज्योति जलाई,
युगद्रष्टा बनकर मानव को अधकार मे राह दिखाई,
शास्त्र, पुराणो को निचोड कर सरस्वती का भडार भर गये,
और 'जवाहरलाल किरण' से तम रूपी अज्ञान हर गये।
इसीलिये ही यह सारा जग करे आपका अभिनदन है,
पूज्य श्री आचार्य जवाहरलाल आपको कोटि नमन है।

[२]

होकर के निर्भीक आपने हर कुरीति पर कलम चलाई,
युगस्रष्टा बनकर समाज को सदा नीति की रीति सिखाई,
समता, सत्य, समन्वयता का रवि बनकर प्रकाश फैलाया,
गलत मान्यता और रूढियो को समाज से दूर हटाया।
सघ-सगठन की दृढता पर दिया सदा पावन प्रवचन है,
पूज्य श्री आचार्य जवाहरलाल आपको कोटि नमन है।

[३]

पूज्य श्री की जन्म जयती मिलकर हम इस भाति मनायें,

उनके पदचिन्हो पर चल कर सद्–उपदेश अमल मे लायें,
राग–द्वेष को दूर हटा कर हर भाई को गले मिलायें,
दीन दुखी बहिनो को इस पापी दहेज से मुक्ति दिलायें,
"काका' श्रमणोपासक बनकर करे आपका कोटि नमन है,
पूज्य श्री आचार्य जवाहरलाल आपको कोटि नमन है ।

मुक्तक

जिस चेतन ने जड पत्थर को वीतराग भगवान बनाया,
लेकिन स्वय राग मे फसकर अपने ऊपर दृष्टि न लाया,
बाहर फिरा खोजता जिसको हर तीरथ पर शीश झुकाया,
'काका' खुद मे खुदा बसा पर खुद को खुद पहिचान न पाया ।



चले अदर कतरनी क्या करेगी हाथ की माला,
मरी जब तक न इच्छायें, मिले न मुक्ति का प्याला,
अगर है मोक्ष की इच्छा तो 'काका' मन करो वश मे,
तुम्हारी वासनाओ ने तुम्हे बर्बाद कर डाला ।



दर्पण सी निखरी जिनवाणी

● श्री विपिन जारोली

युग पुरुष !
वन्दन,
अभिवन्दन,
शत शत वन्दन !
जब था रूढ़िग्रस्त जन
जैन धर्म के
साधुमार्ग का ।
सूत्रो की व्याख्याए
अस्त-व्यस्त, बेमेल,
जिसने जैसा चाहा तोडा,
अपने अनुरूप मरोडा,
ढाला,
किया प्ररूपित उल्टा-सीधा ।
भिन्न-भिन्न व्याख्याए ।
पूज्यवर !
तुमने देखा,
सोचा, समझा और
गहन चिन्तना के शीशे मे
उभरी जब आकृति
वीरवाणी पर
जमी गर्द है ।
सहमे तुम-
दुखित हृदय हो ।

कुछ सोचा,
उछले
सकल्प तुम्हारा
"वीरवाणी पर जमी गर्द को
दूर हटाकर ही छोड़ूगा।"
फिर क्या था ?
आत्म-देश,
निर्भीक,
दृढ चरण तुम्हारे।
तुम बढे
चले,
वीरवाणी पर जमी गर्द को
झाड-पोछने—
सयम, तप, तेज, चारित्र का
लिये तौलिया।
हिली-दीवारें
खिसकी धरती,
रूढिग्रस्त मीनारें छिटकी।
तब
एकजुट हो रूढिग्रस्त सब
करने लगे वार यह कह कर-
"पाखण्डी है—
विक्षिप्त हो गया।
वीर वचन मे शका इसको,
मत मानो।"
पर तेज तुम्हारा
तुम युगमानव
तुमने कर दिया साफ-
हो गये ध्वस पाखण्ड शिविर
दर्पण सी निखरी जिनवाणी।
पर्दे के पीछे बोला 'धर्म—'
सब ने जाना पथ अपना,
कर्त्तव्य बोध।

जीवन के लक्ष्यो की परिणति ।
तुमने दी जीवन को गति,
गति को दे दिया मार्ग,
मार्ग को बतलाया लक्ष्य ।

बढ रहा आज युग–
ले तप, तेज तुम्हारा,
दर्शन, चारित्र तुम्हारे ।
पूज्य तुम्हारा शतवर्षीय–
जन्म–दिवस
वन्दन, अभिवन्दन, शत शत वन्दन ।



जवाहर-स्मृतियां

● श्री पारसमुनि

(१)

आज की
ये घड़िया
याद
दिला रही हैं
कि—
इस भूतल पर
शताब्दी पूर्व
ज्योतिर्धर
आचार्य श्री जवाहर
ने जन्म
ग्रहण किया
और
अपने जीवन की
पावन धारा से
उजागर
किया सबके
जन मानस को,
ऐसे ही
उस
युगद्रष्टा
महापुरुष की
स्मृतिया

(२)

अहा !
कितना सौरभमय
पुष्प पुष्पित हुआ था
धर्म के
सुन्दर उपवन मे,
जिससे
महक उठे थे
जगत के
मानव मन ।
वह
पुष्प जवाहर
अपनी
सुरभित सुगन्ध
से
आज भी
विद्यमान है
जनजन के
मन मे ।



काश, आज धरती पर होते

★ श्री श्रेणिक मांडोत

आचार्य जवाहरलाल के जन्म को, हो गए पूरे सौ साल रे,
काश ! आज धरती पर होते, होता क्या-क्या कमाल रे ।

संदेश दिया हर मानव को
अमृत-गगरी छलकाकर के,
अमृत पीकर कोई अमर हुआ
कोई प्यासा अकुलाकर के,

कहते थे, मैं धर्म-व्यापारी, तुम सब मेरे ग्राहक हो,
कोई ना लौटे खाली हाथ और, कोई न रहे कंगाल रे ।
काश, आज धरती पर होते ....

हर सन्ध्या की, हर ऊषा की
हर घड़ी तुमको करे प्रणाम,
मेरे देश के हर कण-कण मे
भरा हुआ ईश्वर का नाम,

संयम का राजा बनकर के, हर दिन का हर पल जीता,
मन का सूरज बन तोडा था, मोह माया का जाल रे ।
काश, आज धरती पर होते ....

हर अंधे को पथ दिखलाकर
दिव्य ज्योति में हुए विलीन,
गंगा जब तक है धरती पर
याद करे हर पावन दिन,

हर आंखों की ज्योति बनकर, फैलाया था धर्म-प्रकाश,
जन्म लिया बन विश्व-प्रणेता, कर गये सबको निहाल रे ।
काश ! आज धरती पर होते ....

❀

आचार्यश्री जवाहरलाल जन्म ले पृथ्वी पर आया

★ श्री नेमचन्द भोजक

ज्ञान का दीपक चमकाया,

आचार्य जवाहरलाल जन्म ले पृथ्वी पर आया ।
मालव प्रान्त रियासत झाबुआ थांदल हर्षाया,
नाथी वाई और जीवराज जी पुत्र रत्न पाया,
सेठ घर खुसी हुई भारी,
होते मगलाचार वधाई मागे नरनारी
थाल कासी का वजवाया ॥१॥ आचार्य जवाहर०

उम्र मास चौवीस काल का चक्र चल्या भारी,
फैल्यो हैजो रोग, मातेश्वरी ईश्वर को प्यारी,
पुत्र को दुःख हुआ भारी,
मातृ-हीन होकर वालक ने विपत्ति सही भारी ।
प्यार पिता ने दरसाया ।२। आचार्य जवाहर०

मातृहीन होकर वालक ने वय पाच वर्ष पाया,
किया यम ने कोप पिता को जग से उठवाया,
मुसीवत आई थी भारी,

दुखमय था ससार मुनि को हुई लाचारी ।
मामा ने इनको अपनाया ।३। आचार्य जवाहर०

झेले कष्ट अनेक शैशव मे दुख ही दु'ख पाया,
आश्रय मामा का पाकर के दुख को विसराया,
प्रकृति को यह भी नही भाया,
मातुल हीन किया वालक को सहारा छिनवाया ।
मोह का वन्धन तुडवाया ।४। आचार्य जवाहर०

जग को नश्वर जान, ध्यान दीक्षा का कर लीन्या,
मुनिवर घासीलाल ने इनका केश लोचन कीन्या,
उच्चार महामन्त्रो का किया,
मगन मुनि के शिष्य वनकर जीवन धन्य किया ।
मुनिवर मन मे हर्षाया ।५। आचार्य जवाहर०

वेश मुनियो का धार, विहार उसी दिन ही कीन्या,
मुनियो सग चलकर निवास शिव मन्दिर मे कीन्या,
शीत ने कोप किया भारी,
कांप्या मुनि का गात, साधुओ ने कृपा की भारी ।
निज वसन उनको ओढाया ।६। आचार्य जवाहर०

गुरु ने कृपा करी अध्ययन शास्त्रो का करवाया,
देख के साधु सेवा इनकी गुरुजी हरषाया,
वियोग निज गुरुवर का होया,
गुरुजी सिधारे स्वर्ग, जवाहर मन मे घवराया ।
मस्तिष्क मे पागलपन छाया ।७। आचार्य जवाहर०

प्रथम चातुर्मास धार नगरी मे फरमाया,
जगल मे झरने के स्वर से शिक्षा ले पाया,
राग-द्वेष निज मन का निपटाया,

ज्ञान रूपी भानु बन करके संघ को सरसाया ।
हटाया अज्ञान का साया ।८। आचार्य जवाहर०

कारज किए अनेक साहस के श्रावक हर्षाये,
चातुर्मास पचास हिन्द मे आपने फरमाये,
सफलता जीवन मे पाई
श्रावक केसरीलालजी से शिक्षा आगमो की पाई ।
पावन जन्म-भूमि को किया ।९। आचार्य जवाहर०

करके उपवास कठोर रोग सग्रहणी का मिटवाया,
श्रीलाल जी गुरुवर से सम्मान बहुत पाया,
मुनि ने प्रवचन दिए भारी,
हिंसा वृत्ति और मद्यपान का त्याग हुआ भारी ।
शुद्ध-भाव वधिको मे आया ।१०। आचार्य जवाहर०

सम्वत् १९७५ साल मे दुष्काल पडा भारी,
भूख से पीडित होकर जनता ने कीनी चित्कारी,
हृदय मुनिवर का दहलाया
देकर के उपदेश धनिक लोगों को चेताया ।
भोजन भूखो को दिलवाया ।११। आचार्य जवाहर०

रतलाम नगर सुख धाम सम्वत् पिचेतर का आया,
युवाचार्य का पद देकर श्रीलालजी हर्षाया,
अभिनन्दन जन मानस ने किया,
तत्पश्चात श्रीलालजी महाराज ने स्वर्ग गमन किया।
भाव गुरुकुल का मन भाया ।१२। आचार्य जवाहर०

आचार्य पद आमीन जवाहर ने सेवा कार्य किए,
खादी प्रचार और अछूतोद्धार के कार्य महान् किए,
सहयोग देश सेवा मे दिया,
गणेशीलाल जी को चादर उढाकर उत्तराधिकार दिया।
श्रावक सब ही हर्षाया ।१३। आचार्य जवाहर०

जाग्या बीकाणे रा भाग गुरुवर भीनासर आया,
अन्तिम चातुर्मास जीवन का वहा ही फरमाया,
सदेशा स्वर्ग का आया
जीवन सफल बनाकर मुनि ने स्वर्ग धाम पाया।
'नेम' ने जस गुरुवर का गाया ।१४। आचार्य जवाहर०
आचार्य जवाहरलाल जन्म ले पृथ्वी पर आया।



वाणी गूंजेगी सदियों तक

★ श्री ताराचन्द मेहता

युगद्रष्टा युगस्रष्टा, साक्षात् पूज्य जवाहर थे ।
सद्धर्म का उद्योत किया, पाखंडी–मान–विदारक थे ।। १ ।।

महाप्रतापी उग्रविहारी, कठिन करणी के धारी थे ।
गौर वर्ण प्रभावशाली, जो जन–जन के हितकारी थे ।। २ ।।

सिंह–गर्जना करते थे, अखण्ड बाल–ब्रह्मचारी थे ।
वाणी ओजस्वी थी जिनकी, प्रभावित हुए नरनारी थे ।। ३ ।।

जीवराज जी जनक जिन्हो के, नाथीबाई थी माताजी ।
थादला ग्राम धन्य हो गया, कवाड वंश का नानाजी ।। ४ ।।

पूज्य हुक्म की सम्प्रदाय मे, षष्टम् पाट विराजित थे ।
खूब दिपाया जैन धर्म को, भक्त आपके आश्रित थे ।। ५ ।।

अल्प बुद्धि मैं, क्या गुण गाऊ, पाण्डित्य प्रसिद्ध जिन्हो का है ।
ग्रंथ देखलो आज उन्ही के, सुवाणी भरा अनोखा है ।। ६ ।।

अमर नाम है नाम आपका, शरीर भले साक्षात् नही ।
वाणी गूंजेगी सदियों तक, लिखने की कोई बात नही ।। ७ ।।

स्थानकवासी सम्प्रदाय मे, उत्कृष्ट नाम तुम्हारा है ।
धन्य धन्य कहला गए, ताराचंद पूर्वाचार्य हमारा है ।। ८ ।।



श्रद्धांजलि ग़ज़ल

★ श्री प्यारेलाल मूथा

धन्य था सत वो जो बन के जवाहर आया ।
जिसने जीवन में सदा वीर धरम अपनाया ।।

करके अस्पृश्यो का उद्धार हरा तम मिथ्या ।
एक ही दीप ने कई सहस्र दीये प्रगटाया ।।

इक तरफ आत्म-स्वातंत्र्य करम से चाहा ।
देश के लोगो को स्वाधीन सबक समझाया ।।

वस्त्र स्वदेशी का था खूब हिमायती साधु ।
धन्य ! आजानबाहु ले के श्रमण यह आया ।।

कुप्रथाओ के विरुद्ध की थी नरों मे क्रांति ।
नारी उन्मेष का पथ श्रेष्ठ भला दिखलाया ।।

आज भी भाव हैं साकार 'गणेश' 'नाना' से ।
इस विषम दौर मे सम्मान बड़ा ही छाया ।।

'प्यारे' श्रद्धांजलि है धर्म के भूषण को मेरी ।
जो भीनासर मे सुरलोक पद को पाया ।।



वही जग में जवाहर कहलाए

● श्री मुलतान गोलछा 'मून'

जन मन मे जो छा जाए,
वाद-विवाद से ना घबराए,
हम-दम जिसके सब बन जाए,
रस समता मे जो रम जाए,
हर मानव के मन को भाए,
जो हुआ ऐमा मानव भू पर,
वही जग मे 'जवाहर' कहलाए ॥ १ ॥

जल सा निर्मल स्वच्छ और साफ,
वाक्य मधुर रसीले व पाक,
हर के प्रति अटूट अनुराग,
रहे चेहरे पर मधुर मुस्कान,
विवेक जिमका कोई छीन न पाए,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग मे 'जवाहर' कहलाए ॥ २ ॥

जन्नत की जिसे चाह नही,
वाह-वाह की परवाह नही,
हठ-धर्मी का तर्क नही,
रङ्क-राजा मे फर्क नही,

अपने लक्ष्य को जो बढता जाए,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग मे 'जवाहर' कहलाए ॥ ३ ॥

जग को वीर का सन्देश सुनाए,
वाद स्याद् को जो अपनाए,
हम जिसको कभी भूल ना पाए,
रही नही विभूति वह कहा से लाए,
पढें साहित्य तो उन्हें निकट पाए,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग मे 'जवाहर' कहलाए ॥ ४ ॥

मुझ को जिससे लेनी शिक्षा,
लक्ष्य बने लें कभी हम भी दीक्षा,
तारो मुझको मागू ये भिक्षा,
नमन स्वीकारो न लो कठिन परीक्षा,
महापुरुषो के गुण हम गा न पाए,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग मे 'जवाहर' कहलाए ॥ ५ ॥



जवाहर–सन्देश

● स्वीटि गोलछा

भ्रातृवर,

सयम से चलो,
अपयश से टलो
कथनी – करनी एक रखो,
सही 'महावीर' का सन्देश रखो,
नित्य जीवन मे नियम रखो,
आत्मा अपनी को परखो,
आरम्भ – सारम्भ मत करो,
आडम्बर तुम बन्द करो,
पापो से तुम खूब डरो,
झूठे झगडे समाप्त करो,
अमरत्व को प्राप्त करो,
सादगी को अपनाओ,
जैनत्व को चमकाओ,
गर अपने पथ से भटक गए
तो अधर मे तुम लटक गए,
सभी तुमको झटक गए
गर दर्पण तुम्हारे चटक गए,
फिर काम नही आयेगा परिवेश
यही है "जवाहर – सन्देश"

जय हो, विजय

● श्री सुजानमल नागौरी

श्रद्धेय ऋषिराज, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
आचार्य पद के धारी, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
श्री वीर के पुजारी, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
जवाहर से उजागर, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
लालजी[1] के पट्टधर, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
महा प्रतापी पूज्य, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
राज सा[2] के लाल, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
की अनोखी देशना, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
जय मात नाथी जी, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
होन-हार रत्न मालव, धन्य हो, तुम धन्य हो।
विजय बने "वीर संघ", धन्य हो, तुम धन्य हो।
हो " चतुर " वर्ष धन्य, धन्य हो, तुम धन्य हो।



---

१ पूज्य श्री श्रीलालजी म सा, २ आपके पिताजी का नाम जीवराज जी था।

शताब्दी-संवादः

© श्री नानेशाचार्यस्य चरणचञ्चरीकः मुनिः पार्श्व

प्रथम दृश्यम्

१ सखा– अहह ! अद्य अस्माकं नगरे किमर्थमियं महती जनसंकुला सभा आयोजिता ?

२ सखा– किं न जानासि ?

१ सखा– न जाने ।

२ सखा– अस्माकं समाजस्य ज्योतिर्धराचार्याणां जन्मशताब्दी विद्यतेऽद्य ।

१ सखा– इमे ज्योतिर्धराचार्याः के आसन् ?

२ सखा– किं नाश्रौषीः ?

१ सखा– मया तु अद्यावधि तन्नाममात्रमपि न श्रुतम् ।

२ सखा– महदाश्चर्यम् ! यत् त्वया नाममात्रमपि न श्रुतम् ! ते तु जगत्प्रसिद्धाः ।

१ सखा– त्वर्यताम्, त्वर्यताम् पूर्णपरिचयेन सनाथो क्रियताम् ।

२ सखा– तर्हि श्रूयताम् ते हुक्मगच्छाधिपाः षष्ठमाचार्याः श्री जवाहरलाल महोदयाः महाराज आसन् ।

१ सखा– तेषां जन्मस्थली क्वास्ति ?

२ सखा– जन्मस्थली सौन्दर्यस्थूलीभूत मालवप्रान्तस्य "थान्दला" इति ग्रामे ।

१ सखा– पितरौ किन्नामधेयौ ?

२ सखा– 'नाथीदेवी' इति माता, जीवराजमहोदय तु पिता

१ सखा– कदा जन्म गृहीतम् ?

२ सखा– '१९३२' विक्रमाब्दे कार्तिकमासस्य शुक्लपक्षस्य चतुर्थ्याम् ।

१ सखा– दीक्षा कदा सम्पन्ना ?

२ सखा– '१९४८' विक्रम सम्वत्सरे मार्गशीर्षमासस्य शुक्लपक्षस्य द्वितीयायाम्।

१ सखा– किं तैरध्ययनमपि कृत न वा ?

२ सखा– अध्ययनविषये तु किं प्रष्टव्यम्–जिनागमाना तु अतीव चिन्तन-मनन-पूर्वक पठन कृतम् । अथ च–गीता–रामायण–उपनिषद्–बाईबिल–गाधी साहित्य–सत साहित्यप्रभृति ग्रथाना पठनम्, पुनश्च मस्कृत-प्राकृत–महाराष्ट्री–गुजराती–प्रभृति भाषाना अध्ययन साधुरूपेर कृतम् । किं बहुना ?

१ सखा– अहो ! साधुकृतम्, साधुपठितम् ।

द्वितीय–दृश्यम्

१ सखा– तदनन्तर किं जातम् ? इति कथ्यताम् ।

२ सखा– तर्हि शृणु–पुनरिमे पूज्यप्रवराणा श्री उदयसागराचार्याणा शुभाशीर्वादेन तथा श्री श्रीलालाचार्यै योग्य इति मत्वा रत्नपुर्या (रतलाम नगरे) १९७५ विक्रमाब्दे चैत्रमासस्य कृष्णपक्षस्य नवम्याम् युवाचार्यपदे प्रतिष्ठापिता ।

१ सखा– अहो ! किं, इयति योग्यता प्राप्ता ?

२ सखा– कथ न प्राप्स्यन्ति ? किमाश्चर्यम् ? यत्ते तु नैसर्गिकीप्रतिभया सम्पन्न आसन् । ततश्च आचार्यश्री श्रीलालमहोदयाना दिवगते १९७७ विक्रमसवत्सरे आषाढमासस्य शुक्ल–पक्षस्य तृतीयायाम् समुदितसकल सघेन आचार्यपदे प्रतिष्ठापिता ।

१ सखा– स्वजीवने किमपि विशिष्ट कार्यं कृतम् ?

२ सखा– जीवने तु अनेकानि विशिष्टकार्याणि कृतानि किन्तु तेषा मध्ये एक कार्यं महत्त्वपूर्णं वर्तते ।

१ सखा– तत्कीदृश कार्यम् ?

२ सखा– तै मरुधरप्रदेशस्य स्थलीप्रान्ते विविधानि कष्टानि प्रसह्य वीतराग धर्मस्य साधुरूपेण प्रचार कृत ।

१ सखा– किं कापि ग्रन्थरचनापि कृता वा न वा ?

२ सखा– का वार्ता तेषा ग्रन्थरचनाविषये ? सद्धर्ममण्डनम्, अनुकम्पाविचारम्, सूत्रकृताङ्गसूत्रस्य हिन्दी व्याख्यादयोऽनेके ग्रन्था तै ज्योतिर्धराचार्यै रचिता तेऽद्यापि प्रामाणिक परिषदि प्रमाणरूपेण प्रसिद्धा सन्ति।

तेषां प्रवचनानां संग्रहस्तु अद्भुत एवास्ति, 'जवाहर किरणावलीति' नाम्ना पञ्चत्रिंशत् पुस्तकरूपेण प्रकाशितोऽयं संग्रहः वर्त्तते ।

१ सखा– अहो ! बहूपकृतम् तैः ।

२ सखा– किं बहुना ? सम्पूर्णं जीवनमेव लोकोपकारमयमासीत् येनेयमुक्तिः चरितार्था कृता —

"परोपकाराय सतां विभूतयः ।" इति

१ सखा– अहो ! एतेन विशिष्टाचार्याणां परिचयेनाहं उपकृतोऽस्मि सखे !

२ सखा– अद्य तेषामेव जन्मशताब्दी महोत्सवः सर्वैर्मिलित्वा सर्वत्र समायोजितः ।

१ सखा– तर्हि तत्रैव आवाभ्यामपि चलितव्यम् पुनश्च श्रोतव्यं महापुरुषस्य पूर्णजीवनवृत्तम् ।

२ सखा– चल, चल अहमपि तत्रैव चलामि ।

(द्वावेव सभायां गतौ)



आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० के जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्ष

जन्म कार्तिक शुक्ला ४, विक्रम संवत् १९३२
दीक्षा मार्गशीर्ष शुक्ला २, विक्रम संवत् १९४८
युवाचार्यत्व चैत्र कृष्णा ९, विक्रम संवत् १९७५
आचार्यत्व आषाढ शुक्ला ३, संवत् १९७७
दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती मार्गशीर्ष शुक्ला २, विक्रम संवत् १९९८
स्वर्गारोहण आषाढ शुक्ला ८, विक्रम संवत् २०००

शत-शत वन्दन, हैं अभिनन्दन !

● श्री विनोद मुनि

हे विश्ववन्दनीय महारथी तू था जगती पर शूरवीर ।
हे अत्युपकारक हृदय सदय तत्ववेत्ता तू धीर गम्भीर ॥
क्षमा-शूरता प्रतिभायुक्त सकल जीवन आलोकित तेरा ।
हे धर्मधुरन्धर ! सत्य प्रचारक ! यह फैला है सुयश तेरा ॥
जप-तप-भक्ति की बीन बजाकर, जिनवाणी का शंखनाद किया ।
प्रतिबोध दिया भविजीवों को, उजडा गुलशन आबाद किया ॥
जीवन मधुवन मे पतझड भी, मधुमास रूप मे प्रगटाया ।
कठिन परीक्षण की वेला मे, ना निज मग से डिग पाया ॥
हे नवनिर्माण के सजग प्रहरी ! कण्टकीर्ण पथ पर चले तुम ।
फूल और कंटकशय्या पर, सीखे समता मे सोना तुम ॥
तेज अनूप जीवन अभिराम करते मनरंजन चिन्ताभंजन ।
जन्मशती पर गुरुवर मेरे, शत-शत वन्दन, है अभिनन्दन ॥



हे ज्योतिपुञ्ज !

श्री कमलचन्द लूणिया

हे ज्योतिपुञ्ज !
विलुप्त से कहा हो
प्रतीक्षा
कर रही
जनता
आपकी
क्योंकि
आप
एक "जवाहर" हो,
आप जैसे
जवाहरात की
आवश्यकता है
जन मानस को
इस भूमण्डल पर
जिससे
हम मे
रही हुई
सुषुप्त
चेतना
फिर से
जागृत
हो
उठे ।

★

क्रांति–बिगुल बजाते थे

● श्री शान्तिसागर बैद

वाणी तेरी ओजस्वी थी, सुन–सुन जन हर्षाते थे ।
भाषण जब चालू होता तो, खुफिया वाले लिखते थे ॥

भीम भयकर पीडा मे भी, कभी नही घबराते थे ।
अल्पारभ और महारभ की, परिभाषा बतलाते थे ॥

थली प्रात मे सब से पहले, दया–दान प्रचार किया ।
फिजीलाट को थली प्रान्त में, शास्त्रार्थ मे हरा दिया ॥

पराधीन जब भारत था तब, नेता मिलने आते थे ।
भाषण इनका सुन–सुन करके, दूजा जवाहर बतलाते थे ॥

कपड़े सारे शुद्ध खद्दर के, इस्तेमाल मे लाते थे ।
बडे–बडे श्रावक प्रेरित हो, खद्दर पहना करते थे ॥

जैन धर्म के प्रबल सेनानी, क्रातिकारी कहलाते थे ।
नगर–नगर और गाव–गाव मे, क्राति बिगुल बजाते थे ॥

———

श्रीमद् जवाहराचार्य जी म. सा. की साहित्य-सूची

(श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर द्वारा प्रकाशित)

जवाहर किरणावली :

प्रथम	किरण	—	दिव्यदान	३ ७५ पै०
द्वितीय	,,	—	दिव्य जीवन	४ ०० ,,
तृतीय	,,	—	दिव्य सन्देश	२ ०० ,,
चतुर्थ	,,	—	जीवन धर्म	४ ७५ ,,
पाचवी	,,	—	सुबाहुकुमार	२ ५० ,,
सातवी	,,	—	जवाहर स्मारक, प्रथम पुष्प	३ ०० ,,
आठवी	,,	—	सम्यक्त्व पराक्रम, प्रथम भाग	२ ५० ,,
नवी	,,	—	,, ,, द्वितीय भाग	२ ५० ,,
दसवी	,,	—	,, ,, तृतीय भाग	२ ५० ,,
ग्यारहवी	,,	—	,, ,, चतुर्थ भाग	३ ७५ ,,
बारहवी	,,	—	,, ,, पचम भाग	३ ७५ ,,
सतरहवी	,,	—	पाण्डव-चरित्र, प्रथम भाग	१ ७५ ,,
अठारहवी	,,	—	,, ,, द्वितीय भाग	१ ७५ ,,
उन्नीसवी	,,	—	बीकानेर के व्याख्यान	२ ७५ ,,
इक्कीसवी	,,	—	मोरवी के व्याख्यान	२ ०० ,,
बाईसवी	,,	—	सम्वत्सरी	२ ०० ,,
तेईसवी	,,	—	जामनगर के व्याख्यान	२ ०० ,,
चौबीसवी	,,	—	प्रार्थना प्रबोध	३ ७५ ,,
पच्चीसवी	,,	—	उदाहरणमाला, प्रथम भाग	२ ०० ,,
छब्बीसवी	किरण	—	उदाहरणमाला, द्वितीय भाग	२ ७५ पैसे
सत्ताईसवीं	,,	—	,, तृतीय भाग	२ ७५ ,,
अट्ठाईसवी	,,	—	नारी-जीवन	२ ७५ ,,
उनतीसवी	,,	—	अनाथ भगवान्, प्रथम भाग	२ ०० ,,
तीसवी	,,	—	,, ,, द्वितीय भाग	१ ५० ,,
सद्धर्म-मंडन				११ ०० ,,

(श्री सम्यक्ज्ञान मंदिर, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)

इकतीसवीं किरण	—	गृहस्थ धर्म, प्रथम भाग	१ ६२ पैसे
बत्तीसवीं ,,	—	,, द्वितीय भाग	१ ७५ ,,
तेतीसवीं ,,	—	,, तृतीय भाग	१ ५० ,,

(श्री जैन जवाहर मित्र मंडल, ब्यावर द्वारा प्रकाशित)

तेरहवीं किरण	—	धर्म और धर्मनायक	२ ६० पैसे
चौदहवीं ,,	—	राम वनगमन, प्रथम भाग	३ ०० ,,
पन्द्रहवीं ,,	—	,, ,, द्वितीय भाग	३ ०० ,,
चौतीसवीं ,,	—	सती राजमती	२ ०० ,,
पैंतीसवीं ,,	—	सती मदनरेखा	२ ७५ ,,

(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा प्रकाशित)

छठी किरण	—	रुक्मिणी विवाह	२ २५ पैसे
सोलहवीं ,,	—	अंजना	१ २५ ,,
बीसवीं ,,	—	शालिभद्र	२ २५ ,,
हरिश्चन्द्र तारा			२ ०० ,,
जवाहर ज्योति			३ ०० ,,
चिन्तन-मनन-अनुशीलन, प्रथम भाग			१ ०० ,,
चिन्तन ,, ,, द्वितीय भाग			१ ०० ,,

(श्री श्वे साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर द्वारा प्रकाशित)

जवाहर-विचार सार — २ ५० ,,

(श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल, रतलाम द्वारा प्रकाशित)

सेट—१

श्री भगवती सूत्र पर व्याख्यान, भाग ३
,, ,, ,, ,, ४
,, ,, ,, ,, ५
,, ,, ,, ,, ६
} ४ ०० पैसे

सेट—२

अनुकम्पा-विचार, भाग १
,, ,, ,, २
} २ ०० पैसे

सेट—३

राजकोट के व्याख्यान, भाग १		
„ „ „ २	}	२ ५० पैसे
„ „ „ ३		

सेट—४

सम्यक्त्व-स्वरूप		
श्रावक के चार शिक्षाव्रत		
श्रावक के तीन गुणव्रत	}	१ ५० पैसे
श्रावक का अस्तेय व्रत		
श्रावक का सत्यव्रत		
परिग्रह परिमाण व्रत		

सेट—५

तीर्थङ्कर चरित्र, प्रथम भाग		
„ „ द्वितीय भाग		
सकडाल पुत्र	}	२ ५० पैसे
सनाथ-अनाथ निर्णय		
श्वेताम्बर तेरह पथ		

नोट— पूरे सेट लेने पर ११०० मे प्राप्त होंगे ।

धर्म व्याख्या	१.२५ पैसे
सुदर्शन-चरित्र	२ २५ „
श्री सेठ धन्ना चरित्र	१.५० „

नोट— "जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की जीवनी" नामक वृहद् ग्रन्थ का प्रकाशन श्री श्वे साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर की ओर से हुआ है ।

परिशिष्ट—२.

संघ के कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१ ताप और तप २ ५०
(आचार्य श्री नानालाल श्री म सा)

२ समता दर्शन और व्यवहार ४ ००
(आचार्य जी नानालाल जी म सा)

३ अनुभव पराग २ ००
(पूज्य मुनि श्री शातिलाल जी म सा)

४. **Lord Mahavir & His Times** ६० ००
(Dr K C Jain)

५ **Bhagwan Mahavir and His Relevence in Contemporary Age** २५ ००
(Dr Narendra Bhanawat & Dr Prem Suman Jain)

६ भगवान महावीर आधुनिक संदर्भ मे ४० ००
(डा० नरेन्द्र भानावत)

७ आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा व्यक्तित्व एवं कृतित्व २ ००
(पाकेट बुक साइज)
(डा० नरेन्द्र भानावत एव श्री महावीर कोटिया)

८ श्रीमद् जवाहराचार्य—समाज (पा बुक सा) २ ००
(श्री ओकार पारीक)

९ समराइच्च कहा १५ ००
(डा० छगनलाल जी शास्त्री)

१० प्राकृत पाठमाला १५ ००
(प० श्री श्यामलाल जी ओझा शास्त्री)

११ सौन्दर्य दर्शन (कथा-संग्रह) २ ००
(श्री शान्तिचद्र मेहता)

१२ जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की जीवनी
(श्री श्वे सा जैन हितकारिणी सस्था, बीकानेर)

परिशिष्ट–३

वीर संघ योजना

धर्म–प्रधान भारत के आध्यात्मिक आकाश के प्रकाश–स्तम्भ, युगद्रष्टा, युगस्रष्टा, युग–प्रवर्तक, ज्योतिर्धर जैनाचार्य स्व० श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने अपनी उद्बोधक प्रवचन शृखलाओ मे सद्गुणो के प्रचार–प्रसार एव सयम साधना के निखार हेतु एक महान् योजना प्रस्तुत की थी। भगवान महावीर के साधना मार्ग को प्रशस्त बनाने वाली इस जीवनोन्नायक मध्यम मार्गीय साधनायुक्त प्रचार–योजना को वीर निर्वाण के ऐतिहासिक वर्ष मे— '**वीर संघ योजना**" के नाम से सम्बोधित करना समीचीन समझा गया है।

स्वर्गीय आचार्यश्री साधुत्व को उसके वास्तविक स्वरूप मे ही साधना के उच्चस्थ शिखर पर आसीन देखना चाहते थे, एव प्रवृत्ति–परक प्रचार–प्रसार के कार्यों मे गृहस्थ–वर्ग का सलग्न रहना ही उपयुक्त मानते थे। परन्तु पारिवारिक दायित्वो एव सासारिक झझटो मे अत्यधिक उलझा रहने के कारण गृहस्थ–वर्ग अपने उस उत्तरदायित्व का परिपालन नही कर पा रहा है। फलत गृहस्थ के करने योग्य कार्यों मे भी सतजनो को स्वेच्छया अथवा विवशतावश सलग्न होते सुना एव देखा भी गया है। ऐसी स्थिति मे उन्हें कही कही साधुत्व की मर्यादा के विपरीत भी कई अकरणीय कार्य करने पड जाते है, जिससे न केवल उनकी साधना का स्तर ही घटने लगता है वरन शनै शनै वे साधना से परे होकर वेषधारी प्रचारक ही रह जाते हैं, जो श्रमण–सस्कृति के लिए कदापि आचरणीय नही।

आचार्यश्री जी के लिए किसी भी साधक की साधना मे अणुमात्र की कमी भी असह्य थी। अत उन्होंने साधुत्व को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से प्रचार–प्रसार के कार्य हेतु साधु और गृहस्थ के मध्य एक ऐसे वर्ग की सुविचारित व्यावहारिक योजना प्रस्तुत की, जो निम्नलिखित चार आधारभूत स्तम्भो पर आधारित है —

(१) निवृत्ति (२) स्वाध्याय (३) साधना (४) सेवा ।

साधना के स्तर पर वीर सघ के सदस्यो की तीन श्रेणिया रहेगी–(१) उपासक सदस्य (२) साधक सदस्य (३) मुमुक्षु सदस्य ।

(१) उपासक सदस्य—

उपासक सदस्य अपने परिवार एव व्यवसाय से **आंशिक निवृत्ति** लेकर प्रतिदिन सामायिकपूर्वक **स्वाध्याय** एव व्रत प्रत्याख्यान–पूर्वक **साधना** करते हुए निष्काम भाव से **सेवारत** होने का निरन्तर अभ्यास करेंगे ।

(१) आंशिक निवृत्ति— आशिक निवृत्ति से तात्पर्य है— वार्षिक एव दैनिक दिनचर्या का बारहवा हिस्सा निवृत्ति मे व्यतीत करना । प्रतिदिन चौबीस घण्टो मे से दो घण्टा एव प्रति वर्ष १२ महीनो मे से एक महीना पारिवारिक एव व्यावसायिक दायित्वो से अलग होकर बिताना। इसमे का आधा समय स्वाध्याय एव साधना मे तथा आधा समय सेवाकार्यों मे लगाना ।

(२) स्वाध्याय—सदस्य दैनिक निवृत्ति का आधा समय अर्थात् प्रतिदिन दो घण्टो में से एक घण्टा सामायिक अर्थात् समभाव साधनापूर्वक स्वाध्याय यानि स्वय का अध्ययन, अन्तरावलोकन का अभ्यास करेंगे । स्वाध्याय, जीवन साधना, सम्यग् क्रिया एव सम्यग् चारित्र के लिए सम्यक् ज्ञान की पृष्ठभूमि तैयार करता है ।

(३) साधना— स्वाध्याय से अर्जित सम्यक् ज्ञान की पृष्ठभूमि पर जीवन को विशुद्ध व सयमित, नियमित, मर्यादित बनाने के अभ्यास क्रम मे सदस्य व्रत प्रत्याख्यान पूर्वक स्वयं को व्रती और साधनामय रखेंगे । साधना उनके दैनिक कार्य एव व्यवहार मे परिलक्षित होनी चाहिये । वे पूर्ण निवृत्त न होने के कारण पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकें तो स्वपत्नी–मर्यादा रख कर आशिक ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे । वे प्रतिवर्ष एक माह के निवृत्ति काल मे से आधा समय अर्थात् १५ दिन किसी साधना–शिविर मे रहकर अथवा एकान्त साधना करके आत्मस्थ होने का प्रयत्न करेंगे ।

(४) सेवा—आत्मचिंतन (स्वाध्याय) एव आत्मानुशासन (साधना) के प्रशस्त मार्ग पर चलकर सदस्य अपनी आशिक निवृत्ति का शेष आधा समय अपनी रुचि के अनुरूप समाज अथवा सघसेवा के कार्यों मे निष्काम भाव से व्यतीत करेंगे । वे प्रतिदिन एक घण्टा स्थानीय समाज अथवा सघ के सेवा कार्यो मे एव वर्ष मे १५ दिन किन्ही विशिष्ट सेवा–योजनाओ मे सेवारत रहकर अपना समुत्कर्ष करेंगे ।

साधक सदस्य—

साधक सदस्य उपासक-सदस्यो से साधना के क्षेत्र मे विशिष्ट होगे। वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे और पारिवारिक व व्यावसायिक उत्तरदायित्वों से पूर्ण निवृत्त न हो पाने के कारण आंशिक निवृत्ति के साथ ही स्वाध्याय तथा सेवा के क्षेत्र मे भी उपासक सदस्यो से अधिक समय देगे।

(३) मुमुक्षु सदस्य—

मुमुक्षु सदस्य परम पूज्य जवाहराचार्यजी म सा के मूल स्वप्न को साकार बनाने वाले गृहस्थ एव साधुवर्ग के बीच की कडी होगे। वे एक प्रकार से तीसरे आश्रम-वानप्रस्थ के तुल्य साधनायुक्त जीवन के साथ धर्म प्रचार की प्रवृत्तियो का सचालन करेंगे। उनकी गृहस्थ-जीवन से लगभग पूर्ण निवृत्ति होगी। वे नाम मात्र के लिए परिवार से सम्बन्वित होगे। परिवार एव गृहस्थ के साथ रहते हुए भी पारिवारिक उत्तरदायित्वो से विरत-अनासक्त-व्रती श्रावक के रूप मे साधना व सेवा-कार्यो मे सर्वभावेन रत रहेगे। भावना के स्तर पर वे गृहस्थ से दूर एव साधुत्व के समीप रहेगे। उनका जीवन स्वाध्याय, साधना और सेवा से ओतप्रोत होगा। समाज सेवा एव धर्मप्रभावना के लिए वे आवश्यकतानुसार देश विदेश का प्रवास भी करेंगे। वे श्रावक वर्ग की उच्चस्थ स्थिति के आदर्श स्वरूप होगे।

नोट—विस्तृत जानकारी हेतु श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर द्वारा प्रकाशित वीर-सघ [रूप रेखा एव नियमावली] पुस्तक द्रष्टव्य है।



जैसे दीपक के प्रकाश के सामने अन्धकार नही रह सकता, उसी प्रकार शील के प्रकाश के सामने पाप का अन्धकार नही ठहर सकता। मगर पाप के अन्धकार को मिटाने और शील के प्रकाश को फैलाने के लिए दृढता, धैर्य और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

यो तो अचेत अवस्था मे पडे हुए आत्मा मे भी राग-द्वेष प्रतीत नही होते, फिर भी यह नही कहा जा सकता कि अचेत आत्मा राग-द्वेष से रहित हो गया है। जो आत्मा ज्ञान के आलोक मे राग-द्वेष को देखता है - राग-द्वेष के विपाक को जानता है और फिर उसे हेय समझकर उसका नाश करता है वही राग-द्वेष का विजेता है । दुमुही का क्रुद्ध न होना, क्रोध को जीत लेने का प्रमाण नही है । क्रोध न करना उसके लिए स्वाभाविक है । अगर कोई सर्प ज्ञानी होकर क्रोध न करे तो कहा जायगा कि उसने क्रोध को जीत लिया है, जैसे चंडकौशिक ने भगवान् के दर्शन के पश्चात् क्रोध को जीता था । जिसमे जिस वृत्ति का उदय ही नही है, वह उस वृत्ति का विजेता नही कहा जा सकता अन्यथा समस्त बालक काम-विजेता कहलाएगे ।

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म.

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

क्रान्तद्रष्टा

श्रीमद् जवाहराचार्य

सम्पादन

डॉ० शान्ता भानावत

प्रकाशक

श्री० अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

क्रान्तद्रष्टा

श्रीमद् जवाहराचार्य

○

सम्पादन

डॉ. शान्ता भानावत

○

प्रकाशक—

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

समता-भवन, रामपुरिया मार्ग

बीकानेर (राजस्थान)

○

संस्करण : १९७६

मूल्य : पाँच रुपये

मुद्रक

जैन आर्ट प्रेस, बीकानेर (राज०)

समर्पण

संयम, साधना एवं ज्ञानज्योति

को

प्रज्वलित करने वाले

युगप्रवर्तक, क्रान्तद्रष्टा

परम श्रद्धेय

आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा

की

पुण्य स्मृति

को

सादर सविनय

समर्पित

प्रकाशकीय

यह बड़ा सुखद संयोग है कि भगवान महावीर के २५वें निर्वाण शताब्दी समारोह के समापन के साथ ही उन्ही के धर्मशासन के इस युग के महान् क्रांतिकारी युगपुरुष श्रीमद् जवाहराचार्य का जन्म-शताब्दी समारोह मनाने का हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक और प्रभावशाली था। आपकी दृष्टि बड़ी उदार तथा विचार विश्वमैत्री भाव और राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत थे। आपने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सत्याग्रह, अहिंसक प्रतिरोध, खादी धारण, गोपालन, अछूतोद्धार, व्यसनमुक्ति जैसे कार्यक्रमो मे सहयोग देने की जनमानस को प्रेरणा दी और बालविवाह, वृद्धविवाह, दहेजप्रथा, मृत्युभोज, सूदखोरी जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ 'लोक-मानस' को जागृत किया। आपके राष्ट्रधर्मी, क्रांतद्रष्टा व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल, प० मदनमोहन मालवीय आदि राष्ट्रीय नेता आपके सम्पर्क मे आये।

स्वर्गीय आचार्यश्री साधुत्व को उसके वास्तविक स्वरूप में ही साधना के उच्चस्थ शिखर पर आसीन देखना चाहते थे एवं प्रवृत्तिपरक प्रचार-प्रसार कार्य में गृहस्थवर्ग का संलग्न रहना ही उपयुक्त मानते थे। आचार्यश्री के लिये किसी भी साधक की साधना मे अंश मात्र की कमी भी असह्य थी, अतः उन्होंने साधुत्व को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से प्रचार-प्रसार के कार्य हेतु साधु और गृहस्थ की मध्यमार्गीय **'वीर संघ योजना'** प्रस्तुत की, जो काल की अपरिपक्वता के कारण उस समय पूरी न हो सकी, पर अब आचार्यश्री की सौवी जन्म-जयन्ती पर कार्तिक शुक्ला चतुर्थी, विक्रम सं० १९३२ के दिन क्रियान्वित की जा चुकी है। इस योजना के आधारभूत स्तम्भ हैं— निवृत्ति, स्वाध्याय, साधना और सेवा तथा इसके तीन श्रेणी के सदस्य हैं - उपासक, साधक और मुमुक्षु।

आचार्यश्री अछूतोद्धार के प्रवल समर्थक थे । आपका दिया हुआ बीजमंत्र हीं धर्मपाल प्रवृत्ति के रूप मे आज सघ की मुख्य प्रवृत्ति वना हुआ है । चारित्र-चूडामणि परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालाल जी म सा. ने आज से १३ वर्ष पूर्व समाज में अस्पृश्य समझी जाने वाली वलाई जाति को व्यसन मुक्त कर, सस्कारशील वनाने के युगनिर्माणकारी महान् ऐतिहासिक कार्य की प्रेरणा दी, जिसके फलस्वरूप संघ के अनेक कार्यकर्ता इस जीवन-निर्माणकारी महद् अनुष्ठान मे सक्रिय रूप से जुट गये । धर्मपाल वन्धुओ से जीवन्त सपर्क करने और उनमे आत्मविश्वास और स्वावलम्वन की भावना जागृत करने की दृष्टि से संघ ने 'धर्मजागरण पदयात्रा' का एक विशेष कार्यक्रम आरम किया है । आचार्यश्री के जन्मशताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य मे प्रसिद्ध समाजसेवी पद्मश्री डॉ० नन्दलाल जी वोरदिया के मार्गदर्शन मे संघ ने धर्मपाल क्षेत्रो मे **'श्री जवाहराचार्य चल-चिकित्सालय'** का शुभारभ किया है ।

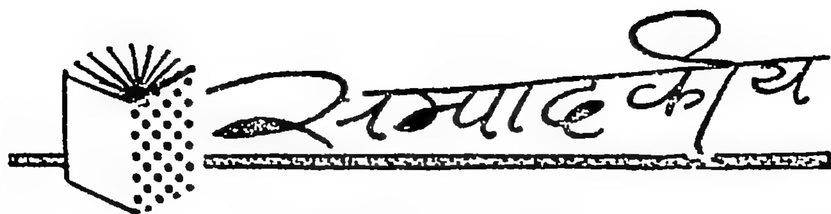
आचार्यश्री प्रखर वक्ता और असाधारण वाग्मी महापुरुष थे । 'जवाहर किरणावली' नाम मे ३५ भागो मे आपका प्रेरणादायी प्रवचन–साहित्य सकलित है । जन्मशताब्दी वर्ष मे डॉ० नरेन्द्र भानावत के सयोजन सम्पादन मे हमने आचार्यश्री की प्रेरणादायी जीवनी तथा धर्म, समाज, राष्ट्रीयता, शिक्षा, नारी जागरण जैसे महत्त्वपूर्ण विपयो पर प्रगट किये गये उनके विचारो को 'सुगम पुस्तकमाला' के रूप मे जन-जन तक पहुचाने का निर्णय लिया है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ क्रातद्रष्टा 'श्रीमद् जवाहराचार्य' का प्रकाशन इसी दिशा मे एक कदम है । इसे सर्वांग सम्पूर्ण वनाने में जिन विद्वान् मुनियो, लेखको और कवियो ने अपनी मूल्यवान रचनाए भेजकर जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं ।

गुमानमल चोरड़िया
अध्यक्ष

भवरलाल कोठारी
मत्री

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर



जन्मशती : एक ज्योतिवाही जागरूक चेतना की

हम सौभाग्यशाली हैं कि हमे महान् क्रातिकारी युगप्रवर्तक, ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा का जन्म-शती समारोह मनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ । यो इतिहास के वृहद् कालक्रम मे १०० वर्षों का कोई विशेष महत्त्व नही होता पर आचार्यश्री का व्यक्तित्व इतना प्रभावक और लोकप्रबोधकारी रहा है कि उसने तत्कालीन जनजीवन को झकृत और स्पदित कर डाला ।

श्रीमद् जवाहराचार्य का समय एक प्रकार से भारतीय राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पुनर्जागरण का समय है । सामान्य धर्माचार्य जहा राष्ट्र की इस करवट लेती हुई सचेतना से वेसुध थे, वहा आचार्यश्री के ज्योतिवाही, जागरूक चेतनाशील व्यक्तित्व ने समय की नब्ज को पहचाना और उसे स्वस्थ, सबल तथा सतेज बनाये रखने के लिये अपनी सयम-साधना का आलोक बिखेरा । उसके अमृतस्पर्शी स्फुलिंग आज भी हमारा पथ-सधान कर रहे हैं, हममे नई शक्ति और स्फूर्ति का सचार कर रहे हैं ।

आचार्यश्री अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त सजग और सवेदनशील थे । विलक्षण प्रतिभा, प्रत्युत्पन्न मतित्व, दूरगामी दृष्टि और त्वरित निर्णयशक्ति ने उनमे एक विशेष प्रकार का ओज और सामर्थ्य भर दिया था जिसके कारण वे आत्मधर्म के साथ-साथ राष्ट्रधर्मिता के भी प्रबुद्ध व्याख्याता और उद्बोधक

बन गये । यद्यपि उनकी व्याख्या और उद्‌बोधना धार्मिक और आध्यात्मिक सवेदना के धरातल से प्रेरित होती थी, पर उसमे लोकमगल और सामाजिक अभ्युदय का स्वर सदैव व्यजित रहता था। जीवन निर्माणकारी प्राचीन उदात्त परम्पराओ के वाहक होते हुए भी आचार्यश्री नवीन आदर्शों और विचारो के प्रतिष्ठापक थे । इसी नवनवोन्मेषशालिनी दृष्टि और सूक्ष्म प्रज्ञा से वे श्रमण-वर्ग मे अन्य-धर्मी पडितो से सस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा प्रारभ कर सके, कृषिकर्म की अल्पारभता सिद्ध कर सके और स्वदेशी वस्तुओ के उपयोग मे सापेक्ष दृष्टि से अहिंसा की अधिक परिपालना अनुभव कर सके ।

आज आचार्यश्री का भौतिक पिंड हमारे समक्ष नही है, पर उनके विशाल प्रवचन-साहित्य और चरिताख्यान के रूप मे उनका तेजस्वी विचारक और आध्यात्मिक धर्मोपदेष्टा का रूप हमारे सामने है । हमारा यह पुनीत कर्तव्य है कि हम अपने नियमित अध्ययन-क्रम मे इस सत्साहित्य मे अवगाहन करें, उससे आत्मसाक्षात्कार करें और श्रेय तथा अभ्युदय के मार्ग पर निरतर आगे बढते रहने का अभ्यास करें । आचार्यश्री के प्रति यही हमारी सच्ची श्रद्धांजलि है ।

आचार्यश्री के विचार आज की बदली हुई परिस्थिति मे इतने सटीक और सार्थक लगते है कि जैसे वे कल के नही, आज के हैं । ग्रामधर्म, नगर-धर्म, राष्ट्रधर्म आदि के सम्बन्ध मे प्रकट किये गये उनके विचार आज जैसे राष्ट्रीय नीति के अग बने हुए हैं । आचार्यश्री की जीवन्तता का इससे बडा प्रमाण और क्या हो सकता है ?

राष्ट्र के सभी नागरिको को और विशेषत युवापीढी को आचार्यश्री के जीवन, व्यक्तित्व और विचारो का परिज्ञान हो और उनसे वे प्रेरणा प्राप्त करें, इसी दृष्टि से यह ग्र थ प्रकाशित किया जा रहा है । यह तीन खण्डो मे विभक्त है—श्रीमद् जवाहराचार्य जीवन दर्शन, जीवन प्रसग और काव्याजलि । विद्वान् लेखकों ने जिस तत्परता और अपनत्व के साथ सामग्री भेजकर सहयोग प्रदान किया, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हम अपना पुनीत कर्तव्य मानते हैं । आशा है, यह ग्रथ श्रीमद् जवाहराचार्य के जीवन, विचार और बहुआयामी व्यक्तित्व को समझने मे विशेष प्रेरक और उपयोगी सिद्ध होगा ।

—डॉ. भानावत

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य : जीवन दर्शन

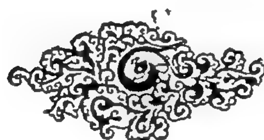
द्वितीय खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य : जीवन-प्रसंग

तृतीय खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य : काव्याञ्जलि

परिशिष्ट



अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म सदा मंगलमय है, कल्याणकारी है। जो लोग जीवन मे धर्म की अनावश्यकता महसूस करते हैं, उन्होने या तो धर्म का स्वरूप नही समझा है या धर्मभ्रम को ही धर्म समझ लिया है।"

ज वा.

प्रेरक उद्बोधन :

स्वयं जागृत होकर आचार्यश्री से प्रेरणा लें !

● आचार्यश्री नानालालजी म० सा०

युगप्रवर्तक युगद्रष्टा ज्योतिर्धर स्व० आचार्यश्री जवाहरलालजी म० सा० के जन्म शताब्दी वर्ष समारोह के शुभारम्भ पर आषाढ शुक्ला चतुर्थी, ७ नवम्बर १९७५ को देशनोक मे दिये गये प्रेरक उद्बोधन का अश यहा प्रकाशित किया जा रहा है । —सम्पादक

आत्म-चेतना की जागृति

चैतन्य स्वरूप आत्मा परमात्मा के तुल्य अपनी शक्ति का सृजन रखती हुई भी वर्तमान मे उसकी चेतना प्रसुप्त है, सोई हुई है । सोई हुई चेतना को जागृत करने का दायित्व स्वय के ऊपर ही है । परमात्मा ने स्वय को शक्ति-सम्पन्न घोषित किया है । इन्सान अपने स्वय से परिपूर्ण है । उसकी शक्तिया परमात्मा की शक्तियो से न्यून नही हैं । उसने कभी जागृति की है लेकिन जागृति के स्वर यदा कदा बुलन्द हुआ करते हैं ।

इस अवसर्पिणि काल मे प्रभु ऋषभदेव से लेकर प्रभु महावीर तक तीर्थंकरो की परम्परा से जो कुछ भी चेतना का उद्बोधन मिला है, उन उद्-बोधनो के साथ-साथ अपूर्व शक्तियो का सचय जिन मेधावी महापुरुषो ने किया है, वह समय-समय पर उपलब्ध होता रहा है ।

प्रभु महावीर की इस पवित्र परम्परा के अनेक महान् आचार्य समय-समय पर प्रभु के उपदेशो का उद्बोधन स्वय की अनुमति के साथ करते हुए आये है। जन मानस मे जब भी अधिक सुषुप्तता व्याप्त हुई है तब तब उनके उपदेशो मे जनमानस जागृत होकर पुन अपने गन्तव्य पथ पर अग्रसर हुआ है।

आचार्यश्री की पवित्र प्रेरणा

स्वर्गीय आचार्यदेव श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के जीवन की झाकी का क्या कुछ दिग्दर्शन कराऊँ, अनेक महानुभावो ने आचार्यदेव के प्रति अपने-अपने उद्‌गार व्यक्त किये हैं। उन उद्‌गारो के अन्दर जो स्वर झकृत हो रहा है, उन स्वरो के साथ यदि आप अपने अन्तर की तन्त्री को जगा लें और आचार्यदेव की उस पवित्र प्रेरणा को जीवन मे साकार रूप दें, उनके समग्र रूप को भलिभाति समझने का प्रयास करें तो बहुत कुछ आगे बढ़ सकते हैं।

निवृत्ति और प्रवृत्ति . जीवनघड़ी की चलने वाली वृत्तियां

प्रभु महावीर की जो उदात्त परम्परा है जिसके अन्दर न सिर्फ निवृत्ति थी और न सिर्फ प्रवृत्ति। निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनो एकागी हो भी नही सकती। प्रत्येक वस्तु की दो दिशाओ मे प्रवृत्ति होती है, प्रवाह होता है। एक से निवृत्ति है तो दूसरी मे प्रवृत्ति है। दोनो प्रयोगो के रूप मे जीवन की घडी मे चलनेवाली वृत्तिया हैं। अशुभ भावना की वृत्तिया निवृत्ति और शुभ जीवन की दिशा मे शुभ प्रवृत्तिया हैं। जो प्रवृत्ति है, वह जीवन को इस जागृति की ओर मोड़ने वाली है।

पूर्व की ऐतिहासिक स्थिति से यहा जो कुछ भी प्रसग आया है, कभी कभी परिस्थितिवश निवृत्ति का ही एक स्वर समाज के सामने गुंजित होने लगा, तब मात्रा मे प्रवृत्ति को भुला दिया जाने लगा। लेकिन आचार्य-देव ने उस एकान्तता की स्थिति को समन्वय के साथ सृजित करते हुए, निवृत्तिपूर्वक प्रवृत्ति की जो कुछ भी व्याख्याएँ, विवेचनाएँ अपने साधुत्व की स्थिति मे रहते हुए दी, वे जनता के लिये, समाज के लिए, राष्ट्र और विश्व के लिए एक उत्क्रान्ति का स्वर बनी। इस स्वर की स्थिति मे यदि आप अवलोकन करेंगे तो आचार्यदेव ने साधुत्व जीवन की अपनी मर्यादाओ को सुव्यवस्थित स्थिति मे सुदृढ रखते हुए, जो ज्ञान का आलोक उन्होने दिया वह वस्तुत प्रभु

महावीर की उस परम्परा को सुरक्षित रखने का एक भव्य रूपक है, भव्य आदर्श है। जब तक इन्सान अपनी स्वीकृत मर्यादाओ मे सुदृढ रह कर अपने जीवन को नही सभाल पाता है, तब तक वह अपनी ज्ञान रश्मियो को भी दूसरो को दे नही सकता, और देने की स्थिति मे कदाचित् रहे भी सही तो वे बिखर जायेंगी, स्वय भी स्थिर नही रह पायेगा। सीमाओ और मर्यादाओ मे जिस वस्तु स्थिति का प्रतिपादन होता है वह वस्तु स्थिति स्व-पर के लिये हितावह होती है। आप वर्तमान मे प्रत्येक वस्तुतत्त्व को इस परिवेश मे देख सकते हैं।

घेरे के भीतर से रोशनी

जहा बिजली के बल्ब से प्रकाश प्राप्त कर रहे हैं, बल्ब की सीमा है, उसका घेरा है, घेरे के भीतर से ही वह रोशनी दे रहा है। यदि घेरा टूट जाता है तो आप विद्युत् की रोशनी प्राप्त नही कर सकेंगे। घेरे मे सुरक्षित रहते हुए बल्ब प्रकाश दे रहा है। सूर्य अपनी सीमा की स्थिति मे रह कर अनादि काल से विश्व को प्रकाश दे रहा है।

कुदरती तत्त्वो के साथ-साथ सत जीवन भी कुदरती तत्त्वो की तरह एक अनूठी देन हुआ करता है। आचार्यदेव ने भी अपनी साधु मर्यादित दशा को सुरक्षित रखते हुए, अक्षुण्ण रखते हुए सभी दिशाओ मे प्रकाश दिया। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व को, इस उदात्त धर्म का, ज्ञान रूपी रश्मियो का प्रकाश, स्वय को सुरक्षित रखते हुए दिया। उन्होंने अपनी सुरक्षित स्थिति को खतरे मे डाल कर जनमानस को प्रकाश देने का कतई विचार नही किया। जब साधुवर्ग का पहला सम्मेलन अजमेर मे हुआ उस समय बहुत से गण्यमान्य व्यक्ति एकत्रित हुए थे। ४० हजार के लगभग जनता एकत्रित थी। आचार्य-देव को अपने अमूल्य विचारो का प्रकाश करना चाहिये, ऐसी लोगो की इच्छा थी। लेकिन जब व्याख्यान देने का प्रसग आया तब आचार्यदेव ने साफ कहा कि मैं इस माइक के माध्यम से अपने विचारो को नही रखना चाहता हू, यह साधुजीवन की सीमा को तोडने वाला है। मैं अपनी सीमा मे आबद्ध रह कर ही जनता को अपने विचार देना चाहता हूँ। उस समय की जनता को सब तरह के लोगो को श्रवण करने को मिल रहा था, कुछ लोगो का आग्रह था कि आचार्यश्री अपने विचार माइक के माध्यम से रखें। लेकिन आचार्यश्री अपनी शिष्यमडली सहित हजारो की भीड को एक तरफ करते हुए, अपने स्थान पर पहुच गये, लेकिन अपनी मर्यादाओ को लाघ करके उन्होने ज्ञान का प्रकाश नही दिया।

जवाहर किरणावलियां न मालूम कितनी होतीं

उनके जीवन की किन-किन घटनाग्रो का क्या-क्या उल्लेख किया जाय ? उन घटनाग्रो का कुछ उल्लेख उनके जीवन चरित्र मे है लेकिन मैं सोचता हूँ कि समग्र घटनाग्रो का उल्लेख जीवन चरित्र मे ग्रा गया हो, ऐसा कम लग रहा है । जितना स्मृतिपटल पर जो कुछ था, वह ग्राया। लेकिन प्रत्येक समय की रिपोर्ट, प्रत्येक समय की उनकी ग्रनुभूति, मैं समझता हूं समाज ने सगृहीत नही की, खो दी । उनकी ग्रनुभूतियां क्या–क्या थी, किस रूप मे थी, उनके एक-एक वचन की यदि समाज कीमत करती तो ग्राज दुनिया के सामने जवाहर किरणावलिया केवल ३५ भागो मे ही नही होती, न मालूम कितना साहित्य होता । यह भी समाज के विवेकशील व्यक्तियो की दूरदर्शिता थी कि इस साहित्य को समाज के कल्याणार्थ सचित कर लिया जो ग्राज प्रकाश का काम दे रहा है । सारा जैन समाज इससे प्रकाश ग्रहण कर सकता है । इसमे जो धारा प्रवाहित हुई है, वह पूर्व मे उपलब्ध नही थी ।

महापुरुप के इस स्वरूप को समझने की क्षमता विरले ही व्यक्तियो मे हुआ करती है । उस समय कुछ ही व्यक्तियो ने उन्हे पहचाना । परिपूर्ण पहचानने की स्थिति कइयो मे नही ग्राई। कुछ लोग जरूर हाथ उठाते रहे लेकिन पहचान नही पाये कि वे क्या थे, उनमे क्या शक्ति थी। आज हम उन उपादानो को ढूढ लेते हैं तो पता चलता है कि उनकी क्या विचारधारा थी । सन् ३८ के ग्रास-पास के व्याख्यानो को ध्यान से देखते हैं तो उन्होने स्पष्ट कहा था कि समाज के साधारण व्यक्ति सतवर्ग ग्रौर सतीवर्ग को उनकी मर्यादाग्रो से हटा कर समाज के कार्यो मे डालना चाहते है लेकिन यह साधु वर्ग ग्रौर जनता के लिये हिता-वह नहीं है । साधु के कर्त्तव्यो ग्रौर मर्यादाओ को सुरक्षित रख कर जितना प्रकाश लेना चाहे, लेना चाहिये ग्रौर ग्रवशेष कार्य गृहस्थ करे । वे अपनी मर्यादाग्रो मे रह कर कार्य सभाले । लेकिन गृहस्थ ग्रपनी सपत्ति ग्रर्जन मे लगे रहें और सारा काम साधुग्रो पर डालें तो साधु जीवन सुरक्षित नही रह सकता । ये विचार आचार्यश्री ने समय-समय पर उपस्थित किये । मुझे उनके साक्षात विचार श्रवण करने का सौभाग्य नही के बराबर प्राप्त हुआ, लेकिन जो भी उनकी वाणी, विचार, वीरसघ की योजना स्वर्गीय ग्राचार्यश्री गणेशी-लाल जी महाराज साहब के मुखारविन्द मे श्रवण करता था, तब सोचता था कि उन ग्राचार्यश्री का कितना सद्भाग्य था कि इन्होंने उन ग्राचार्यश्री के समीप रह कर ग्रपने जीवन का निर्माण किया । वे ग्राचार्यश्री जवाहरलाल जी के विचारो के ग्रनुरूप विचार रखने का प्रयास करते थे । वीरसघ योजना के

विषय में आचार्यश्री गणेशीलाल जी महाराज साहब ने भी समय-समय पर उद्बोधन दिया है, उसी का परिणाम समझना चाहिये कि आज इस योजना को कार्यान्वित होने का प्रसग उपस्थित हो रहा है ।

स्वयं जागृत होकर प्रेरणा लें :

बन्धुओ, आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब से जो कुछ प्रेरणा लेना चाहते हैं, वह प्रेरणा आप स्वय जागृत होकर लें । आप यदि यह सोचें कि हमको कोई जगावे, यह सोचना भी कुछ हद तक सही हो सकता है, लेकिन मुख्य स्थिति स्वय के जागृत होने की है । आज की युवा पीढी जो समाज, राष्ट्र और विश्व के उदात्त रूप मे प्रगट होने वाली है, उसमे जो कुछ उत्साह और उमग की कमी दृष्टिगत हो रही है, उसका क्या कारण है ? उसके कारण अनेक हैं । उन कारणो का विश्लेषण यहा रखू, यह शक्य नही है । लेकिन इतना सकेत अवश्य देता हू कि आज की युवा पीढी और तरुण अगडाई लेकर खडे हो जावें, जोश और होश दोनों स्थितियो के समन्वय के साथ, यदि वे स्वय की स्थिति से जागृत होकर आवें, बुजुर्ग उनको सम्बल दें, उनके पीठवल को मजबूत करें और अपने अनुभव की स्थिति को उडेल दें, युवक विनय के साथ उनको ग्रहण करें, तो आज समाज का रगमच जो जर्जरित हो रहा है, विषम वायुमडल से गुजर रहा है, कुरीति, कुरिवाज जो समाज की छाती पर मूग दल रहे हैं उन सभी पर अकुश लग कर बडा भव्य रूप समाज का हो सकता है, लेकिन ऐसा न करके यही सोचते रहे कि अमुक आह्वान करे तो आऊ, तो आह्वान कौन किसका करे ? यह व्यक्ति विशेष का कार्य नही है । सभी का कार्य है । प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्य को अपने स्थान पर देखे और जागृत होकर चले ।

धर्म इस लोक को पहले सुधारता है :

जहा तक धर्म का सम्बन्ध है, मैं समय-समय पर कहता रहा हू कि यह धर्म अथवा आध्यात्मिक जीवन की बात, सिर्फ परलोक के लिये नहीं है जो भी यह सोचता है कि यह परलोक के लिये है, इस लोक के लिये नही है, यह सोचना योग्य नही है । मैं स्पष्ट शब्दो मे कहता हूँ कि यह इस लोक के लिये पहले आलोक देता है, जीवन-निर्माण करता है, जीवन के अणु-अणु को जागृत करता है । इस जागृति के साथ धर्म के तत्त्व को समझा जाय तो धर्म इस लोक और परलोक दोनो को सुधारता है । परलोक को ही सुधारता हो, यह एकागी दृष्टि नही है । दोनो दृश्य इस लोक की स्थिति से ही चालू

होते हैं। इस लोक की समग्र शक्तिया जागृत होगी तभी आगे बढ सकेंगे। तो मैं यह कहने की स्थिति मे हूँ कि धर्म इस लोक को पहले सुधारता है। व्यक्ति साधना इसी लोक की स्थिति से करता है, मोक्ष की कामना भी इसी लोक की स्थिति से करता है और मोक्ष की प्राप्ति भी इसी जीवन मे होती है। परलोक मे तो एक समय की स्थिति मे सिद्ध अवस्था मे जायगा। जो उदात्त स्वरूप है, तीर्थंकरो की स्थिति है, उसका अवलोकन करने की कोशिश करें।

युवक आगे आयें !

युवको को धर्मक्षेत्र मे उत्साह के साथ प्रवेश करने की आवश्यकता है। यह क्षेत्र प्रत्येक भाई का है, किसी व्यक्ति विशेष का नही है। क्या भोजन के लिये परिवार वालो को आमन्त्रित करने की आवश्यकता होगी? क्या माता के पास आमन्त्रण से जाते हैं या क्षुधा लगने पर स्वय पहुचते हैं और माता के चरणो मे जाकर याचना करते हैं कि भोजन दे। माता यदि किसी कार्य मे व्यस्त है तो स्वय उठा कर भोजन ग्रहण करते हैं। इसी तरह से धर्म के लिए आप किसी के निमन्त्रण की आवश्यकता महसूस नही करें और स्वय पहुचे और आपकी जो शक्ति है, ऊर्जा है उसका प्रयोग करें। आज के युग मे विश्लेषण का प्रसग है। वैज्ञानिक दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वो का विश्लेषण ले सकते हैं। आप तुलनात्मक दृष्टि से भौतिक व आध्यात्मिक विज्ञान के साथ समन्वय के सिद्धान्त के साथ समग्र जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये अग्रसर होने का प्रयत्न करें। यदि प्रत्येक भाई-बहिन निद्रा को भग करके समग्र प्रकार की शक्तियो को ग्रहण कर, आलस्य में न रह कर, जागृति के स्वरो के साथ इस प्रकार का वायुमडल तैयार करे कि समाज के रगमच पर आदर्श उपस्थित हो सके तो कैसा भव्य स्वरूप आचार्यदेव की इस जन्म-शताब्दी के प्रसग पर उपस्थित हो सकेगा।

वीर संघ योजना मे ईमानदारी से प्रविष्ट हो।

वीर सघ की योजना जिस भावना से आचार्यश्री ने रखी है, उसको यदि साकार रूप देने का प्रश्न है तो बुजुर्ग, तरुण, बच्चे और बहिनें सबके सब उत्साह के साथ चलने की कोशिश करें तो मैं यह सोचता हूँ कि आप समन्वय का सूत्र स्थापित कर रहे हैं, शर्त यह है कि आप जिस श्रेणी को स्वीकार करें, उसके प्रति ईमानदार रहें, बेईमानी न करे। जो भी इसके नियम-उपनियम हैं उनका ईमानदारी के साथ पालन करें, उसमे छेक न करें,

धोखाबाजी न करें । और यदि गृहस्थ अवस्था को लेकर चलना है तो उसमे भी ईमानदारी रखें । धर्म-प्रचार की दृष्टि से दूसरा वर्ग तैयार करना है तो मध्यम वर्ग को ईमानदारी के साथ पालन करना होगा । सभी क्षेत्रो मे ईमानदारी का पहला तकाजा है । इसी के साथ आप, हम सब लोग चलें, एक दूसरे का सहारा रहे । एक दूसरे की व्यक्तिगत साधना मे कदाचित् त्रुटि का प्रसग हो तो विनयपूर्वक निवेदन करने की कोशिश करें । यह भी भावना नही होनी चाहिये कि जो करे सो करने दो ।

आज के प्रसग मे क्या कुछ कहू, मैं अधिक कहने की स्थिति मे नही हू । वे युगपुरुष, युगद्रष्टा थे । उन्होने जिस रहस्य का उद्घाटन किया था, उसे समझने की कोशिश करें । घेरे मे डालने की कोशिश करें । यथार्थ के साथ महत्त्व को स्वीकार करके चलें ।

दुर्व्यसनो से मुक्त रहें !

आज के युवावर्ग, कालेज के छात्रवर्ग मे दुर्व्यसन वृत्ति चल रही है, उसके लिये भी आपको खेद होना चाहिये, चिन्ता होनी चाहिये । इस वृत्ति को पैदा करने वाला कौन है ? क्या धर्म है या अध्यापक है ? क्या राष्ट्र के कर्णधार हैं या कौन हैं, इसका भी चिन्तन होना चाहिये । वस्तु स्थिति का विश्लेषण लेना चाहिये । एक ही वस्तु से कार्य सपादन नही होता । एक विकृत्ति है तो उसके पीछे कई सम्बन्ध जुडते हैं इसका विश्लेषण करके किसके जिम्मे कितनी जिम्मेदारी आती है, किस वृत्ति के लिये कौन कितना उत्तरदायित्व रखता है, इसका ज्ञान करके, इसका उपाय ढूढेंगे तो बढनेवाला प्रवाह रोका जा सकता है ।

युवकों को सही समाधान दें :

जिस जाति मे समाज और कुल-परम्परा से दुर्व्यसनो के शिकार रूप मे जीवन व्यतीत हो रहा था, वे आज जागृत होकर उत्तम सस्कारो मे आ रहे हैं, तो उत्तम सस्कारो मे पलने-पोसे जाने वाले कितने उत्तम होने चाहिये, उनकी जागृति कितनी आगे बढी हुई होनी चाहिये ? लेकिन आज उनकी क्या दशा हो रही है, यह आपसे छिपी हुई नही है । इसके लिये स्कूल के विद्यार्थियो का ही सर्वथा दोष नही है । उनको सबल मिलना चाहिये । वे जिन सरक्षको के चरणो मे पलते-पोसे जाते हैं वैसी ही शिक्षा पाते हैं । उनका मस्तिष्क प्रस्फुटित होता है, वे धर्म, समाज और राष्ट्र के विषय मे जानकारी करना चाहते हैं, कर्त्तव्य समझने की स्थिति भी रहती है । लेकिन उनके प्रारम्भिक प्रश्नो का

समाधान यदि बुजुर्ग दे पावें या संरक्षक दे पावें तो बहुत सुन्दर बात है और यदि उत्तर देने की क्षमता नही है तो कम से कम उनको दोषी नही बनावे, उनसे टकरावे नही और ऐसा नही कहे कि तुम इतनी भी बात नही जानते, पढते नही हो। उनके विचारो का समाधान करते हुए उनसे कहना चाहिये कि भाई, इतनी योग्यता या क्षमता मुझमे नही है कि इस प्रश्न का उत्तर दे सकू। तुम थोडे रुक जाओ, सतो से या और किसी से पूछकर इसका समाधान करा दूगा। यदि इस प्रकार का प्रयास किया और समाधान सही तरीके से होता चला जाता है तो वे युवक विद्यार्थी चाहे कालेजो मे पढनेवाले हो, एक वक्त समझकर विचारो को ग्रहण कर लेगे और इधर-उधर उलझेगे नही। आपकी बातो का पूरा पालन करेंगे। कभी-कभी बुजुर्ग हिल सकते हैं लेकिन युवक नही हिलेंगे। यह भी अनुभव कर चुके हैं। उन युवको को समाधान देने का प्रसग है, समाधानदाताओ मे क्षमता रहनी चाहिये। यह न हो कि स्वय समझा नहीं सकें और उनको फतवा दे दें कि तुम नास्तिक हो, समझते नही हो। समझाने की क्षमता नही है तो साफ कह दो कि मेरे मे जितनी क्षमता है उतना समझा देता हू, आगे तुम अनुसन्धान करो, तो युवक एकाएक बागी नही होंगे, धर्म से विमुख नही होगे। लेकिन ऐसे विद्यार्थी धर्म से विमुख होते हैं जिनके प्रारम्भिक विचारो पर आघात होता है। तभी वे आगे चल कर धर्म पर आघात पहुचाते हैं और उनकी धर्म के सम्मुख आने की स्थिति नही रहती।

आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुसन्धान हो :

लेकिन इतने मात्र से विद्यार्थियो को हतोत्साह नही होना चाहिये। उनको स्वय को जागृत रह कर चलना है। वैज्ञानिक क्षेत्र मे वैज्ञानिक नये-नये अनुसन्धान करके नयी-नयी चीजो की खोज कर रहे है तो क्यो नही आध्यात्मिक क्षेत्र मे अनुसधान करके शान्त क्रान्ति का सृजन करके आदर्श उपस्थित करें जिससे दुनिया को भी लाभ मिल सके। इस प्रकार की भावना युवक वर्ग, छात्र वर्ग और बुजुर्गों मे घर सभी मे व्याप्त हो जाय तो कितना सुन्दरतम कार्य हो सकता है। इस प्रसग से आप स्वय उद्यम करे और चिन्तन, मनन की स्थिति को जीवन मे स्थान दे।

इस जन्म-शताब्दी के प्रसग से स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब को हृदय मे बैठा दे। उनकी उदात्त भावनाओ को, उनके विचारो को, उनके वचनो को यथार्थ रूप मे समझ कर आप जिस स्थान पर

रहें, उसमे ईमानदारी के साथ जीवन को मर्यादित रखें। दूसरो के जीवन को गिराने की कोशिश करेंगे, तो प्रकाश नही पा सकेंगे। किसी वस्तु को यथा-स्थान रखकर निर्लिप्त भाव से उसको देखेंगे तभी उसका ज्ञान कर पायेंगे। वैसे ही मन की दशा है। मन अपनी सीमा को छोड कर दूसरे पदार्थो मे जाता है तो वह अच्छी तरह से देख नही सकता। दूसरो से अलिप्त रह कर शरीर की सीमा मे रह कर ही दूसरे पदार्थो का ज्ञान कर सकता है। जिस स्थान पर रहे, अपनी मर्यादा को अंगीकार करके चलें। जैसे कमल कीचड से निकलता है और पानी के ऊपर आता है पर वह कीचड और पानी से निर्लिप्त रहता है, पानी का लेप नही लगने देता हुआ पानी की शोभा बढाता है। वैसे ही अपनी सीमा मे रहकर शोभा बढावें।

राष्ट्रीय चरित्र को उन्नत बनावें

आचार्यदेव की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य मे परण करें कि हम विभिन्न व्यवसायी हैं, कृषक हैं या नौकरी पेशे वाले हैं। जिस-जिस स्थिति के जिस-जिस स्थान पर कार्य करते हैं, उनके नियमो का ईमानदारी से पालन करेंगे और राष्ट्रीय चरित्र को उन्नत बनायेंगे। यह उन्नत तभी बनेगा, जबकि व्यक्तिगत चरित्र उन्नत होगा। व्यक्तिगत चरित्र ठीक रहेगा तो सामाजिक चारित्र भी ठीक बनेगा। सामाजिक चारित्र भव्य है तो राष्ट्रीय चारित्र भी ठीक रहेगा। यदि समाज की जड़ें खोखली हो गई तो टहनियाँ और पत्तिया भी सुरक्षित नही रह सकेंगी। समाज के व्यक्ति ही निर्माण कार्य चालू करें। अपने आप को ईमानदार बनाते हुए अपने आप मे जागृति लें। दूसरो की सहायता मिलती है तो ठीक है, वरना अपनी स्थिति से आगे चलने की कोशिश करें।

मै आपको यह सकेत दे रहा हूँ, चाहे कालेज के छात्रो की उपस्थिति यहा पर कम है या ज्यादा है, युवक और बुजुर्ग जितने हैं उनमे से प्रत्येक अपने-अपने जीवन मे प्रण करले कि हम इन बातो को शाति और गम्भीरता से प्रत्येक व्यक्ति के सामने रखते रहेगे। जो भाई दुर्भावना मे लिप्त हैं उनको शात, मधुर स्वर से मोड देने की कोशिश करेंगे। इस प्रकार का प्रण आज के प्रसग से ग्रहण करने की कोशिश करें।

हमारा कर्त्तव्य

मैं भी यथास्थान रहता हुआ, अपनी मर्यादाओ को सुरक्षित रखता हुआ, जिन-जिन बातो का कथन करना है उनको करता रहता हूँ, करने की

भावना रखता हू । एक ही समय मे सभी बातें नही कर सकता । फिर भी समय पर जो बात कहनी होती है, उसको कहता हुआ चला जाता हू । आचार्यदेव के चरणो की क्या कुछ कहू, यह उन्हीं आचार्यदेव की महान कृपा है कि जिन्होंने एक जगली मनुष्य के तुल्य, पशु के समान रहने वाले व्यक्ति को अपनाकर उसको अपना जीवन भव्य बनाने का अवसर उपस्थित किया और उसमें सोचने-समझने की क्षमता हुई। हम सब इन्ही महापुरुष की देन को लेकर चल रहे हैं ।

इन्ही स्वर्गीय आचार्यश्री के जीवन की कल्पना थी कि सभी साधु-साध्वी एक ही आचार्य के नेतृत्व मे चले । विहार, प्रायश्चित्त आदि सभी कार्य एक के ही नेतृत्व मे रहे, यह कल्पना भी स्वर्गीय श्री जवाहरलाल जी म सा की थी । इसको अमली रूप स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा ने दिया ।

वे महापुरुष अपना कर्त्तव्य पूरा करके चले गये । हम निर्लिप्त भाव से उनको समझें । उनका भौतिक पिंड आज हमारे सामने नही है, लेकिन आध्यात्मिक पिंड आज भी मौजूद है, शर्त यह है कि उसको देखने की योग्यता प्राप्त कर लें । देखने की योग्यता तभी आयेगी जबकि इसको जीवन मे पूरा स्थान देंगे । ऊपर कुछ और अन्दर कुछ, ऐसी भावना नही रखकर शुद्ध भावना से उन्हे याद करेंगे तो हमारे लिये वह प्रकाश-पुञ्ज प्रत्येक क्षण के लिये उपस्थित होगा, प्रत्येक क्षण उसको लेकर चल सकते हैं । इसी भावना के साथ अपनी बात को यही पर विराम देता हू ।



मोतियो की माला पहिन कर लोग फूले नही समाते, परन्तु उससे जीवन का वास्तविक कल्याण नही हो सकता । वीरवाणी रूपी अनमोल मोतियो की माला अपने गले मे धारण करने वाले ही अपने जीवन को कल्याणमय बना सकते हैं ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

प्रथम खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य

जीवन-दर्शन

श्रीमज्जवाहराचार्य : जीवन-झांकी

● डॉ० नरेन्द्र भानावत, श्री महावीर कोटिया

जन्म :

तपोनिष्ठ साधक एव प्रभावशाली सत श्रीमद् जवाहराचार्यजी का जन्म कार्तिक शुक्ला चतुर्थी वि सवत् १९३२ को कस्बा थादला (जिला झाबुआ) मध्यप्रदेश मे हुआ था। इनके पिता श्री जीवराज जी कस्बे के प्रतिष्ठित सद्-गृहस्थ थे। आप कवाड गोत्रीय ओसवाल जैन थे। आपकी मातुश्री नाथीबाई भी इसी कस्बे के एक अन्य प्रतिष्ठित परिवार से थी।

शिक्षा

बालक जवाहर के भाग्य मे माता-पिता का प्यार नही लिखा था। जब आप दो वर्ष के अबोध शिशु थे, तब माता का और पाच वर्ष की वय मे पिता का साया सिर से उठ गया। पाच वर्ष के मातृ-पितृ हीन बालक जवाहर को मामा श्री मूलचन्द जी धोका का आश्रय प्राप्त हुआ। श्री मूलचन्द जी ने थादला मे ईसाई मिशनरियो द्वारा सचालित प्राथमिक विद्यालय मे आपको पढने भेजा, परन्तु विद्यालय की पढाई मे और वहा के वातावरण मे आपका मन न लगा तथा आपने विद्यालय छोड दिया। विद्यालय से आपने हिन्दी तथा गुजराती भाषाएँ व गणित का कुछ प्रारम्भिक ज्ञान ही प्राप्त किया।

व्यवसाय :

श्री मूलचन्द जी थादला मे ही कपडे का व्यवसाय करते थे। ग्यारह वर्ष के बालक जवाहर को भी उन्होंने कपडे की दूकान पर बैठाना प्रारम्भ किया। बालक जवाहर ने भी अपने आपको पूर्ण मनोयोग से इस धन्धे मे लगाया और शीघ्र ही इस व्यवसाय मे अच्छी जानकारी करली। मामा श्री मूलचद जी भी बडे सतुष्ट थे। उन्होंने धीरे-धीरे दूकान का अधिकाश काम जवाहर-

लालजी पर छोड दिया । सम्भवत जवाहरलालजी को उत्तरदायित्व सभला देने की अन्त प्रेरणा, प्रकृति ही उन्हे दे रही थी । कभी-कभी ऐसा अदृश्य घटित हो जाता है जिसका कारण अनुत्तरित ही रह जाता है । ऐसा ही हुआ जब कि तेरह वर्ष की वय भी जवाहरलालजी पूरी नही कर पाए थे और मामा श्री मूलचन्द जी तेतीस वर्ष की अल्प आयु मे परमधाम सिधार गए । जिस उत्तरदायित्व को मामाजी ने धीरे-धीरे किशोर वय बालक को सौंपना प्रारम्भ किया था, वह सम्पूर्ण दायित्व ही उनके बाल कधो पर एकाएक आ पडा ।

सन्त-सान्निध्य :

मामा श्री मूलचन्दजी अपने पीछे विधवा पत्नी तथा पाच वर्ष के एक-मात्र पुत्र को छोड गए थे । इनके पालन-पोषण का एक मात्र उत्तरदायित्व अब किशोर जवाहरलाल पर था । वे अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करने हेतु दूकान का काम अवश्य करते थे परन्तु उनका मन अब ससार से उदासीन रहने लगा था । मामा की असामयिक मृत्यु ने उनके मानस को उद्वेलित कर दिया था । जीवन की क्षणभगुरता तथा सासारिक जीवन की दु ख-बहुलता ने उन्हे वैराग्योन्मुख कर दिया । विधवा मामी तथा पचवर्षीय असहाय ममेरे भाई के कारण वे कुछ समय असमजस मे पडे रहे । पर तभी एक समाधान उनके मन मे कौंध गया-- जब मैं पाच वर्ष का मातृ-पितृ हीन हो गया था, तब क्या हुआ ? ससार मे प्रत्येक प्राणी अपना भाग्य लेकर आता है । इन विचारो के आते ही उनकी दुविधा दूर हो गई । वैराग्य ग्रहण करने का निश्चय दृढ हो गया ।

सयोग से उन्ही दिनो थादला मे श्री राजमलजी महाराज सा के शिष्य मुनि श्री घासीलाल जी तथा श्री मगनलाल जी और श्री घासीलाल जी म सा के शिष्य श्री मोतीलालजी व श्री देवीलाल जी पधारे थे । जवाहरलाल जी ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया । उनका मन अब वैराग्य ग्रहण करने को छटपटाने लगा था ।

दृढ निश्चय कर लेने के पश्चात् जवाहरलालजी ने अपने ताऊजी श्री धनराज जी से मुनि दीक्षा लेने की आज्ञा मागी । धनराजजी को उनका यह विचार पसन्द नही आया । उनका विचार हुआ कि अभी यह नादान है अत. साधुओ के बहकाने मे आकर ऐसा कह रहा है । उन्होने जवाहरलाल जी को डाटा, फटकारा तथा उनका साधुओ के पास आना-जाना बन्द कर दिया । अपने इष्ट-मित्रो के माध्यम से भी उन्होने जवाहरलाल जी को डराया-धमकाया

तथा साधुओ के बारे मे ऐसी मनगढत बातें प्रचारित कराई ताकि जवाहरलाल के मन मे साधुओ से भयभीत रहने का भाव उत्पन्न हो सके। धनराज जी के डराने-धमकाने तथा प्रलोभन के सभी प्रयत्न निष्फल रहे और जवाहर-लाल जी का वैराग्य ग्रहण करने का भाव दृढतर होता गया।

वैराग्य :

समय निकलता गया। जवाहरलाल जी अब सोहलवें वर्ष मे प्रवेश कर गए थे। थादला के पास ही के कस्बे लीबडी मे कुछ मुनिराज पधारे। अवसर देखकर जवाहरलाल जी लींबडी पहुच गए। धनराज जी को जब सारी स्थिति ज्ञात हुई तो उन्होने एक चाल चली। थादला के सरपच शाहजी श्री प्यार-चन्दजी से एक पत्र जवाहरलाल के नाम लिखवाया, जिसमे यह आश्वासन था कि उन्हें मुनि-दीक्षा की आज्ञा दिलवा दी जाएगी। यह आश्वासन पाकर जवा-हरलाल जी पुन थादला लौट आए, परन्तु दीक्षा की आज्ञा उन्हे फिर भी नही मिल सकी। अब पुन जवाहरलाल जी अवसर की इन्तजारी करने लगे। उन्होने चुपचाप थादला से पलायन का निश्चय कर लिया। भैरा नाम के धोबी का घोडा उन्होने किराये पर तय किया और इस प्रकार अवसर पाकर वे पुन लीबडी जा पहुचे। धनराज जी भी तुरन्त वहा पहुच गए, परन्तु किशोर जवाहर को अपने पथ से डिगाने मे वे असमर्थ रहे। लाचार हो उन्होंने दीक्षा लेने की आज्ञा उन्हें प्रदान कर दी। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया वि. सवत् १६४८ को श्री जवाहरलाल जी ने जैन भागवती दीक्षा अगीकार की। आप श्री मगन-लाल जी महाराज सा के शिष्य बने। इस समय उनकी आयु मात्र सोलह वर्ष की थी।

मुनि-जीवन :

साधुत्व ग्रहण करने के पश्चात् मुनि श्री जवाहरलाल जी ने अपने गुरु श्री मगनलाल जी महाराज सा से शास्त्रो का अध्ययन आरम्भ किया परन्तु दुर्भाग्य यहा भी साथ लगा रहा। उन्हे दीक्षित हुए मुश्किल से डेढ मास ही हो पाया था कि श्री मगनलाल जी महाराज सा का स्वर्गवास हो गया। गुरु की इस असामयिक मृत्यु ने पुन उनके मानस को बुरी तरह झकझोर दिया। वे प्राय उदासीन रहने लगे और एकान्त मे बैठकर सोचते रहते। इससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पडा तथा उनका चित्त विक्षिप्त हो गया। यह समाचार सुनकर धनराज जी उन्हें घर लिवा ले जाने के लिए आए। इस कठिन समय मे मुनि श्री मोतीलाल जी ने उन्हे बडे धैर्य से सभाला तथा धनराजजी

को समझा-बुझाकर वापिस भेजा। युवा मुनि का यथोचित इलाज कराया गया और उन्होने कुछ ही समय मे स्वास्थ्य लाभ किया।

सवत् १९४९ मे धार चातुर्मास के अवसर पर मुनि श्री की प्रतिभा प्रकट होने लगी। इस समय उनका झुकाव अध्ययन-मनन तथा काव्य-रचना की ओर ही मुख्यत हो गया। धीरे-धीरे अपनी कवित्व प्रतिभा, बुद्धिमत्ता, व्याख्यान-शक्ति आदि से उन्होने लोगो को प्रभावित करना प्रारभ किया। उनकी प्रारम्भिक अवस्था मे ही उनकी प्रतिभा से प्रभावित होने वालो मे पूज्य श्री हुक्मीचन्द्र जी महाराज सा की सम्प्रदाय के तीसरे पाट को सुशोभित करने वाले आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज सा तथा बाद मे चतुर्थ आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होने वाले श्री चौथमल जी महाराज सा भी थे। उन्होने इस होनहार किशोर को पहचान कर मुनि श्री घासीराम जी को रामपुरा जाने तथा शास्त्रमर्मज्ञ श्रावक श्री केसरीमल जी से उन्हे शास्त्रज्ञान कराने का परामर्श दिया।

दो वर्ष की अल्प अवधि मे ही मुनि श्री एक सफल व प्रभावशाली उपदेशक के रूप मे जन-मानस मे प्रतिष्ठित होने लगे थे। उनकी प्रतिभा बहु-मुखी थी और वे नए विचारो को जाचने-विचारने तथा खरे उतरने पर अप-नाने को तत्पर रहते थे। सवत् १९५५ मे खाचरौद चातुर्मास के दिनो मे आपको 'सग्रहणी' रोग हो गया। इलाज कराते रहने पर भी रोग बढता ही गया। तभी सयोगवश आपने छह उपवास एक साथ कर डाले और इसके चमत्कारिक प्रभाव-स्वरूप आप रोगमुक्त हो गए। इस घटना से मुनिश्री का प्राकृतिक चिकित्सा से साक्षात् परिचय हुआ और कालान्तर मे इसमे उनकी आस्था बढती ही गई। अपने प्रवचनो मे वे लोगो को प्राय उपवास, तपस्या आदि प्राकृतिक चिकित्सा के बारे मे कहते रहते थे।

सवत् १९५६ मे जब श्री चौथमल जी महाराज सा सम्प्रदाय के चतुर्थ आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हुए तो उन्होने अपनी सम्प्रदाय के विभिन्न प्रान्तो मे विचरण करने वाले अनेक साधुओ के पथ-प्रदर्शन व देखरेख के लिए चार योग्य साधुओ को नियुक्त किया। उनमे एक, युवा साधु श्री जवाहरलालजी भी थे, जो उस समय मात्र २८ वर्ष की अवस्था के थे। यह उनकी प्रतिभा का आदर था।

आचार्य-पद :

मुनि श्री जवाहरलाल जी की ख्याति अब दिनोदिन बढने लगी थी।

उनकी व्याख्यान-शैली हृदयग्राही थी उनका कहानी कहने का ढग बडा रोचक था। उनकी इस चमत्कारिक प्रवचनकला ने अनेक लोगो को नया प्रकाश दिया, अन्धविश्वासो पर कुठाराघात किया, सामाजिक-सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया। कसाइयो तक ने हिंसा का परित्याग किया तथा पूर्णत अहिंसक जीवन जीने का वचन दिया। पशुवलि को रोकने, दलित-पीडित और शोषित अस्पृश्यो को उठाने मे मुनिश्री की वाणी वडी प्रभावक सिद्ध हुई। ऐसे सन्त को पाकर भक्तजन प्रमुदित थे और सम्प्रदाय के आचार्य तथा अन्य सभी सन्तगण गौरवान्वित अनुभव करते थे। उनकी योग्यता तथा तपोनिष्ठा से प्रभावित होकर ही श्री हुक्मचन्द जी महाराज सा. की सम्प्रदाय के पाचवें पाट को सुशोभित करने वाले आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज सा ने उन्हे सवत् १९७१ मे अपने सम्प्रदाय के सन्तजन के पथ-प्रदर्शन के लिए एक गणी के रूप मे नियुक्त किया और अन्तत कार्तिक शुक्ला द्वितीया, सवत् १९७५ को उन्हे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। वाद मे चैत्र कृष्णा नवमी वुधवार, सवत् १९७५ तदनुसार २६ मार्च १९१९ को रतलाम मे आपको युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। तत्पश्चात आचार्यश्री की आज्ञा से आपने उदयपुर की ओर प्रस्थान किया तथा सवत् १९७६ का चातुर्मास काल उदयपुर मे व्यतीत किया। चातुर्मास के पश्चात् आप साम्प्रदायिक एकता सम्मेलन मे भाग लेने अजमेर पधारे। इस सम्मेलन के पश्चात् आचार्यश्री श्रीलाल जी महाराज सा व्यावर होते हुए जैतारण नामक स्थान पर पधारे। यही आपाढ शुक्ला तृतीया, सवत् १९७७ ब्राह्ममुहूर्त मे आपने देह त्याग किया। युवाचार्य श्री जवाहरलाल जी को यह दुखद समाचार भीनासर मे प्राप्त हुआ। उस समय आप तीन दिवसीय उपवास व्रत में थे। इस दुखद वेला मे मन की शान्ति के लिए आपने उपवास क्रमश चालू रखा तथा वाद मे लोगो के वहुत अनुनय-विनय के कारण आठ दिन पश्चात् उपवास समाप्त किया। श्री श्रीलाल जी महाराज सा के देहावसान से सम्प्रदाय के आचार्यत्व का भार आप पर आ पडा। आपाढ शुक्ला तृतीया, सवत् १९७७ को आप श्री हुक्मीचन्द जी महाराज सा की सम्प्रदाय के छठे आचार्य घोषित किए गए।

आचार्य-जीवन :

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के वाद का आपका प्रथम चातुर्मास वीकानेर मे सम्पन्न हुआ। आपके उद्वोधन से प्रभावित होकर समाज के गण्यमान्य व्यक्तियो द्वारा एक सभा मे स्व श्री श्रीलाल जी महाराज सा की स्मृति मे 'श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन गुरुकुल' स्थापित करने का निश्चय किया

गया । इसके लिए विपुल धनराशि के आश्वासन प्राप्त हुए पर वह योजना तत्काल मूर्तरूप नही ले सकी । सात वर्ष पश्चात् श्री श्वे० साधुमार्गी जैन हित-कारिणी संस्था की स्थापना की गई तथा इसके माध्यम से धार्मिक जागरण, शैक्षणिक विकास और सामाजिक हित के अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। यह संस्था आज भी उक्त क्षेत्रो मे अग्रणी है तथा इसके द्वारा सत्साहित्य प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य भी अनवरत किया जाता रहा है ।

प्रेरणा और प्रभाव :

आचार्यश्री के प्रेरणा-परक उद्बोधनो से स्थापित अन्य संस्थाए हैं—हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम, सार्वजनिक जीवदया मण्डल घाटकोपर (बम्बई), जैन छात्रावास जलगाव (महाराष्ट्र) आदि । सार्वजनिक जीवदया मण्डल की पशुशालाओ मे आज भी अनेक पशुओ का पालन हो रहा है । दूध देना बन्द कर देने के पश्चात् पशुओ के पालन के लिए संस्था की कई शाखाए पनवेल, जलगाव, इगतपुरी, गोटी आदि स्थानो मे कार्यरत है ।

आचार्यश्री अपने समय के अत्यधिक प्रभावशाली वक्ता, दूरदर्शी अगुआ तथा विचारक विद्वान थे । राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए किए जाने वाले संघर्ष के विषम दिनो मे वे न केवल स्वयं खादी के वस्त्र पहनते थे अपितु अपने अनुयायियो को खद्दर पहनने के प्रेरणापरक उद्बोधन देते थे तथा "परतन्त्रता पाप है," "बिना स्वतन्त्र हुए कोई भी जाति धर्म का भी ठीक तरह पालन नही कर सकती"— ऐसी उद्घोषणाएँ अपने प्रवचनो मे करते रहते थे । इसी कारण संवत् १६८८ मे देहली चातुर्मास के समय समाज को उनकी अंग्रेज सरकार द्वारा गिरफ्तारी की भी आशंका हो गई थी, परन्तु आचार्य श्री का सिंहनाद अविराम होता रहा ।

चाहे हरिजन-उद्धार का कार्य हो, दुर्भिक्ष राहत का कार्यक्रम हो, शोषित-पीड़ित की सूदखोरी से मुक्ति का प्रश्न हो या दूषित सामाजिक कुप्र-थाओं के विरोध की बात हो, आचार्यश्री जीवन पर्यन्त उनके लिए संघर्ष करते रहे तथा प्राणिमात्र के कल्याण के लिए अपनी वाणी तथा शक्ति का उपयोग करते रहे । उनकी तेजस्विता, प्रखर प्रतिभा तथा व्यापक प्रभाव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि राष्ट्र के तत्कालीन श्रेष्ठ पुरुषो यथा महात्मा गाधी, प० मदन मोहन मालवीय, सरदार वल्लभभाई पटेल, विनोवा भावे, लोकमान्य तिलक, श्री विट्ठलभाई पटेल, श्रीमती कस्तूरबा गाधी, सेना-पति बापट, प्रो० राममूर्ति, श्री जमनालाल बजाज, सर मनुभाई मेहता, हिन्दी

के सुप्रसिद्ध कवि और लोक साहित्य के अध्येता श्री रामनरेश त्रिपाठी, काका कालेलकर, शेख अताउल्लाशाह बुखारी तथा शेख हबीबुल्ला शाह बुखारी, पट्टाभि सीतारामैय्या, श्री ठक्कर बापा, श्रीमती रामेश्वरी नेहरु आदि ने उनके दर्शन लाभ करने, उपदेश श्रवण करने तथा विचार-विमर्श करने को अत्यधिक महत्त्व का कार्य माना । आचार्य श्री के प्रभावक व्यक्तित्व का अनुमान उनकी शिष्य सम्पदा से भी लगाया जा सकता है । उनके सानिध्य मे लगभग २५ दीक्षाएँ सम्पन्न हुई । सवत् १६४६ से लेकर १६६६ तक के पचास-इक्कावन वर्ष के दीर्घ साधनाकाल मे उन्होंने राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र तथा दिल्ली प्रदेश के विशाल भूभाग मे लोगो को धर्मलाभ देने के लिए पद-विहार किया तथा अपने चातुर्मास किए । उनका व्यक्तित्व, व्यक्ति से बढकर सस्था का रूप ले सका था, जिसके माध्यम से समाज-सुधार, धर्म प्रचार, ज्ञानदान, लोक कल्याण-कारी सस्थाओ की स्थापना आदि महत्त्वपूर्ण हितकारी कार्य सम्पन्न हुए ।

सवत् १६८१ मे जलगाव चातुर्मास की अवधि मे आचार्यश्री की हथेली मे एक छोटी सी फुनसी निकलकर पकने लगी तथा उसने एक भयकर फोडे का रूप धारण कर लिया । रोग की निरन्तर बढती अवस्था ने उन्हे जीवन की नश्वरता का अहसास करा दिया और उन्हे अपने उत्तरदायित्व से धीरे-धीरे मुक्त होने का सकेत सा दे दिया । तदनुसार उन्होने उपस्थित समाज से विचार-विमर्श करके मुनि श्री गणेशीलाल जी महाराज को अपना उत्तरा-धिकारी घोषित किया । श्री गणेशीलालजी का युवाचार्य पद महोत्सव लगभग ६ वर्ष बाद फाल्गुन शुक्ला ३, सवत् १६६० को जावद मे सम्पन्न हुआ । सवत् १६६२ मे रतलाम चातुर्मास के अवसर पर आचार्यश्री ने अपने सघ की देखरेख तथा व्यवस्था आदि का उत्तरदायित्व श्री गणेशीलाल जी महाराज को सौंप दिया तथा तत्सम्बन्धी अधिकार-पत्र प्रदान किया ।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी की अवस्था इस समय लगभग ६० वर्ष की हो चुकी थी । वृद्धावस्था की अशक्तता तथा शारीरिक दुर्बलता बढने लगी थी फिर भी आचार्यश्री अपने मिशन में दत्तचित्त होकर लगे रहे । पूर्ववत पद-विहार, प्रवचन आदि का क्रम बना रहा । सवत् १६६७ मे बगडी चातुर्मास के अवसर पर उनकी अशक्तता अधिक बढ गई थी । अब उनके स्थिरवास का समय आ गया था । अजमेर, ब्यावर, रतलाम, उदयपुर, जलगाव, भीनासर, बीकानेर, जोधपुर आदि स्थानो के लोग उनसे अपने-अपने नगर मे स्थिरवास करने की बार-बार प्रार्थना कर रहे थे । वे बीकानेर की ओर विहार करने का वचन दे चुके थे । मार्ग में बलुदा नामक स्थान पर वे पुन अस्वस्थ हो

गए । कुछ दिन वहा रुककर तथा स्वास्थ्य लाभ कर वे नोखा, देशनोक, उदयरामसर, भीनासर होकर बीकानेर पधारे । सवत् १९९८ का चातुर्मास काल उन्होने भीनासर मे विताया ।

महाप्रस्थान :

भीनासर चातुर्मास की अवधि मे अपनी अशक्तता के कारण वे प्रवचन करने मे भी असमर्थ थे । वे व्याख्यान-सभा मे आकर मौन बैठे रहते । उनकी इस मौन परवशता से भीनासर के श्रद्धालु सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया के मन मे आचार्यश्री के प्रवचनो के प्रकाशन का विचार आया । तदनुसार श्री प० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल के सम्पादकत्व मे 'जवाहर किरणावली' के कई भागों का प्रकाशन किया गया । चातुर्मास के बाद आप भीनासर से बीकानेर पधार गए थे । बीकानेर मे ही मार्गशीर्ष शुक्ला २ तदनुसार १८ फरवरी, १९४२ रविवार को आपकी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती (दीक्षा के पचासवें वर्ष का उत्सव) बडी धूमधाम से मनाई गई । बीकानेर से आचार्यश्री पुन भीनासर आ गए तथा सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया के विशाल भवन मे ठहरे । यहीं ३० मई १९४२ को उनको पक्षाघात का आक्रमण हुआ तथा उनका दाहिना भाग शिथिल हो गया । कुछ ही दिन बाद उनकी कमर मे पीछे बाई ओर एक जहरी फोडा (Carbuncle) हो गया । इस फोडे के ठीक होने मे लगभग छह मास का समय लगा । इस सारी अवधि मे आचार्य श्री असह्य वेदना को शान्त भाव से सहन करते रहे । इसी अस्वस्थता की स्थिति मे उनका अन्तिम चातुर्मास भीनासर मे व्यतीत हुआ । दर्शनार्थियो का ताता लगा रहा । सम्भवत श्रद्धालु भक्तों को यह अहसास हो गया था कि आचार्यश्री के ये अब अन्तिम दर्शन ही है । उन्हे भी अपना अन्त सन्निकट लगता था । जुलाई १९४३ के प्रारम्भ मे ही उनकी गर्दन पर भयकर फोडा निकल आया तथा शरीर के अन्य भागो पर भी उसी तरह के छोटे-छोटे कई अन्य फोडे निकल आए । आषाढ शुक्ला अष्टमी दि० १० जुलाई १९४३ को उनकी दशा अधिक गम्भीर हो गई । युवाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज ने पूज्य श्री के कथनानुसार तथा अन्य मुनियो एव श्री सघ की सहमति से लगभग पौने बारह बजे तिविहार सथारा तथा पुन एक बजे चौविहार सथारा करा दिया । उसी दिन सात बजे के लगभग उनकी महान आत्मा ने नश्वर शरीर का बन्धन त्यागकर महाप्रस्थान किया । अन्तिम समय उनके मुखमण्डल पर एक दिव्य शान्ति व सौम्यभाव विराजमान था । लगता था वे गहरी समाधि मे लीन है ।

आचार्यश्री के सान्निध्य में सम्पन्न दीक्षाएं

नाम	दीक्षा—सवत्	दीक्षा-स्थल
श्री राधालाल जी म०	१९५६	खाचरौद
श्री घासीलाल जी म०	१९५८	तरावलीगढ
श्री गणेशीलाल जी म०	१९६२	उदयपुर
श्री पन्नालाल जी म०	१९६२	उदयपुर
श्री लालचन्द जी म०	१९६६	जावरा
श्री वख्तावरमल जी म०	१९६९	चिचवड
श्री सूरजमल जी म०	१९७५	हिवडा
श्री भीमराज जी म०	१९७९	सतारा
श्री सिरेमल जी म०	१९७९	सतारा
श्री जीवनलाल जी म०	१९७९	पूना
श्री जवाहरमल जी म०	१९७९	पूना
श्री केसरीमल जी म०	१९८०	घाटकोपर (वम्वई)
श्री चुन्नीलाल जी म०	१९८१	जलगाव
श्री वीरवल जी म०	१९८१	जलगाव
श्री सुगालचन्द जी म०	१९८३	व्यावर
श्री रेखचन्द जी म०	१९८५	चूरू
श्री हमीरमल जी म०	१९८५	चुरू
श्री चुन्नीलाल जी म०	१९८९	जोधपुर
श्री गोकुलचन्द जी म०	१९८९	जोधपुर
श्री मोतीलाल जी म०	१९८९	जैतारण
श्री फूलचन्द जी म०	१९९१	कपासन
सुश्री झम्मुवाई म०	१९९२	रतलाम
सुश्री सम्पतवाई म०	१९९२	रतलाम
श्री ईश्वरचन्द जी म०	१९९९	भीनासर
श्री नेमीचन्द जी म०	१९९९	भीनासर

आचार्यश्री के चातुर्मास

विक्रम सं०	चातुर्मास-स्थान	विक्रम सं०	चातुर्मास-स्थान
१९४९	धार	१९७५	हिवड़ा
१९५०	रामपुरा	१९७६	उदयपुर
१९५१	जावरा	१९७७	बीकानेर
१९५२	थांदला	१९७८	रतलाम
१९५३	शिवगढ	१९७९	सतारा
१९५४	सैलाना	१९८०	घाटकोपर (बम्बई)
१९५५	खाचरौद	१९८१	जलगांव
१९५६	खाचरौद	१९८२	जलगांव
१९५७	महीदपुर (उज्जैन)	१९८३	ब्यावर
१९५८	उदयपुर	१९८४	भीनासर
१९५९	जोधपुर	१९८५	सरदारशहर
१९६०	ब्यावर	१९८६	चूरू
१९६१	बीकानेर	१९८७	बीकानेर
१९६२	उदयपुर	१९८८	देहली
१९६३	गंगापुर	१९८९	जोधपुर
१९६४	रतलाम	१९९०	उदयपुर
१९६५	थांदला	१९९१	कपासन
१९६६	जावरा	१९९२	रतलाम
१९६७	इन्दौर	१९९३	राजकोट
१९६८	अहमदनगर	१९९४	जामनगर
१९६९	जुन्नेर	१९९५	मोरवी
१९७०	घोड़नदी	१९९६	अहमदाबाद
१९७१	मानगांव	१९९७	बगड़ी
१९७२	अहमदनगर	१९९८	भीनासर
१९७३	घोड़नदी	१९९९	भीनासर
१९७४	मीरी		

धर्मनायक जवाहर

● मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल'

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा ऐसे विचक्षण व्यक्तित्व के धनी एव राष्ट्रधर्म के प्रवर्तक थे कि स्वय महात्मा गाधी ने उनकी मुक्तकठ मे सराहना की। गुजराती दैनिक "सदेश" मे उनकी सराहना इस शीर्षक से छपी थी कि देश मे दो जवाहर है—एक धर्मनायक जवाहर (आचार्य श्री जवाहर-लाल जी म सा) तथा दूसरे राष्ट्रनायक जवाहर (प जवाहरलाल नेहरु) और ये दोनो जवाहर अपने अपने क्षेत्र मे राष्ट्र को अपनी अमूल्य सेवाए प्रदान कर रहे हैं। अपने गूढ चिन्तन से उन्होने धर्म की विशद व्याख्या की तथा समाज को कु ठाग्रस्त धारणाओ से दूर हटा कर राष्ट्रीयता को धर्ममय बनाने का उपदेश दिया। राष्ट्रधर्म आचार्यश्री के मौलिक चिन्तन का नवनीत था।

धर्म के विराट् रूप से साक्षात्कार :

आचार्य श्री का दीक्षा-काल उस समय देश मे प्रमुख रूप से स्वत-न्त्रता का सघर्ष-काल था। महात्मा गाधी के नेतृत्व मे विदेशी शासन मे मुक्ति पाने का कठोर प्रयास चल रहा था। स्वय गाधी जी के जीवन-निर्माण पर जैन तत्त्ववेत्ता श्रीमद् राजचन्द्र का वडा प्रभाव पडा था और इसी पृष्ठभूमि के साथ उन्होने देश मे अहिसक आन्दोलन का सूत्रपात किया। अहिसा का श्रेष्ठ पालन आत्म-वल के धरातल पर ही सभव हो सकता है एव आत्मवल की साधना धर्म के विराट् रूप को आत्मसात् किये विना सफल नही हो सकती है। धर्मनायक जवाहर ने उस समय धर्म के उस विराट् रूप से साक्षात्कार किया, जो समाज या राष्ट्र को ही नही, समस्त विश्व को अपने मे समाहित कर लेने की क्षमता रखता है।

एक प्रखर उपदेष्टा के रूप मे आचार्यश्री ने अपनी मौलिक शैली मे धर्म के इस विराट् रूप का दर्शन भी कराया। उन्होने वताया कि धर्म

व्यक्ति की निष्ठा पर आधारित होता है, किन्तु वह व्यक्ति की ही सीमा तक सकुचित नहीं होता। व्यक्ति के ही माध्यम से वह ग्राम, नगर, राष्ट्र एव सारे समार को भी प्रभावित करता है। राष्ट्रधर्म के निरूपण मे उन्होंने दस धर्म का विश्लेषण किया तथा सामान्य जन को भी यह बोध कराया कि विशुद्ध धर्म के धरातल पर खडे होकर राष्ट्रीयता का आह्वान करो।

राष्ट्रीयता की धारा को सजीव सम्बल :

रूढ परम्पराओ की छाया मे पलती आ रही धार्मिक मान्यताओ को आचार्य श्री ने एक जागृत स्वर प्रदान किया तथा उस रूढता की काई को हटा कर निर्मल जल के रूप मे उन्होंने दिखाया कि धर्म ही के प्रगतिशील स्वरुप के आधार पर राष्ट्र एव राष्ट्रीयता को मजीव मम्बल दिया जा सकता है। धार्मिक दृष्टि से उन्होंने सिद्ध किया कि रेशमी वस्त्र पवित्र नही होता, बल्कि हिंसा की क्रूरता मे रगा हुआ होता है। शुद्ध होता है खादी का वस्त्र जो अहिंसा का प्रतीक है। स्वय उन्होंने खादी अपनाई तथा जैन समाज मे खादी का व्यापक प्रचार उन्ही के समर्थन मे हुआ। खादी के परिवेश मे उन्होंने समग्र रूप से सादगी को अपनाने का आग्रह किया।

भारतीय स्वतत्रता-सघर्ष की जो दार्शनिक भूमिका थी, उसके निर्माण एव पुष्टिकरण का बहुत कुछ श्रेय आचार्य श्री को दिया जा सकता है जिन्होंने देश के सुदूर प्रान्तो मे कठिन पद-विहार करते हुए राष्ट्र-धर्म की जागृति का शखनाद किया। स्वदेशी की भावना का आचार्यश्री ने अथक प्रचार किया।

दयामूर्ति आचार्य :

करुणा मानवता का स्वाभाविक धर्म माना गया है किन्तु आचार्य श्री के समय मे अहिंसा की ही कुछ ऐसी सकुचित व्याख्या की जाने लगी कि प्राणो की रक्षा करने मे पाप है। रक्षा को पाप बताना करुणा के सिद्धान्त को नकारना था—अहिंसा के स्वरूप को भ्रान्ति मे रखना था। अहिंसा का निषेध रूप "नहीं मारना" है, किन्तु उसका विधि-रूप होता है "रक्षा करना।" जैन साधु को इसी दृष्टि से एक काया का ही नही, छ काया का रक्षक कहा गया है। आचार्यश्री ऐसे दयामूर्ति थे कि उन्होने अहिंसा के रक्षा-रूप को नकारने के भ्रम का निवारण तथा सद्धर्म का मडन किया। उस करुणा की धारा प्रवाहित करने की उनकी शैली इतनी ओजपूर्ण थी कि अनेकानेक व्यक्तियो ने भ्रान्ति से दूर हटकर उस धारा मे स्नान कर बहा दिया। वे उस समय के युगप्रवर्तक आचार्य माने गये है।

आचार्य श्री का व्यक्तित्व एव कृतित्व इतना महान्, इतना गूढ तथा इतना प्रभावपूर्ण है कि उसका वर्णन सरल नही है। उनके विशाल जीवन के एक एक गुण को भी अपने जीवन मे उतारा जाय तो अपने जीवन को उर्ध्व-गामी एव आत्मानन्द से सम्पन्न वनाया जा सकता है। ऐसे महान् सन्त की जन्म-शती के अवसर पर मै उन्हे अपनी नम्र श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ तथा अनुरोध करता हू कि उनके विकास-प्रेरक साहित्य को अधिकाधिक प्रकाश मे लाया जाय तथा राष्ट्र को उस दिशा मे अग्रसर वनने के लिये प्रेरित किया जाय। उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि हमे इसी रूप मे देनी चाहिये।



न्यायवृत्ति रखना और प्रामाणिक रहना, यह सुव्रतियो का मुद्रालेख है। यह मुद्रालेख उन्हे प्राणो से भी अधिक प्रिय होता है। सुव्रती अन्याय के खिलाफ अलख जगाता है। वह न स्वय अन्याय करता है और न सामने होने वाले अन्याय को टुकुर-टुकुर देखता रहता है। वह अन्याय का प्रतिकार करने के लिए कटिवद्ध रहता है। अन्याय का प्रतिकार करने मे वह अपने प्राणो को हसते-हसते निछावर कर देता है। वह समाज और देश के चरणो मे अपने जीवन का वलिदान देकर भी न्याय की रक्षा करता है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)



क्रान्तदर्शी आचार्य

● श्री रिषभदास रांका

व्यापक क्षेत्र :

अतीत के पचास वर्षों में जैन समाज के जितने भी प्रभावशाली आचार्य हुए, उनमें आचार्य जवाहरलाल जी का स्थान परमोत्कृष्ट है। यद्यपि वे स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य हुक्मीचन्द जी महाराज की परम्परा के आचार्य थे, तथापि उनका कार्यक्षेत्र आचार्य हुक्मीचन्द जी महाराज की परम्परा अथवा स्थानकवासी समाज तक ही सीमित न रहकर पूरे जैन समाज एवं राष्ट्रीय क्षेत्र तक व्याप्त था। इसीलिये कवि मेघाणी ने एक बार कहा था कि भारत में एक नहीं, दो जवाहर हैं। एक जवाहरलाल नेहरू हैं जो भारतीय राजनीति पर छाये हुए हैं और दूसरे आचार्य जवाहरलाल जी महाराज हैं, जो भारतीय धर्म क्षेत्र को प्रभावित कर रहे हैं।

क्रान्त द्रष्टा :

आचार्य जवाहरलाल जी महाराज ने जैन और अजैन समाज के समक्ष धर्म का सर्वाङ्गीण एवं व्यापक स्वरूप प्रस्तुत किया था, जिसका आधार था युग-युग की शिक्षा, और उसी शिक्षा के माध्यम से वर्तमान में जीवन-विकास तथा जीवन-विकास के साथ-साथ भविष्य के लिये प्रशस्त मार्ग का निर्धारण। इसलिये वे विनोबाजी के शब्दों में क्रान्तद्रष्टा थे। उसी का यह परिणाम है कि उन्होंने आज से पचास वर्ष पूर्व जो भी कुछ कहा, वह आज भी उतना ही उपादेय है जितना उस समय उपयोगी था। दूसरे शब्दों में वे समयज्ञ थे। वे समय की गति को समझ कर तदनुसार धर्म को मोड़ने में समाज का हित मानते थे और आचार या धर्म के हित की दृष्टि से परिवर्तन करने में वे कभी संकोच नहीं करते थे। यही कारण था कि सर्वप्रथम आपने विद्याध्ययन को प्राथमिकता दी और भगवान् के 'पढमं नाणं तओ दया' के उपदेश को चरितार्थ करते हुए विभिन्न मतानुयायी विद्वानों से भी संस्कृत भाषा का अध्ययन प्रारम्भ

किया । क्योकि ऐसा करना उस समय साधु के आचार से प्रतिकूल समझा जाता था । दूर दृष्टि के कारण आचार्य श्री ने आचार को धर्म के हित से थोडा मोड दिया और स्वय ने और प्रमुख शिष्य गणेशीलाल जी और घासीलाल जी प्रभृति मुनियो ने सस्कृत का प्रशस्त रीति से अध्ययन किया ।

निवृत्ति/प्रवृत्ति :

आगे फिर आपश्री ने विचार किया कि शिक्षा के क्षेत्र मे मालवा और राजस्थान की अपेक्षा से महाराष्ट्र आगे है क्योकि यहा पर बुद्धिवादी वातावरण है । साथ ही शिक्षितो मे धर्मरुचि भी है, इसलिये यहा धर्म का प्रसार और प्रचार अधिक हो सकता है । उस समय अहमदनगर मे श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया और श्री माणकचद जी मुथा युवक वकील थे । इनका सामाजिक दृष्टि से सम्पर्क विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ । इसके कारण नगर और उसके आस–पास के क्षेत्रो मे पाच वर्षावास भी हुए । नगर के वर्षावास के समय फिरोदिया जी एव स्थानीय श्रावको के प्रयत्न से लोकमान्य तिलक का मुनिश्री से सम्पर्क हुआ तथा महत्त्वपूर्ण पारस्परिक विचार–विमर्श हुआ । प्रसगात् मुनिश्री ने लोकमान्य तिलक से कहा कि 'जैन धर्म केवल निवृत्ति प्रधान नही है, यह अनासक्ति–प्रधान है । जैन धर्म मे बाह्यवेश अथवा आचार को खेत की बाड की तरह सहायक माना है । वेश मुक्ति का कारण नही है । कोई किसी वेश मे हो, किन्तु विषयो मे पूर्ण रूप मे अनासक्त हो तो मोक्ष प्राप्त कर सकता है । निवृत्ति मार्ग का अभ्यास मुक्ति का कारण है । अत स्वलिङ्गसिद्ध कहा है । अनासक्ति के अभ्यास के लिए साधुधर्म और निवृत्ति मार्ग है । गृहस्थ होते हुए भी जो महापुरुष अनासक्ति–युक्त हो जाते है, वे गृहस्थलिङ्ग से भी मुक्ति के अधिकारी हो सकते हैं । मुक्ति के लिये जिस प्रकार निवृत्ति आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार शुद्ध प्रवृत्ति भी आवश्यक है ।

अनासक्ति का प्राधान्य :

साधु अमुक प्रकार के वस्त्र पहने बिना भी मोक्ष पा सकता है । भरत चक्रवर्ती सम्राट् थे । वे राजवेश मे ही अपने शीशमहल मे खडे–खडे केवल–ज्ञानी हो गये । माता मरुदेवी और इलायची–पुत्र आदि के अनेक उदाहरण हैं, जो गृहस्थलिङ्ग से ही मुक्त हुए हैं । यहा आन्तरिक भावना का प्रकर्ष ही समझना चाहिये । जैन धर्म मे मोक्ष के अधिकारियो के पन्द्रह भेद हैं । उन भेदो मे से एक अन्यलिङ्ग–सिद्ध भी है । पूर्ण अनासक्ति अथवा निर्मोहावस्था मे किसी भी वेश मे रहते हुए केवलज्ञानी हो सकता है । इससे स्पष्ट है कि जैन धर्म न तो सर्वथा निवृत्ति की हिमायत करता है और न मुक्ति के लिये अमुक

प्रकार के वेश की अनिवार्यता मानता है। वस्तुत जैन धर्म मे अनासक्ति का ही प्राधान्य है। अनासक्ति के अभाव से निवृत्ति निस्सार है क्योकि कामभोगो मे मूर्छा अथवा आसक्ति होना ही ससार का कारण है और इसका न होना ही मोक्ष का कारण है। इसलिये जैन धर्म को सर्वथा निवृत्ति–प्रधान कहने से जैन धर्म का सम्यक् परिचय नही कहा जा सकता।

निषेध और विधेय :

साधु के लिये जितनी त्याज्य बातें आवश्यक रूप मे बताई गई हैं, उनसे कम विधेय बातें भी नही हैं। इस प्रकार पञ्च महाव्रती के लिये त्याज्य और विधेय ये दोनो ही बातें हैं। किसी भी प्राणी की हिंसा नही करना, यह अहिंसा महाव्रत का त्याज्य अश है, किन्तु ससार के सभी प्राणियो के प्रति मैत्री रखना, उनकी रक्षा करना, उनके लिये कल्याण की कामना करना यह सब विधेय अश है। असत्य भाषण न करना, यह सत्य महाव्रत का त्याज्य अश है, किन्तु हित, मित और सत्य वचन द्वारा जन–कल्याण करना यह उस महाव्रत का विधेय अश है। ऐसा ही शास्त्र–पठन, स्वाध्याय, सत्य की खोज के लिये युक्तिसगत वाद करना, ये सभी सत्य महाव्रत के विधेय अश हैं। नही दी हुई वस्तु न लेना, यह तृतीय महाव्रत का त्याज्य अश है, किन्तु प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करते समय उसके स्वामी की आज्ञा लेना विधेय अश है। कामभोगो का त्याग चतुर्थ महाव्रत का निषिद्ध अश है, किन्तु आत्मरमण यह प्रवृत्ति का अश है। किसी भी वस्तु मे मूर्छा अथवा मोह न रखना, यह पञ्चम महाव्रत का निवृत्तिपरक त्याग है और तप, परीषह–जय आदि के द्वारा शरीर वस्त्र आदि सभी वस्तुओ मे अनासक्ति का अभ्यास बढाना यह प्रवृत्ति का अश है। एवमेव समिति, गुप्ति आदि का परिपालन, पदयात्रा तथा अन्य सभी बातें ऐसी है, जिनमे प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दोनो ही उपलब्ध हैं। अशुभ योग मे निवृत्ति और शुद्ध एव शुभ योग मे प्रवृत्ति यह जैन धर्म का सिद्धान्त है।

आत्मा कर्माधीन होकर ससार मे भ्रमण करता है। जैन साधक आत्मा को नये कर्म के बन्धन से बचाना चाहता है और बधे कर्मों से आत्मा को अलग करना चाहता है। इसके दो मार्ग है। जिनके नाम क्रमश सवर और निर्जरा है। सवर प्रवृत्तिपरक है और निर्जरा निवृत्तिपरक है। सवर का अर्थ है–अशुभ प्रवृत्तियो से दूर रहना और निर्जरा का अर्थ है–बधे हुए कर्मों को तप, स्वाध्याय, ध्यान, समाधि आदि के द्वारा आत्मा से पृथक् करना। इस प्रकार जैन धर्म मे निवृत्ति और प्रवृत्ति साथ साथ चलती है।'

सफल और श्रेष्ठ साधु :

इस पर लोकमान्य तिलक ने सक्षिप्त भाषण दिया—"जैन धर्म और

वैदिक धर्म दोनो प्राचीन हैं, किन्तु जैन धर्म अहिंसा धर्म का प्रणेता है। जैन धर्म ने अपनी अहिंसा की कभी न मिटने वाली छाप वैदिक धर्म पर भी लगा दी। इस विषय मे जैन–धर्म वैदिक–धर्म पर विजयी हुआ है। जैन धर्म के विषय मे मेरा ज्ञान अल्प है, और जो भी है, वह भी जैन दर्शन के मूल ग्रन्थो के आधार पर नही है। अग्रेज अथवा दूसरे अजैन विद्वानो ने जो थोडा-बहुत लिखा है, उसे पढकर जैन धर्म की जानकारी प्राप्त की है। जैन दर्शन के ग्रन्थ या तो प्राकृत मे हैं या सस्कृत मे। उन मे से कोई एक ऐसा ग्रन्थ मेरे देखने मे नही आया, जिसको पढकर जैन धर्म का मौलिक ज्ञान प्राप्त हो सके। जैन विद्वानो के द्वारा आधुनिक शैली मे लिखा हुआ तो एक भी ग्रन्थ नही है। समय के अभाव मे सस्कृत–प्राकृत के विशाल साहित्य का मन्थन करना मेरे लिये बहुत कठिन है। इसलिये अग्रेज या अजैन विद्वानो के लिखे हुए फुटकर निबधो से मुझे अपने विचार बनाने पडे।'

फिर आगे कहते हुए आपने कहा कि 'मुनि जी ने आज जो बातें समझाई, उनसे मुझे बडा लाभ हुआ है। मेरी मान्यता है कि जैन दर्शन का गहराई से अध्ययन किया हुआ जैन विद्वान् जो सूक्ष्म बातें बता सकता है, तद-नुसार दूसरा विद्वान् नही बता सकता।'

साथ ही आपने स्पष्ट किया कि 'अहिंसा धर्म के लिये सम्पूर्ण जगत् भगवान् महावीर और बुद्ध का ऋणी रहेगा। मैं मुनिश्री का आभारी हू, जिन्होने महान् धर्म के विषय मे भ्रान्त धारणा दूर करके उसका शुद्ध रूप समझाया। आज के भारतीय समाज मे जैन साधु त्याग–तपस्या आदि सद्गुणो से सर्वश्रेष्ठ हैं। उनमे से मुनि जवाहरलाल जी भी एक हैं, जिनके दर्शन कर मुझे सुनने का अवसर मिला। आप सफल और श्रेष्ठ साधु हैं।'

'मैं जैसे अनेक देवों का उपासक हू, वैसे ही सन्तो का भी अनन्य भक्त हूँ। इसलिये मेरे व्याख्यान का प्रारम्भ सन्त तुकाराम के अभग से करता हूँ।'

मातृभूमि का उद्धार

फिर मुनिश्री को लक्ष्य करते हुए कहने लगे कि—'मुनि महाराज! आप सन्त हैं। सर्वस्व तथा सभी कामनाओ के त्यागी हैं। फिर भी आप मे जीव मात्र के कल्याण की कामना है। भारत की स्वतन्त्रता मे करोडो लोगो की भलाई है। जब भारत स्वाधीन होगा, तभी जैन धर्म फूलेगा–फलेगा। यह आप जानते हैं और मैं भी जानता हू कि आप सन्तो के आचार एव नियमो से बद्ध हैं। आपको राज्य–विरोधी कामो मे भाग लेने की आज्ञा नही है। अतएव हमे आशीर्वाद दीजिये। कार्यकर्त्ता हम कई करोड हैं।'

'अन्त मे मैं इतना कहना उचित समझता हूं कि जैन धर्म तो प्रारम्भ से अहिंसा का समर्थक रहा ही है, किन्तु वैदिक धर्म भी जैन धर्म के प्रभाव मे अहिंसा का आराधक बना है। अब अहिंसा के विषय मे हम एकमत हैं। अत हम सबको कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी मातृभूमि के उद्धार मे लग जाना चाहिये।'

इस प्रकार लोकमान्य तिलक की भेंट बडी उपयोगी और जैन समाज के लिये दिशा-दर्शक रही।

महाराष्ट्र मे धर्म प्रचार:

महाराष्ट्र के विहार मे मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराज ने समाज की स्थिति का अत्यन्त गहराई से अध्ययन कर समाज को जो मार्ग दिखाया, वह आज भी सही दिशा का दर्शक बना हुआ है। जैन समाज मे कई ऐसी गलत मान्यताए धर्म के नाम पर चल रही थी कि जो समाज के लिए हानि-प्रद थी। खेती और गोपालन को महारम्भ का काम समझ कर व्याज का धन्धा अल्पारम्भ का कारण समझा जाता था। आचार्यश्री महारम्भ और अल्पारम्भ के विषय में विवेक और यतना को अधिक प्राधान्य देते थे। खेती करने मे एकान्त पाप होता तो भगवान् महावीर के प्रमुख श्रावक अधिक सख्या मे खेती करते थे। ससार मे कोई क्रिया एकान्त पाप अथवा एकान्त पुण्य की नहीं होती। वे कहते थे कि कोई जैन खेती करे तो हिंसा-अहिंसा का विचार सावधानी रखकर करे। जो बिना विवेक अथवा असावधानी से खेती करता है, वह अधिक पाप करता है। इसी प्रकार जो खेती न कर अविवेक से बिना यतना से होने वाली खेती का अन्न खाते हैं तो अधिक पाप करते हैं। यदि विवेकपूर्वक खेती कर हम अधिक धान्य इस भावना से पैदा करते हैं कि ससार के लोग कम मासाहार करेंगे तो खेती से होने वाली हिंसा अल्पारम्भी हो सकेगी। गोपालन और खेती को विवेकपूर्वक करने के उपदेश से महाराष्ट्र मे अनेक श्रावक उत्तम खेती के बडे-बडे किसान हो गए। यह तो सर्वविदित है कि जैन किसानो की खेती अन्य किसानो की अपेक्षा से महाराष्ट्र मे अच्छी होती है।

महाराष्ट्र मे मृत्युभोज, कन्या विक्रय, वृद्ध और बालविवाह जैसी रूढियो के विरुद्ध जो प्रबल आन्दोलन हुआ, उनमे आचार्य श्री की प्रेरणा ही काम कर रही थी।

आपने मित्रो के घरों नगरो सपटा मे खादी के कपडे पहनने मे काम

हिंसा है, यह प्रभावपूर्ण भाषा मे समझा कर सहस्रश मनुष्यो को खादी पहनने के लिये प्रेरित किया ।

दृढ़धर्मी आचार्य :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की सबसे बडी एक देन यह थी कि आपने श्रावको मे आत्म-विश्वास उत्पन्न किया और स्वत्व का भान कराया । वे सदा कहा करते थे कि श्रावक-श्राविकायें सन्त और सतियो के माता-पिता हैं, इसलिये सन्त-सतीजन की वे सदा सार-सभाल किया करें ।

आपश्री ने रतलाम की स्थानकवासी कांफ्रेंस मे प्रवचन करते हुए व्यक्त किया था कि यह कान्फ्रेन्स रूपी कामधेनु साधु-साध्वियो और श्रावक-श्राविकाओं के रूप मे चतुर्विध सघ के सहारे खडी है । अत इस कामधेनु को अपनाकर मन से उज्ज्वल और वचन से मधुर बनना चाहिये । सर्वस्व का उत्सर्ग कर परोपकार का पाठ सीखना चाहिये ।

जब मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराष्ट्र मे विहार कर रहे थे, तभी पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज ने आपको युवाचार्य के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया था, किन्तु चादर ओढाने का कार्यक्रम मार्च २६ सन् १६१६ को रतलाम मे हुआ था । उस समय पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज ने कहा था कि 'उदयपुर मे श्रीसघ की प्रार्थना ने मुझे सूचित किया था कि मुझे योग्य व्यक्ति का चुनाव करना चाहिये । तब मुझे आपका स्मरण आया । मुझे लगा कि सघ के शासन की बागडोर आपके हाथ मे सौपने से कोई डर नही है, क्योंकि आप जैसे प्रतिभाशाली, तेजस्वी, कठोर सयमी और दृढधर्मा आचार्य को पाकर हुक्मीचद जी महाराज का सम्प्रदाय अधिकाधिक विकसित होगा ।

इसके उत्तर मे युवाचार्य श्री जवाहरलाल जी ने कहा था कि 'इस पद के अनुरूप श्री सघ की सेवा कर सका तो मैं अपने आपको गौरवशाली समझूगा । श्री सघ की दृष्टि से भले ही मैं ऊचा समझा जाऊ, परन्तु अपनी नजरो मे मैं धर्म का एक अकिञ्चन सेवक ही रहूगा ।

रचनात्मक कार्य :

पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज ने अपने उत्तराधिकारी कितने योग्य चुने, इसकी प्रतीति दोपहर को दिये व्याख्यान से हो गई । युवाचार्य ने अपने व्याख्यान में आज से पचास वर्ष पूर्व जो बात कही थी, वह आज भी उतनी ही उपयुक्त है, जितनी कि वह उस समय उपयुक्त थी । आपने कहा था कि समाज की उन्नति के लिये घूम घूम कर प्रचार करने वाले प्रचारको की आवश्यकता

है, उनके ऊपर यह भी दायित्व रहना चाहिये कि वे संभाल भी करते रहे और आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते रहे। इससे धर्म-विमुखता हटेगी और धर्माभिमुखता बढ़ेगी। इसी प्रकार शिक्षा की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये, जिसका उपयोग सभी धर्म-प्रेमी ले सकें। इसलिये शिक्षा संस्थाओं और धार्मिक संस्थाओं की स्थापना परम आवश्यक है।

आपश्री कहा करते थे कि—'व्याख्यान देने मात्र से समाज का श्रेय नहीं हो सकता। इसके लिये रचनात्मक व ठोस कार्य करने की आवश्यकता है। योजनाबद्ध कार्य करने से ही समाज का उत्थान होगा।

ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जहा पर साधु महाराजों का विचरण नही हो पाता, क्योंकि उन क्षेत्रों मे साधु-मर्यादाओं का पालन करना कठिन हो जाता है। ऐसे क्षेत्रों मे सश्रद्ध विद्वान और सत्यनिष्ठ गृहस्थ ही कार्य कर सकते हैं। केवल साधुओं पर सारा भार डालकर गृहस्थों को निश्चित नही होना चाहिये।'

उक्त विषय की मुख्यता के कारण से ही दिल्ली मे स्थानकवासी कान्फ्रेन्स की ११-१०-१९३७ की जनरल कमेटी मे साधु और श्रावक के बीच एक तीसरा वर्ग संस्थापित हो, यह एक योजना रखी गई थी।

आपश्री ने आगे यह भी कहा कि 'हमारे समाज में आज साधु और श्रावक दो वर्ग हैं। यदि समाज-सुधार के कार्य को श्रावक न करे तो उस कार्य को साधु को करना पडता है। इससे प्रत्यक्ष या परोक्ष मे ऐसे काम हो जाते हैं, जो साधुता के लिये शोभनीय नही है।'

समाज-सुधार का प्रश्न उपेक्षणीय इसलिये नही है कि लौकिक व्यवहार के बिगडने से धर्म की स्थिरता नहीं रहती और यदि साधुवर्ग इस कार्य को हाथ मे न ले तो फिर समाज बिगडता है। अत यह समस्या है, जिसका समाधान श्रावकों को ढूंढना ही चाहिये, जिससे समाज-सुधार का कार्य भी हो और साधुओं को भी इसके लिये कुछ सोचना न पडे। श्रावकवर्ग का निरन्तर की दुनियादारी मे लगे रहने से समाज-सुधार की ओर ध्यान नही जाता, जब कि यह आवश्यक और उपयोगी है। अत श्रावकवर्ग की प्रवृत्ति इस ओर भी बढ़नी चाहिये।

हमारी दृष्टि मे इस समस्या का समाधान तीसरा वर्ग हो सकता जो श्रावक साधुजन के बीच मे हो। ब्रह्मचारी और अपरिग्रही होकर समाज-सुधार के कार्य के अतिरिक्त धार्मिक कार्य भी कर पायेंगे एवं सेवा भावना से प्रेरित होकर शिक्षा-साहित्य प्रकाशनादि के लिये भी अग्रसर हो सकते हैं। साथ ही जनता की भावनायें भी स्पष्ट ज्ञात हो सकेंगी।

ग्रामधर्म, समाजधर्म, राष्ट्रधर्म :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ग्रामधर्म समाजधर्म, और राष्ट्र-धर्म के महत्त्व को भलीभाति जानते थे। इसलिये उनके विचारो मे राष्ट्रीयता ओत-प्रोत थी। लोकमान्य तिलक, गांधीजी, विनोबा भावे, जमनलाल बजाज, सरदार पटेल आदि से आपका सम्पर्क हुआ था। आपका यह दृढ विश्वास था कि दास व्यक्ति धर्म का पालन नहीं कर सकता। इसलिये वे अपनी साधु मर्यादा मे राष्ट्रीय कार्यो का निर्भय होकर साथ देते थे। उनके व्याख्यानो मे खादी, ग्रामोद्योग, अस्पृश्यता निवारण आदि का उपदेश तो होता ही था, परन्तु राष्ट्रीयता का भी समावेश रहता था। इसका असर सरकार पर भी पडा था। इसी वजह से कुछ गुप्तचर आचार्यश्री के साथ भी रहने लगे थे।

इस सब से श्रावक चिन्तित होने लगे। अत श्रावको की चिन्ता दूर करते हुए आपने निर्भय होकर कहा था कि 'मैं अपने कर्त्तव्य को भली भाति समझता हू। मुझे अपने उत्तरदायित्व का पूरा भान है। मैं जानता हू कि धर्म क्या है ? मैं साधु हू। अधर्म के मार्ग पर नही चल सकता। परतन्त्रता पाप है परतन्त्र व्यक्ति धर्म की ठीक तरह से आराधना नही कर सकता। मैं व्याख्यान मे प्रत्येक बात समझ सोचकर तथा मर्यादा के भीतर रहकर करता हू। इस पर भी यदि राज्यसत्ता हमे गिरफ्तार करती है तो हमे डरने की क्या आवश्यकता है ? कर्त्तव्य-पालन मे डर कैसा ? साधु को भी सभी उपसर्ग और परीषह सहने चाहिये। किन्तु अपने कर्त्तव्यपथ से विचलित नही होना चाहिये। सभी परिस्थितियो मे धर्मरक्षा का मार्ग मुझे मालूम है। यदि कर्त्तव्य-पालन के लिये जैन समाज का आचार्य गिरफ्तार होता है तो जैन समाज के लिये किसी प्रकार के अपमान की बात नही होगी। इसमे अत्याचारी के अत्याचार सभी के सामने आते हैं।

लोकेषणा से मुक्त :

इन सब बातो के होते हुए भी आचार्यश्री लोकेषणा से मुक्त थे। यह मैंने अधिक निकट से देखा है। मैं आपकी सेवा मे दो वर्ष तक साथ साथ रहा हू। जलगाव के वर्षावास के समय तो मैं और मेरे मित्र राजमल जी ललवानी दोनो ही महाराज श्री के सम्पर्क में थे। उस समय मैं घर का धन्धा छोडकर खादी के कार्य मे सलग्न था। यह कार्य आचार्यश्री को भी प्रिय था। मेरा घर भी ५० कदम की दूरी पर था। इसलिये कम से कम ४-५ घटे तो आचार्यश्री के सत्सग मे व्यतीत होते ही थे। 'नवजीवन' तथा गाधी साहित्य आचार्यश्री की सेवा मे पहुचाने का कार्य मेरा ही था। मेरे ही कारण से सेठ

जमनालाल बजाज और आचार्य विनोबा भावे भी आचार्यश्री के सम्पर्क मे आये थे ।

आपश्री की समाज-सुधार, शिक्षा प्रचार, साहित्य प्रकाशन आदि कार्यो के प्रति रुचि होते हुए भी अनासक्ति फिर भी बनी रहती थी । आज की भाषा मे 'अवेयरनेस' के मुझे उनमे दर्शन होते थे ।

साथ ही सत्ता अथवा प्रतिष्ठा का कोई मोह नही था । तभी तो अन्तिम समय से पूर्व ही आपने युवाचार्य को सघ का शासन सौंप दिया था और निवृत्ति का जीवन विताया था। अन्तिम समय पर सभी से क्षमा-याचना कर मैत्रीभाव की साधना की ।

उनकी जैन तत्त्वों मे पूर्ण निष्ठा थी, सम्प्रदाय के प्रति समर्पित थे तो भी स्पष्टवक्ता थे । आपने पचास वर्ष पूर्व जो बातें कही थी, वे आज भी समाज के लिये उतनी ही लाभदायक हैं। इसीलिये वे क्रान्तद्रष्टा थे । मुझे ऐसी विभूति की सेवा मे और सम्पर्क मे आने का लाभ मिला, अत मैं अपने आपको भाग्यवान् समझता हू । मैंने आपश्री के सत्सग से बहुत कुछ पाया, इसलिये मुझे श्रद्धासुमन चढाते हुए अपार सन्तोष हो रहा है । आप केवल जैनाचार्य ही नही थे, अपितु भारतमाता के सच्चे सपूत भी थे ।

★★

तुम्हारे हृदय मे अपनी माता का स्थान ऊंचा है या दासी का ? अगर माता का स्थान ऊचा है तो मातृभाषा के लिए भी ऊचा स्थान होना चाहिए । मातृभाषा माता के स्थान पर है और विदेशी भाषा दासी के स्थान पर । दासी कितनी ही रूपवती और सुघड क्यो न हो, माता का स्थान कदापि नही ले सकती ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)



विचारक भी : क्रांतिकारी भी

● श्री अजितमुनि 'निर्मल'

भगवान् महावीर की परम-पुण्य-पावन परम्परा मे प्रचुर रूप से प्रतिभाशाली पुरुष पु गव हो गये हैं, जिनकी चिरतन चेतना का चमत्कार चतुर्दिक फैलकर चित्तवृत्ति को आह्लादित किये दे रहा है । अद्यावधि यह सास्कृतिक धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान है और भविष्य मे भी इसी प्रकार अनवरत गतिशील रहेगी । जन-जीवन हमेशा ही इनसे अनुप्राणित होता रहा है तथा दिशा-निर्देश पाकर एव तदनुकूल आचरण निर्माण के लिए अपने सौभाग्य को धन्यवाद देता रहा है ।

महिमामय संप्रदाय :

इसी मुनि-परम्परा मे स्थानकवासी समाज मे शास्त्रानुमोदित आचारिक क्रिया के धनी महिमामय श्रद्धेय पूज्य श्री हुक्मीचद जी म हो गये हैं, जिन्हे साम्प्रदायिक नायकत्व का सर्वोच्च श्रद्धाभिनन्दन चतुर्विध सघ द्वारा अर्पित किया गया है । उन्होंने अपने जीवन भर किसी भी प्रकार से 'यश एव पद' की कामना नही की । निरतर आत्म-साधना की सतर्क-तल्लीनता ही बनी रहती थी ।

ज्योतिर्धर जवाहर :

श्री हुकमेश गच्छ की उज्ज्वल धारा मे ही स्वनाम धन्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म के तेजस्वी, ओजस्वी व्यक्तित्व का अणगारी जन्म हुआ । अपने समय मे आपकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जो युग-इतिहास के चमकते पृष्ठो मे आज भी सुरक्षित है ।

आचार्यश्री, विचारक भी : क्रांतिकारी भी

आचार्यश्री के क्रातिपूर्ण विचारो की विरासत उनके जीवन-चरित्र

एवं प्रवचन-पुस्तको मे सुरक्षित है। हम पाते हैं कि वे आचार्य होने के साथ ही एक विचारक की भी सुस्पष्ट गरिमा को सजोए हुये हैं । सुलझी-सुथरी चिंतन की थाती समाज को वही दे सकता है, जो स्वय क्रातिधर की साक्षात् प्रतिमा हो और जो समाज को पूर्ण सक्षमता के साथ दिशानिर्देश दे सके ।

विचार और आचार का प्रणेता एव पालक ही 'आचार्य' की गरिमा मे निभूषित होता है । आचार्यश्री स्वय आचार्य होने के साथ ही विचारक भी थे । अत स्पष्टता एव क्राति का सुगम सगम तो फिर परिलक्षित हो ही जाता है ।

दो महाशक्तियां :

भगवान् महावीर के शासन मे हमारी इस पूज्य श्री हुकमेश-गच्छीय परम्परा मे एव समग्र स्थानकवासी समाज मे सर्वमान्य दो महाशक्तिया थीं, जिनका प्रतिभा-प्रताप अजब-गजब का था । जिनमे से एक जैनदिवाकर, जगत-वल्लभ श्री 'चौथमल जी म एव दूसरे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म थे । दोनो ही समकालीन ओजस्वी वक्ता, अहिंसा के प्रबल प्रचारक, समाज-सगठन के हामी और मर्मज्ञ विचारक थे ।

क्राति का आह्वान :

आचार्य श्री ने भारतीय परतत्रता के जकडे हुए उस युग मे सिंहनाद किया जब कि कुरूढियो के जाल मे व्यक्ति एव समाज के साथ ही युग-समय भी आबद्ध था । पराधीनता का जूडा वहन करते-करते पाव लडखडा गए थे । 'उफ' उच्चारण तक अपराध माना जाता था । धार्मिक विश्वास डोल रहा था । तब ऐसी स्थिति के प्रति एव जर्जरित ढकोसलो को समूल समाप्त करने का क्राति-आह्वान किया ।

वे प्रत्येक विचार की गहराई तक पैठते थे और इसमे उन्हे विशेषज्ञता हासिल थी । किसी भी विषय का कैसा ही चिंतन हो, उसमे उनका अपना सशोधन तैयार रहता था, क्योकि समाज के अधिकारी व्यक्ति को हर प्रकार के तर्कों से वास्ता पडता रहता है । उनकी अनियमित मनोवृत्तियो के भयकर-तम हाने मार्ग से मुक्त करना ही मुनिवर्ग का प्रमुख कार्य होता है । उस नाते आचार्यश्री भी तो मुनि ही थे । उन्होंने भी उस दिशा मे कार्य किया ।

समता-समाज की स्थापना :

समाज विराम-रचना के पारंभ सैद्धान्तिक नीतियो पर ही आधारित

होते हैं । लोग साम्यवाद की चर्चा करते हुए अघाते नही हैं । आचार्यश्री ने भी इस पर अपनी स्थापना दी है –

"साम्य के सिद्धान्त को अगर सजीव वनाया जा सकता है तो केवल उसमे वन्धुता की भावना का सम्मिश्रण करके ही । यही नही, वन्धुता-हीन साम्यवाद विनाश का कारण वन जाता है[१] ।" उन्होने उदाहरण देते हुए इस वात को और भी खुले शव्दो मे स्पष्ट किया कि पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज ने एक वार कहा था— ऐ धनिको ! सावधान रहो । अपने धन मे से गरीवो को हिस्सा देकर यदि उन्हे शात न करोगे, उनका आदर न करोगे, उनकी सेवा न करोगे तो साम्यवाद फैले विना न रहेगा । सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो जायेगी कि गरीव धनवानो के गले काटेंगे । उस समय हाय-हाय मच जायेगी ।" कविप्रवर श्री केवलचद जी म ने भी युक्तिपूर्ण समाधान प्रस्तुत किया है—

" झोपडी – महल मे जग चलेगा,
और दोनो मे मेल न होगा ।
दोनो मिट जायेंगे—नष्ट हो जायेंगे,
— फिर क्या पाना ?"

खतरे के प्रति कितनी सटीक चेतावनी है ! साम्यवाद का जनक सग्रह-खोरी है और सग्रहखोरी की जड धन है । इन दोनो के लिए सर्वत्र सघर्ष हो रहे हैं । आचार्यश्री ने कहा— सिक्के की वृद्धि के साथ अशाति की वृद्धि हुई है । सिक्का-सग्रह करने की मनोवृत्ति ने अशाति का पोषण किया है[२] । अत इस वात को भलीभाति समझकर आत्मा को धन का गुलाम मत वनाओ[3] । क्योकि धन को साधन मान कर उसके प्रति निर्मम वनना, उसे आत्मा को न ग्रसने देना, इतनी महत्त्व की वात है कि उसके विना जीवन का अभ्युदय सिद्ध नही हो सकता[४] ।

उपवास का रचनात्मक स्वरूप :

जैन समाज मे उपवास की वडी महिमा है । केवल उस महिमा-लाभ के लिए प्रति वर्ष निरन्तर ही उपवासो का ढेर खडा कर दिया जाता है, उसका विधि-विधान समझे विना ही । पूर्ण रूप से साधना को समझे विना ही साधना करते लगना, एक प्रकार से साधना के अस्तित्व को समाप्त करना है । आज के लोगो की गलत धारणाओ को सुधार-सकेत देते हुए आचार्यश्री ने कहा—"कुछ लोग उपवास को भी खान-पान का साधन वना वैठते हैं ।

फल उपवास करना है, इसलिए आज हलवा, पूडी, कलाकद आदि गरिष्ठ पदार्थों का सेवन करके पेट को ठास-ठास कर भर लेना, उपवास की खिल्ली उड़ाना है। जैन शास्त्र ऐसे उपवास का विधान नही करते। यह उपवास नही, एक प्रकार की आत्म-वचना है[५]। मनुष्य अपनी धीगा-धागी से, आवश्यकता से अधिक खा जाता है, ठूस-ठूस कर पेट भरता है। इस प्रकार अकेले भारतवर्ष ने ६ करोड मनुष्यो की खुराक को छीन कर उन्हें भूखे मारने का पाप अपने सिर ले लिया है। भारत मे तैंतीस करोड मनुष्य हैं। इनमे से छह करोड को अलग कर सत्ताईस करोड मनुष्य महीने मे छह उपवास करने लगें तो क्या इन छह करोड भूखो को भोजन नही मिल सकता[१] ?" यदि ऐसा होने लगे तो मैं समझता हूँ, धार्मिक आचरण-सुधार के साथ विश्व मे दया की प्रतिष्ठा होते देर नही लगेगी।

आज की क्रियाशीलता बनाम चालाकी :

आज की अजनबी-भ्रमपूर्ण क्रियाशीलता पर आचार्यश्री ने वाणी-प्रहार किया। हमारी प्रामाणिकता का यह तकाजा है कि हम जिस कार्य को हृदय मे अच्छा समझें, उस कार्य को क्रिया मे उतारने का हृदय से प्रयास करें। दूसरो को खुश करने के लिए मुह मे वाह-वाह करना, कार्यकर्ताओं को और अपने अतःकरण को छलने की चालाकी है। चालाकी से दुनिया खुश हो सकती है, परमात्मा नही[४]। इतनी गम्भीर चोट के बाद भी लोगो को होश नही आ रहा है। साधना, धर्म एव समाज तभी तो बदनाम होते हैं।

मेरा कलेजा फट जाये :

आचार्यश्री ने जो वैचारिक क्राति का वैभव समाज को प्रदत्त किया है, वह मानव-समाज के हित-साधन की दृष्टि मे सुन्दर देन मानी जायेगी। सामाजिक म्लानताओं को दूर करने की पीड़ा उनके मानस मे छटपटाती रहती थी। आचार्यश्री प्राय अपने प्रवचनो मे कहा करते थे—"आज के इन लोगो के भीतरी काले कारनामो को अक्षरश जग-जाहिर कर दू, तो मेरा कलेजा फट जाये।" इन शब्दो के माध्यम से उनकी पीडित गहराई को नापा जा सकता है। आशितारा अपने आत्मनिवेदन का गर्जन और किन शब्दो मे व्यक्त कर सकता है ?

कथनी एवं करनी की चर्चित दृष्टि .

आज के युग का व्यक्ति बोलना तो "पर उपदेश कुशल बहुतेरे"

की तरह है किन्तु कार्य–रचना के ठीक अवसर पर वह स्वय को चुराने लगता है। कथनी और करनी की अतर्द्दृष्टि ने उसे एकदम वदल दिया है। यह वदला हुआ रूप आचार्यश्री को पसन्द नही आया। इसके लिए भी उन्होने चर्चा के स्वर मे अतत कहा ही—"सौ निरर्थक वातें करने की अपेक्षा एक सार्थक कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है[8]। दूसरे के किसी सद्गुण की प्रशसा करना अच्छा है, परन्तु उसे अपने जीवन मे उतारने की प्रबल चेष्ठा करना उससे भी अच्छा है। जैसे मक्खी गन्दगी खोजती है, उसी प्रकार तुम दूसरो के दुर्गुण खोजोगे तो अपने ही पैर पर कुल्हाडा मारना होगा। पराये दुर्गुणो पर दृष्टि डालने की अपेक्षा, चुपचाप अपने दुर्गुणो को पहचानना और उन्हे नष्ट करने का प्रयत्न करना, लाख दर्जे श्रेष्ठ कार्य है।

अभिशाप : अकर्मण्यता का :

आचार्यश्री ने भारतीय मनुष्यो की सार्वत्रिक अकर्मण्यता को देख कर कितने शानदार शब्दो मे वोध–व्याख्या प्रस्तुत की है, उसकी वानगी वास्तविकता मे देखते ही वनती है। उन्होने कहा—"जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सवको सभ्यता सिखाने वाला था, आज वह इतना दीन–हीन हो गया है कि आध्यात्मिक विद्या की पुस्तके जर्मनी से मगाता है। युद्ध-सामग्री के लिए अमेरिका के प्रति याचक वनता है। नीति, धर्म की पुस्तको के लिए इग्लैड के सामने हाथ पसारता है और–तो–और सूई जैसी तुच्छ चीज के लिए भी वह विदेशियो का मुह ताकता है। इसका क्या कारण है[9]? इस दुर्दशा का कारण आचार्यश्री की दृष्टि मे वर्ण–व्यवस्था की दूषित प्रणाली है। अकर्मण्यता के अभिशाप से कव मुक्ति होगी ?

आज की अपग शिक्षा :

आज की शिक्षा भी इस अकर्मण्यता मे और वृद्धि करती जा रही है। आचार्यश्री के शब्दो मे भारत मे शिक्षा की वहुत कमी है। जो शिक्षा दी भी जाती है, वह इतनी निकम्मी है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले युवक किसी काम के नही रहते[10]। वे अपने को समाज का एक अग मान कर समाज के श्रेय मे अपना श्रेय एव समाज के अमगल मे अपना अमगल नही मानते[11]। आजकल जो शिक्षा मिलती है, उसका जीवन–सिद्धि के साथ कोई सरोकार नही है। वह वेकार सी है, फिर भी वह वडी वोझीली है। विद्यार्थियो पर पुस्तको का इतना अधिक वोझा लादा जाता है कि वे विचारे रोगी वन जाते है। आचार्यश्री ने व्यावहारिक शिक्षा के साथ ही धर्म–शिक्षा की अनिवार्यता स्वीकार की है।

गौ-रक्षा कैसे हो ?

आज भारत मे गोरक्षा के आन्दोलन चलते हैं । गौ-वध के लिए सरकार पर दोषारोपण किया जाता है किन्तु हम गौरक्षा की बात करने वाले जरा गौशालाओ की स्थिति को खुली आखो से देख कर सुधार का प्रयास करें। आचार्यश्री ने इसका खुला समाधान दिया । आज परम्परा का पालन करने के लिए गाय को कोई माता भले ही कह दे, पर उसका पालन विपत्ति से कम नही समझा जाता । लोग गौ-वश के ह्रास का कलक मुसलमानो के मत्थे मढते हैं, पर मेरी समझ मे हिन्दू लोग अगर गाय को मा समझ कर घर मे आदर के साथ स्थान देते तो गौ-वश का ह्रास न होता और न कोई उसे मार ही सकता[13] । मैं तो यहा तक कहूंगा कि हिन्दू लोग भी किसी न किसी रूप मे गौ-वश के विनाश मे सहायक हो रहे हैं[14] । गौरक्षा का सपना तभी पूरा होगा जब कि आचार्यश्री का सुझाव साकार होगा ।

कृषि : एक विवाद, एक हल !

आचार्यश्री ने 'खेती' जैसे विवादास्पद प्रश्न पर भी खुले रूप से विचारणा की । प्रज्ञापनासूत्र' के साक्ष्याधार पर कहते है—खेती अनार्य धन्धा नही है, वरन् आर्य धधा है[15] । उनके अनुसार लोगो ने कृषि-कर्म को महापाप और खेती करने वाले को महापापी मान लिया । पर खेती से उत्पन्न होने वाले अन्न को खाने मे भी पाप मान लिया जाये, तो कैसी विडम्बना खडी होगी[16]? खेती मे होने वाला आरम्भ तो है ही, पर सौदा-फाटका, कूड-कपट जितना पाप उसमे नहीं है[17] क्योकि कृषि मे ही आजीविका का हल मौजूद है ।

भारत का सुदर्शन चक्र : चर्खा

आचार्यश्री को जब यह ज्ञात हुआ कि वस्त्रो मे चर्बी का प्रयोग होता है, तभी से आजीवन खादी के वस्त्र ही पहनने का सकल्प ग्रहण कर लिया । तभी से उनकी दृष्टि मे "चर्खा भारतवर्ष का सुदर्शन चक्र बन गया[18] । पूज्यश्री आलोचना एव राष्ट्रीयता-पूरित प्रवचनो से तब समाज मे एव श्रोताओ मे एक नयी जागृति की लहर सनसना देते थे ।

आचार्य की गिरफ्तारी : निर्भीक सत्य

अंग्रेज सरकार की दृष्टि मे आचार्य श्री एक धर्माचार्य के रूप मे नये राष्ट्रीय नेता दृष्टिगत हुए । सरकारी गतिविधि मे आवश्यक चक्र उठे । अफसरों ने जब आचार्यश्री से कहा— 'आप अपने व्याख्यानों को धर्म तक ही

सीमित रखें। राष्ट्रीय वातो के आने से सरकार को संदेह हो रहा है। कही ऐसा न हो कि आप गिरफ्तार कर लिये जाए और सारे समाज को नीचा देखना पडे।"

पूज्यश्री ने उत्तर दिया—"मैं अपना कर्त्तव्य भली-भांति समझता हू। मुझे अपने उत्तरदायित्व का भी पूरा भान है। मैं जानता हू कि धर्म क्या है? मैं साधु हूँ। अधर्म के मार्ग पर नही जा सकता, किन्तु परतंत्रता पाप है। परतंत्र व्यक्ति ठीक तरह धर्म की आराधना नही कर सकता। मैं अपने व्याख्यान मे प्रत्येक बात सोच-समझ कर तथा मर्यादा के भीतर रह कर कहता हू। इस पर यदि राजसत्ता हमे गिरफ्तार करती है तो हमे डरने की क्या आवश्यकता है? कर्त्तव्य पालन में डर कैसा? साधु को सभी उपसर्ग व परीषह सहने चाहिए, अपने कर्त्तव्य से विचलित नही होना चाहिए। सभी परिस्थितियो मे धर्म की रक्षा का मार्ग मुझे मालूम है। यदि कर्त्तव्य का पालन करते हुए जैन-समाज का आचार्य गिरफ्तार हो जाता है तो इनमे जैन-समाज के लिए किसी प्रकार के अपमान की वात नही है। इसमे तो अत्याचारी का अत्याचार सभी के सामने आ जाता है[१६]।"

आज के युग मे आचार्यश्री के समान इस प्रकार निर्भीक सत्य उगलने वाले कितने हैं? अडिग चट्टान की भांति अपने को सुदृढ रखना कोई हसी-मजाक नही है। वे अपने कर्त्तव्य-मर्यादा पालन मे सजगता के साथ किस सीमा-स्थिति तक तैयार रहते थे, यह उक्त कथन से जाना जा सकता है।

नारी : घर का स्वराज्य :

अभी हमने अतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया और अब महिला-शताब्दी मना रहे हैं। अत स्वाभाविक ही है कि नारी उत्थान के कार्यक्रम आयोजित हो। परन्तु पूज्यश्री ने महिलाओ की उन्नति के वावत तव मननीय विचार प्रगट किये जब कि 'स्त्री को पैरो की जूती' माना जाता था। ऐसे समय पुरुषो के सम्मुख स्त्री जाति को धन्यवाद के साथ, गुण-गीत का बखान करना, कोई कम वात नही थी। आचार्यश्री ने इस बीडे को उठाया। नारी सम्मान की तथा महत्ता की खुली घोषणा की। पुरुषो को ललकारते हुए कहा—"आप अंग्रेजी सरकार से स्वराज्य की माग करते हैं, किन्तु पहले अपने घर मे तो स्वराज्य की स्थापना कर स्त्रियो के साथ समता और उदारता का व्यवहार करो[२०]। यह स्त्रिया जगजननी का अवतार हैं[२१]। मैं समभाव का व्यवहार करने के लिए कहता हू। इसका यह अभिप्राय नही है कि स्त्रियो को पुरुषो के अधिकार दे दिये जायें। मेरा आशय यह है कि स्त्रियो को स्त्रियों के

अधिकार देने मे कृपणता न की जाये[२२] । प्रकृति के नियम को याद रखिये, बिना स्त्री जाति के उद्धार के आपका उद्धार होना कठिन है[२३] ।

नारी-शिक्षा कैसी हो ?

नारी जाति के प्रति सम्मान की भावना के कर्त्तव्य-बोध की चुटीली लताड के साथ पुरुषो को उसका गौरव बताया । उन्होने केवल पुरुष को ही कहा हो, ऐसी बात नही है । उन्होने नारी को ही नारी-जागरण का प्रशस्त पथ भी निर्देश किया । नारी को उसका जाति-स्वरूप बताते हुए कहा—" पुरुष आपको आपके अधिकार दे देंगे तो बिना शिक्षा के आप उन्हे निभा सकेंगी ? आपका शिक्षित होना, इसलिए जरूरी है[२४] । स्त्री-शिक्षा का तात्पर्य कोरा पुस्तक ज्ञान नही है । अक्षर-ज्ञान के साथ कर्त्तव्य-ज्ञान की शिक्षा दी जायेगी, तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा[२५] । विद्या-लाभ के लिए लोग सरस्वती-अरे ! स्त्री की पूजा करते है, फिर कहते हैं कि स्त्री-शिक्षा निषिद्ध है[२६] । स्त्री-शिक्षा का अर्थ यह नही है कि आप अपनी बहू-बेटियो को यूरोपियन लेडी बनावें और न यही अर्थ है कि उन्हे घूघट मे लपेटे रहे[२७] । उन्हे ऐसी शिक्षा दी जाये, जिससे वे अज्ञान के अन्धकार से बाहर निकल कर ज्ञान के प्रकाश मे आ सके[२८] । उन्हे ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये, जिसके कारण उन्हे अपने कर्त्तव्य का, उत्तरदायित्व का, अपने स्वरूप का, अपनी शक्ति का, अपनी महत्ता का और अपनी दिव्यता का बोध हो सके । उन्हे ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे वे अबला न रहे—प्रबला बनें । पुरुषो का बोझ न रहें, शक्ति बनें । वे कलहकारिणी न हो, कल्याणी बनें । उन्हें जगज्जननी, वरदानी एव भवानी बनाने वाली शिक्षा की आवश्यकता है[२९] ।

इन उपर्युक्त शब्दो मे तथा उनमे निहित उदात्त विचारो की दीर्घ दृष्टि, क्या नही कह गई, देख गई ? यदि नारी जाति उक्त भावानुसार हो जाये, तो विश्व को स्वर्ग बनने मे देर न लगे ।

इस आचार्यश्री के विचारक स्वरूप मे विराट क्रान्ति का दर्शन होता है । हर पहलू और हर रग का विषय उनकी चिंतन की परतो को एक के बाद एक उजागर करता ही चला गया ।

संघ-निष्ठा का सच्चा उद्घोष .

गुरुश्री संघ के अधिनायक पद पर थे, इस नाते संघीय व्यवस्थाओ से वे अपने को परे नहीं समझते थे । संघीय निष्ठा और एकता-संगठन के

लिए जो भाष्य उन्होंने प्रस्तुत किया, वह मनोमुग्धकारी एव प्रशसनीय है। सच्चे सघ–सेवक के लिए तो यह सैद्धान्तिक सत्य है। वह तो सघ के लिए समर्पित होकर सघ के लिए जीता है और सघ के लिए ही मरता है। आज के युग–सदर्भ मे आत्म–निरीक्षण के लिए उनका विचारावेश पूर्णत सत्यता की उद्घोषणा कर रहा है—

सघ की एकता के पवित्र कार्य मे विघ्न डालना घोर पाप के बन्ध का कारण है। भगवान् ने सघ मे अनेकता उत्पन्न करना सब से बडा पाप बताया है। और सभी पाप इस पाप से छोटे हैं। चतुर्थ व्रत खडित होने पर नवीन दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है लेकिन सघ की शाति और एकता भग करके अशाति और अनैक्य फैलाने वाला—सघ को छिन्न-भिन्न करने वाला दशवें प्रायश्चित्त का अधिकारी माना गया है। इससे यह स्पष्ट है कि सघ को छिन्न–भिन्न करना घोर पाप का कारण है। जो लोग अपना बडप्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके सघ मे विग्रह उत्पन्न करते हैं, वे घोर पाप करते है। अगर आप सघ की शाति और एकता के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही, साथ ही सघ मे अशाति फैलाने वालो के हृदय का पाप भी धुल जायगा। सघ मे एकता होने पर सघ की सब बुराइया नष्ट हो जाती है[30]।

सेवा का संकल्प लें !

विचार एव क्राति से प्रेरित वाणी के धनी–मनस्वी पूज्यश्री की जन्म-शताब्दी पर एक नवीन सकल्प लें कि उनके वैचारिक सपने को मूर्तरूप देकर भक्तिसेवा का अनूठा उदाहरण उपस्थित करें जिससे कि समाज सुदृढता की ओर बढे। आप अपने कर्त्तव्य की पुकार से मुकरिये नही। मैं अपनी भावना को आचार्यश्री के शब्दो मे व्यक्त करदू कि—

भारत रूपी मानसरोवर के हसो[31]! सगठित होकर अपनी शक्ति केन्द्रित करो[32]। सघ–सेवा का बहुत बडा माहात्म्य है। यह कोई साधारण कार्य नही है। सघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थंकर गोत्र–बन्ध हो सकता है। अगर आप सघ की सेवा करेंगे तो आपका कल्याण होगा[33]।

संदर्भ – सूत्र

१ जवाहर विचारसार, अ० ६, साम्यवाद।

२. जवाहर विचारसार, अ० ६, सचयवृत्ति।

३ वही, वन ।

४ वही, धन ।

५. जवाहर विचारसार, अ० ७, आहार त्याग–अनशन ।

६ वही, उपवास ।

७ वही, अ० ८, क्रियाशील बनो ।

८ वही, वचन और कार्य ।

९ जवाहर विचारसार, अ० ९, वर्ण–व्यवस्था के बिना भारत की दुर्दशा ।

१० वही, अ० १०, आधुनिक शिक्षा और उसका दुष्परिणाम ।

११ वही, ,, ,,

१२ वही,

१३ जवाहर विचारसार, अ० १३, गौ ।

१४ वही, १५ वही ।

१६ वही, खेती ।

१७ वही, कृषि । १८ वही, चरखा ।

१९ पूज्य श्री जवाहरलाल जी म की जीवनी, सन् ३१ का दिल्ली चातुर्मास ।

२०. जवाहर विचारसार, अ० १४, स्त्री सुधार ।

२१ वही, २२. वही, २३ वही ।

२४ जवाहर विचारसार, अ० १४, स्त्री शिक्षा ।

२५ वही, २६ वही, २७ वही, २८ वही, २९ वही ।

३० जवाहर विचारसार, अ० ६, विषय सग पाप है ।

३१ वही, मध सेवा ।

३२ वही, ३३. वही ।



प्रभावक व्यक्तित्व : कल्याणक विचार

● डा० महेन्द्र भानावत

संत : सौरभ :

सत सुगध होता है । एक ऐसी सुगन्ध जो हर प्राणी को खुशनुमा बनाती है । तब कितना महक पडता है मन । आदमी कितना सुखद और स्वस्थ बन जाता है जब उसकी सारी पीडाए, दुखदर्द, कलह, चिताए और झगडे-टटे सूखे पत्तो की तरह हवा हो जाते हैं रडखड जाते हैं । यह सुगध फूलो की सुगध से भी निराली होती है । फूलो की सुगध अस्थायी, क्षणिक होती है । फूल सुगध देकर झड जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं, अपने आपको मिटा देते हैं पर सतो की सुगन्ध कभी नही मिटती, फलती, फूलती, फूटती रहती है। इस सुगन्ध का प्रभाव बडा व्यापक और गहन होता है और उतना ही इसका विस्तार, फैलाव होता है ।

सत वहता पथ :

सत वहता पथ होता है । पथ का क्या वहना, वह तो स्थिर होता है । वहती तो नदी है परन्तु खासियत उसकी है जो पथ को वहाये । रुकता पथ रोडी हो जा जाता है, गन्दगी का ढेर । सत स्वय वहता है और पथ को अपने साथ वहाता है । यह वहाव गगा का वहाव है जो अपने साथ सारे जहान का मैला-कुचैला ले जाने की क्षमता रखता है परन्तु जो स्वय निर्मल है, सत ऐसा ही होता है ।

सत . मन-आगन का बुहारनहार :

सत बुहारा होता । बुहारा जैसे हमारे घर आगन को स्वच्छ-साफ कर देता है, उसी प्रकार मनुष्य के मन-आगन की समस्त बुराइयो को सत बुहारता है । बुहारा अच्छाइया नही चाहता, सत भी अच्छाइया नही मागता । बुहारे की तरह वह भी मनुष्य की समस्त बुराइयो की भिक्षा मागता है ।

बुराइया जब बुहर जाती हैं आगन स्वत ही साफ सुथरा और आइना बन जाती है । सत इसी प्रकार मनुष्य-मन को बुहार कर उसे आइना बनाता है ताकि वह स्वय अपने आपको देखे-परखे । अपनी आत्मा को देखता हुआ वह परमात्मा को प्राप्त करे ।

सान्निध्य और प्रेरणा :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी ये तीनो थे । उनका सान्निध्य, उनकी प्रेरणा, उनके प्रवचन, उनके दर्शन, सचमुच मे एक दिव्य पुरुष की ज्योति-किरण थे, जिसने अनेकानेक मनुष्यो को सुपथ दिया, जीवन-ज्योति दी और आत्मबल-प्रकाश का वह सब कुछ दिया जिससे मनुष्य 'उत्तम मनुष्य' बन कर कइयो का आराध्य, पथ-प्रदर्शक और उन्नायक, अधिनायक बन कर एक मिसाल कायम कर सके । वे सचमुच मे जवाहर थे, हर हर थे, क्या जैन और क्या अजैन, सभी धर्मों, पथो और सप्रदायो के लोग उन्हे बडी श्रद्धापूर्वक सुनते थे, उनके उपदेशो को हृदयगम करते और वन्दना-नमस्कार करते थे । उनके प्रभावी व्यक्तित्व और कल्याणक विचारो ने कइयो को अमानवीय कुकृत्यो से बचाया ।

उनकी वाणी के प्रभाव मे आकर कई लोगो ने आत्मसमर्पण कर अपनी बुराइयो को, अपने पापो को प्रकटित किया, उनके लिये प्रायश्चित्त किया और भविष्य मे ऐसा कार्य नही करने के लिये सौगन्ध लिये । कई चोर, मीणो ने चोरिया करनी बद कर दी, लूटेरो ने लूटपाट मचाना छोड दिया, कइयो ने मदिरा-मास का त्याग किया । हमेशा के लिये कई कसाइयो ने हिंसा कर्म छोड दिया । उनके सपर्क मे आकर कई लोग जैनी बन गये । उनकी श्रद्धा, शरण और आस्था रखने वाले कई व्यक्तियो को भारी सकटो और कठिनाइयो से मुक्ति मिली, अनिष्ट की आशकाओ मे उनका बचाव हुआ और इज्जत आबरू पर आई आच, टल गई, साबित होकर उनकी प्रतिष्ठा को चार चाँद लगे । इससे लोकमन पर उनके प्रभाव का अनुमान भली प्रकार लगाया जा सकता है ।

आचार्यश्री से प्रेरणा पाकर कई व्यक्तियो ने लोक-शिक्षण का कार्य हाथ मे लिया, कइयोंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी कमाई मे से कुछ हिस्सा निकाल कर जनहित कार्य मे लगाया तथा कुछ ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपने आपको जनसेवा के लिये समर्पित कर दिया । सरकारी अथवा गैर सरकारी नौकरियो म काम करने वाले कई लोगो ने ईमानदारीपूर्वक बिना किसी रिश्वत और भ्रष्ट आचरण से सेवा कार्य करने के प्रन लिये और अपने जीवन को कंचन की तरह खरा बनाया ।

मेवाड क्षेत्र मे आदिवासी इलाके मे पंडित उदय जैन ने कानोड में एक छोटा सा स्कूल प्रारभ किया, जिसका नाम ही 'जवाहर विद्यापीठ' रखा। कोई तीस वर्ष पूर्व स्थापित यह विद्यापीठ आज एक महाविद्यालय के रूप मे उस आदिवासी क्षेत्र मे शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग बना हुआ है। 'जवाहर छात्रावास' नाम से एक छात्रवास भी यहा चलता है, जहा धार्मिक शिक्षा-दीक्षा मूलक सस्कारो मे बच्चो को ढाला पाला जाता है।

पूज्य श्री जवाहराचार्य के ही प्रेरणापरक उद्‌बोधनों से श्री चिमनलाल जी सिरोहिया मे साधु बाबो तथा फकीरों को नियमित रूप से भोजन कराने की भावना पैदा हुई जो ठेठ उनके जीवन काल तक चलती रही। उनके स्वर्गवास के बाद उनके सुपुत्र श्री झूमरलाल जी सिरोहिया ने पैंतालिस हजार रुपये की राशि धर्मार्थ निकाल कर 'झूमरलाल सिरोहिया ट्रस्ट' स्थापित किया। इस ट्रस्ट द्वारा विद्यार्थी, विधवा और वृद्धों की सहायता की जाती है।

असहाय छात्रो को छात्रवृत्ति, पुस्तकें खरीदने के लिये पैसा, विधवाओ को प्रतिमाह सहायता तथा वृद्धो के भरण पोषण की समुचित व्यवस्था के लिये नियमित रूप से प्रतिमाह दान स्वरूप राशि निकाली जाती है। उदयपुर मे श्मशान घाट के पास गौशाला बनाने मे भी ट्रस्ट का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। उदयपुर के पास सीसारमा मे बोकडशाला के लिये हाल ही मे इस ट्रस्ट ने सोलह बीघा जमीन खरीद कर सघ को दी है जहा अमरये बकरो को पाला जायेगा। इस ट्रस्ट द्वारा जैन, अजैन, हरिजन, मुसलमान आदि ऐसे प्रत्येक छात्र को छात्रवृत्ति दी जाती है जो गरीब और निस्सहाय होता है।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की ही प्रबल प्रभावना से उदयपुर के श्री गणेशलाल जी बब ने राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद मरीजो की सेवा का व्रत लिया। तदनुसार श्री बब उदयपुर के जनाना तथा मरदाना दोनो अस्पतालो मे जाकर प्रतिदिन मरीजो की देख भाल, उनकी सेवा-सुश्रुपा, गरीबो के लिये दवाई का प्रबन्ध, भोजन आदि की व्यवस्था तथा उसकी अन्यान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ये नियमित रूप से प्रतिदिन अस्पताल जाकर हर वार्ड के हर मरीज को देखते भालते हैं। मरीजो की सेवा का, नि स्वार्थ सेवा का इससे बडा अनुकरणीय उदाहरण शायद ही कही मिले।

इसी प्रकार का एक सेवा-कार्य माडलगढ मे श्री मोहनलालजी नागोरी करते आ रहे हैं। श्री नागोरीजी राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त हैं परन्तु कई बरसो से माडलगढ़ के ऐसे निराश्रित, गरीब और असहाय लोगो को इनका

बहुत बड़ा संबल है जो बीमार रहते हैं और दवादारू की स्थिति मे नही होते हैं । प्रात काल ये घूमने के बहाने ऐसे लोगो के घरो मे चले जाते है और जो लोग बीमार होते हैं, उन्हें सम्बन्धित दवा गोलिया, जो प्राय अपनी जेब मे रखे रहते हैं, दे देते हैं । जिनके पास खाने की व्यवस्था नही होती है, उन्हे अपने घर से दलिया, खिचडी पहुचवाते हैं और जब तक वे पूर्ण स्वस्थ नही हो जाते, उनकी लगातार देख भाल करते रहते हैं । कई जगह धर्मार्थ औषधालय भी चल रहे हैं ।

इससे यह स्पष्ट है कि आचार्यश्री मे मानव-कल्याण की भावना कितने गहरे रूप मे गहराई हुई थी । आज इस बात की महती आवश्यकता है कि आचार्यश्री की प्रेरक घटनाओ और जीवन प्रसगो को अधिकाधिक रूप मे लोगो के पास पहुचायें और उनसे प्रेरणा पाकर समाज के विविध क्षेत्रो मे जो लोग एकात निष्ठा-भाव मे कल्याणकार्यों मे जुटे हुए हैं, उन्हें भी समाज के समक्ष उजागर किया जाय ताकि अन्य लोगो पर भी उनका व्यापक असर हो और उन्हे भी ऐसे कार्य करने की प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त हो ।

मनुष्यो के लिये अगर मृग निरर्थक है तो मृगो के लिये क्या मनुष्य निरर्थक नही है ? निरर्थकता और सार्थकता की कसौटी मनुष्य का स्वार्थ होना उचित नही है । मानवीय स्वार्थ की कसौटी पर किसी की निरर्थकता का निर्णय नही किया जा सकता । मृग प्रकृति की शोभा हैं । उन्हे जीवित रहने का उतना ही अधिकार है जितना मनुष्य को । क्या समग्र विश्व का पट्टा किसी ने मनुष्य-जाति के नाम लिख दिया ? अगर नही, तो जङ्गली पशुओ को सुख-चैन से क्यो न रहने दिया जाय ?

भारत का सामाजिक–राजनीतिक पुनर्जागरण का काल और आचार्यश्री की भूमिका

● श्री जवाहरलाल मूणोत

साधु संस्था और परम्परा :

आम तौर पर, सस्थागत साधु–सत, परम्परा और गतानुगति के पुजारी होते हैं। अपने आस–पास की घटनाए उन्हें आलोडित नही करती। अपना परिवेश उन्हें परेशान नही करता। वे जिन मूल्यो और उपदेशो को शाश्वत समझते है, उन्ही के घेरे मे अपने आपको वन्द कर रखना उन्हे सुहाता है। उनके लिये, अपने युग विशेष की सामयिकता कोई कीमत नही रखती। और यह वात, अमूमन सभी प्राचीन और परम्परागत सस्थागत साधुओ और सन्तो पर लागू होती है।

सामयिक समस्याओ से उदासीनता के कारण :

सामयिक समस्याओ से दूर भागने के पीछे शायद अनेक कारण हो। हो सकता है, धर्मगुरु को, सामयिक समस्या को समझने मे कठिनाई होती हो। यह डर भी हो सकता है कि कही वह आधुनिक समस्या की मीमासा मे कोई भद्दी भूल न कर वैठे और इस तरह, अपने धर्म का उपहास कर डाले। उसकी उदासीनता इसलिये भी हो सकती है क्योकि वह पुरातन और प्राचीन मे ही अपने आपको सुरक्षित पाता है और सामयिक प्रश्नो मे अपने आपको असहाय पाता है। कारण कुछ भी हो, सचाई यह जरूर है कि अधिकतर, हमारे धर्मगुरु (फिर वे चाहें किसी भी प्राचीन धर्म के हो), धार्मिक प्रमाण ग्रन्थो के चिन्तन, मनन और उन्ही के उपदेशो तक अपने आपको सीमित रखते हैं। किसी भी प्रकार का मौलिक चिन्तन हो भी तो परिधि वही प्राचीन

धर्मग्रन्थो की ही रहती है। उनको सामयिकता की कसौटी पर कसा नहीं जाता।

इस भूमिका मे, आइये, हम स्वय अपने जैन धर्म की स्थिति को याद करें।

हिन्दुस्तान ने बीसवी शताब्दी मे कदम रखा। आवागमन के नये साधनो और उद्योगों के उत्पादनो के नये उपादानो ने देश की आर्थिक स्थिति को नया कलेवर देना शुरु किया। आधुनिक शिक्षा और विज्ञान–ज्ञान ने जनता के एक वर्ग विशेष को, चेतना का नया आलम्बन दिया, भारत मे सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनो की जडे फैलने लगीं। और जागरण के इस अनुपम वातावरण मे भारत के धार्मिक सत्पुरुषो और साधुओं ने अपनी दृष्टि के आयाम बढाये, उन्हे केवल धार्मिक परम्पराए और धर्म ग्रन्थ ही नही अपने आस–पास की जनता, उसकी समस्याए और उसके जीवन के प्रश्न परेशान करने लगे।

दृष्टि का नया आयाम :

लेकिन कुछ विरले क्रान्तदर्शी साधु ही साहस से परम्परागत जजीर को तोड पाते हैं। बहुत कम होते हैं वे निडर सत जो लोकनिन्दा और नई बात को कहने की स्वाभाविक झिझक को भूल पाते हैं। आचार्यश्री जवाहर-लालजी महाराज साहब, उन इने–गिने युग–द्रष्टाओ मे से थे जिनके लिये समाज की सामयिकता, सब से महत्त्वपूर्ण बात थी, धर्म और उसके उपदेश इसीलिये थे कि उनके माध्यम से जनता आज की समस्याओ के जवाब पा सके। जिस काल मे श्री जवाहरलालजी महाराज साहब ने इन सामयिक समस्याओ की बात कहने की हिम्मत की, उन दिनो मे जैन साधु के लिये यह सब बिलकुल अप्रत्याशित और अव्यावहारिक था।

याद करिये, आज से ६०–७० बरसो के पहिले के दिनो को। जैन समाज की हालत पर नजर डालिये। विशेष रूप से राजस्थान के जैन समाज को याद करिये। पर्दा एक ऐसी परम्परा दिखलाई पडती थी जो हिमालय जैसी अडिग और कठोर हो और जिस पर कोई चोट, कुछ भी कारगर न हो। जैन साधुओं को इस पर्दे से प्रतिदिन सरोकार पडता था, हर रोज वे अपने सामने अपने श्रावक वर्ग की अनगिनत महिलाओ को इस बन्धन मे बधी देखते थे, परन्तु यह बन्धन उन्हे कोई पीडा नही देता था। इस सामाजिक कुरीति से कोई सम्बन्ध नही था, जैन श्रमणो का।

सामयिक प्रश्नों का हल : आत्मयुद्ध की पहली लड़ाई :

श्री जवाहरलालजी महाराज ने भी उस काल का कठोर पर्दा देखा और उनकी वाणी फटकार की चाबुक बन गई। उनके चातुर्मास, उनके सभाषण, उनके व्याख्यान, इस पर्दे की निंदा करने, इसे दूर करने के लिये ही होने लगे। उनके लिये, अपने काल, अपने देश की कुरीति, आत्म-युद्ध की पहिली बड़ी लड़ाई थी।

और बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, वे भी तो आम-फहम थे। हमारे श्रावक मानते थे, इन गृहस्थी की बातो से महाराज साहब का क्या सरोकार ? वे भले और उनके हाथो मे प्राचीन धर्मग्रन्थ भले, जिनमे से तीर्थंकरो और उनके काल के राजा-महाराजाओ की कथाए सुनाई जाती थी। परन्तु जवाहरलालजी महाराज साहब के लिये पहिला धर्म था, उनके सामने उपस्थित जन समुदाय को सच्ची शिक्षा देने का। और सामयिक प्रश्नो से भाग जाने से तो यह सही शिक्षा मिलने वाली नही थी। अत हमारे आचार्यश्री, तेज तलवार की धार की तरह, इन सामाजिक कुरीतियो से लड़ने चले और उन्होने सैकडो नौजवानो को इन बुराइयो का सामना करने की अद्भुत प्रेरणा दी।

लेकिन ये तो फिर भी बहुत नीचे स्तर की सामाजिक बुराइया थी। और फिर सारे देश मे तो ये कुरीतिया थीं भी नही। अनेक प्रान्तो-प्रदेशो मे न पर्दा था और न ही बाल-विवाह आदि। परन्तु कुछ कोढ जरूर थे जो सारे देश के समाज पर फैल रहे थे, जैसे अस्पृश्यता-अछूत समस्या। साधारण जैन जगत् तब यह मान कर चलता था कि इस जटिल प्रश्न पर भला महाराज साहब क्यो बोलने लगे ? धर्म के मूल मे क्या है, कौन जाने परन्तु आम व्यवहार मे तो जैन समाज मे भी, ऊच-नीच, छुआछूत और अस्पृश्य समस्या गहरी घुसी थी (और आज भी मौजूद है)। लेकिन क्रान्तिकारी साधु के लिये वर्जित क्षेत्र तो होते नही। १९२५ मे, १९२६ और १९२७ मे यानि उन दिनो मे जब अछूतो के बारे मे बोलना बहुत खतरनाक माना जाता था और स्वय महात्मा गाधी को स्पृश्य हिन्दूओ की गालिया और पत्थरो का सामना करना पडता था, आचार्यश्री जवाहरलाल जी ने बार बार इस गर्हित परम्परा पर प्रहार किया और समाज से अछूत अस्पृश्य की समस्या को मानवीय आधार पर समाप्त करने की जोरदार माग की।

स्वावलम्बन और स्वदेशीपन :

यह याद रखना बहुत आवश्यक है कि श्री आचार्यश्री ने अपनेआप

को इन्ही सामाजिक प्रश्नो तक सीमित नही रखा । उन्होने समाज की मूलभूत आर्थिक समस्याओ पर भी अपनी उगली रखी । पहिला सवाल था—कृपि कार्य का । देश का सब मे बडा और सब से अधिक गौरवशाली उद्योग-खेती । परन्तु जैन धर्म और जैन समाज की तथाकथित समझ से तो यह धधा, यह पेशा, विलकुल त्याज्य और वर्जित है । और भला इस असत्य और वेवुनियाद धारणा के साथ, आचार्यश्री की विचारधारा मेल क्यो खाने लगी ? उन्होने वहुत साहस के साथ, इस भ्रामक धारणा को निराधार वतलाया और कृपि कार्य, कृपि कर्म को, उत्तम आर्थिक व्यवसाय वतलाया । अपने आप में, यह एक असाधारण और अत्यन्त क्रान्तिकारी कदम था ।

यही वात खादी और स्वदेशी पर लागू होती है । अगर गहराई से अनुशीलन किया जाय तो यह मानने के लिये अनेक कारण मिलेंगे कि श्री जवाहरलाल जी महाराज, परोक्ष रूप मे स्वदेशी राजनीति और स्वदेशी आन्दोलन के वहुत प्रवल और सशक्त समर्थक थे । वे जहा जाते, खादी के गुणगान करते, खादी के व्यवहार के लिये श्रावको पर दवाव डालते और वार-वार स्वदेशी के व्रत को अगीकार करने के लिये उपदेश देते । उनके लिये स्वदेशी, सही सामयिक जैन धर्म था जो अहिसा और अपरिग्रह का युग-सगम था ।

और चू की श्री जवाहरलाल जी महाराज साहव के लिये अछूतोद्धार, खादी, स्वदेशी के प्रश्न समस्त भारत और विशेप रूप से जैन समाज के लिये परमावश्यक सवाल थे, यह प्रकट है कि उनका, महात्मा गाधी और उनके रचनात्मक कार्यकर्ताओ के लिये अपार आदर था । अपने अनेक व्याख्यानो मे उन्होंने महात्मा गाधी के कामकाज की दिल खोल कर प्रशसा की है । अछूतो के लिये अपना जीवन देने वाले श्री ठक्कर वापा, आचार्यश्री की सभाओं मे आते और श्री महाराज साहव ठक्कर वापा को सच्चे जैनी, सच्चे श्रावक का आदर्श सिद्ध करते ।

राष्ट्रधर्म की प्रतिष्ठा :

केवल ये गुण ही आचार्यश्री की स्मृति को सदैव उज्ज्वल रखने के लिये वहुत हैं । परन्तु आचार्यश्री केवल सामयिक समस्या को उठाने मे ही सिद्धहस्त नही थे, उनका इतना ही वडा गुण था, उस सामयिक प्रश्न को अपनी अनूठी शैली मे, समस्त श्रोताओ, समस्त जैन श्रावक-श्राविकाओ के लिये एक महान् धार्मिक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न वना देना । आचार्यश्री के व्याख्यान, कोई नीरस उपदेशक के प्रवचन नहीं थे । इन्ही आम लोगो के और स्वदेश के

प्रमुख राष्ट्रीय प्रश्नो को, आचार्यश्री प्राचीन परम्पराओ, कथाओं और धर्म की खूबियो मे इस प्रकार पिरो देते थे कि सुनने वालो के लिये, पर्दा हो या अछूत का सवाल, खादी हो, चाहे बाल विवाह का प्रश्न–गहन धार्मिक प्रश्न बन जाते थे जिनके उत्तर पाने के लिये श्रोता का मानसिक मन्थन शुरु हो जाता था।

यह आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज की सफलता की बहुत बडी उपलब्धि थी और इसी उपलब्धि के फलस्वरूप, अनेक कमजोरियो और निर्बलताओ के बावजूद, हमारा जैन समाज, राष्ट्रीय पुनर्जागरण और राष्ट्रीय पुनरुत्थान के महान कार्य मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सका।

हम न भूलें कि भारत की लम्बी आजादी की लडाई की यात्रा मे अनेक जैन युवक और युवतियो ने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। अनेक अज्ञात और ज्ञात युवक–युवतियो ने पर्दा छोडा, सामाजिक कुरीतियो को तोडा और दूसरो को तोडने की प्रेरणा दी।

जैन समाज ने खादी और स्वदेशी का व्रत लिया और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के सग्राम मे जेल गये, जुर्माने दिये, घर–बार कुर्क करवाये और कठिन यातनाए सही। स्वदेशी का व्रत लेने वाले और अपनी सस्कृति और अपनी भाषा का गौरव धारण करने वाले बहादुर, समाज मे पैदा हुए। क्या हम यह भूल सकते हैं कि इस समस्त जागरण और हलचल मे, आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब का बहुत प्रमुख और विशिष्ट योगदान था।

सही श्रद्धांजलि :

परन्तु केवल स्व आचार्यश्री के यशोगान से ही, अपने कर्तव्य से हम मुक्त नही हो सकते। आज भी इसी बात की भारी आवश्यकता है कि हमारे पूजनीय श्रमणगण, सामयिक समस्याओ, समाज की आधुनिक जरूरतो के प्रति जागरूक हो और उनकी ओर, उदासीन न रह कर, दृढतापूर्वक, इन विभिन्न प्रश्नो के प्रति समाज मे जागृति–निर्माण मे सहायक हो और उनके सही हल ढूढने मे समाज की मदद करें। आचार्यश्री की स्मृति मे यही सही श्रद्धा-जलि हो सकेगी।



राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना के उन्नायक

● डॉ० सागरमल जैन

क्रान्तिकारी जीवन-धर्म :

जैनधर्म गतिशील (Dynamic) एव क्रान्तिकारी धर्म रहा है और इसीलिये वह आज भी एक जीवित धर्म है। युग की आवश्यकता के अनुरूप चिन्तन और आचार-नियमो को नयी दिशा देने मे वह सदैव जागृत रहा है और यथास्थितिवाद के विरुद्ध उसने सदैव ही क्रान्ति का बिगुल बजाया है। जब भी धर्म की मूलात्मा को रूढियो और परम्पराओ ने दबोचने का प्रयत्न किया जैन तीर्थंकरो और जैन आचार्यों ने उसे उन सडी-गली परम्पराओ से मुक्ति दिलाकर नवचेतना दी है। ऋषभ, अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ ने अपने युग की मान्यताओ और रूढियो के विरुद्ध क्रान्ति का स्वर मुखरित कर धर्म को नयी दिशा और नया जीवन दिया था। महावीर ने तो न केवल यज्ञयाग, वर्ण-व्यवस्था आदि की लोकरूढियो को झकझोरा था अपितु स्वय जैन धारा मे भी क्रान्ति का नया स्वर दिया था। जैनधारा के परवर्ती चिन्तक और आचार्य भी युग की आवश्यकता के पारखी रहे हैं। उन्होने काल प्रवाह मे निस्सार हो गई रूढियो को तोडा है और आचार विधियो की युग की आवश्यकता के अनुरूप नयी व्याख्याए दी हैं। इस सम्बन्ध मे आचार्य हरिभद्र, क्रान्तिवीर लोकाशाह, पूज्य धर्मदासजी और ऋषि लवजी के योगदानो को भी नही भुलाया जा सकता है।

ज्योतिर्धर नक्षत्र :

उन्हीं क्रान्तिधरो की परम्परा मे युगपुरुष आचार्य श्री जवाहर भी एक ज्योतिर्धर नक्षत्र थे। सम्भवत समकालीन स्था० जैन परम्परा के

आचार्यों मे वे एक ऐसे आचार्य थे, जिन्होंने युग की आवश्यकता को समझा था और हिंसा-अहिंसा, अल्प आरम्भ और महारम्भ आदि की युगानुकूल नयी व्याख्याए प्रस्तुत कर समाज की रूढिवादिता को झकझोर दिया था। वे राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के उन्नायक तथा शोषण, उत्पीडन एव विलासितापूर्ण जीवन के प्रखर आलोचक थे। वह युग था, जब देश गुलामी की जजीरो से जकडा विलासी पाश्चात्य सभ्यता की ओर अभिमुख होता जा रहा था, जनता की सामाजिक एव राष्ट्रीय चेतना मर सी गई थी। धर्म के नाम पर प्रत्यक्ष की अल्पहिंसा की अपेक्षा परोक्ष की महाहिंसा अधिक उपादेय बन गई थी। स्वय हिंसा नही करना, मात्र इसे ही अहिंसा का प्राण समझ लिया गया, फिर चाहे उस प्रत्यक्ष की अल्पहिंसा से बचने के लिये परोक्ष रूप में महाहिंसा का अनुमोदन ही क्यो नही होता हो। स्वय चक्की चलाकर आटा पीसने की अपेक्षा मिलो का पिसा-पिसाया आटा खरीद लेना अहिंसक कार्य माना जाता था, ब्याज के धन्धे को निर्दोष एव अल्पारम्भ और कृषि के धधे को हिंसायुक्त एव महारम्भ कहा जाता था। अत्याचार और उत्पीडन का प्रतिरोध करने की अपेक्षा उसे सहन कर लेना ही वरेण्य समझ लिया गया था।

नई दृष्टि · नई दिशा :

आचार्य श्री ने इन सब भ्रान्त मान्यताओ की प्रखर आलोचना की और राष्ट्र और समाज को एक नयी दृष्टि दी। सर्व प्रथम उन्होंने बताया कि धर्म निरा वैयक्तिक नही है। धर्म समाज सापेक्ष है और समाज धर्म सापेक्ष है। धर्मविहीन समाज और समाजविहीन धर्म दोनो ही व्यक्ति के कल्याण मे सहायक नही हो सकते हैं। वे कहते थे कि 'जब तक मनुष्य लौकिक (सामाजिक) धर्मों का पालन करने मे दृढ नही होता तब तक वह लोकोत्तर (आध्यात्मिक) धर्मों का पालन भी ठीक ठीक नही कर सकता, क्योंकि लौकिक धर्म (सामाजिक धर्म) जनता का आचरण सुधारने वाले हैं।' उनकी दृष्टि मे जिस प्रकार अच्छी फसल प्राप्त करने के लिये भूमि को सुधारना आवश्यक है, उसी प्रकार आध्यात्मिकता की फसल प्राप्त करने के लिये सामाजिकता की भूमि का सुधार करना आवश्यक है।

व्यक्ति समाज मे रहता है, समाज मे जीता है, अत समाज की उपेक्षा करके अध्यात्म की बात करना एक कपोल कल्पना है। उनका आध्यात्म, समाज की उपेक्षा करने के लिये नही अपितु समाज को स्वस्थ बनाने के लिये था। 'समवायाग' सूत्र में वर्णित ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, कुल धर्म,

सघ धर्म आदि की उन्होंने जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, वे इस बात का सबल प्रमाण हैं कि आचार्यश्री की दृष्टि समाजसापेक्ष थी। उन्होने भारतीय समाज और जैन समाज की दुखती हुई रगो को पहचाना था और उस दिशा मे समाज को एक युगबोध दिया था। उनके ही शब्दो मे "ससार मे बैठे हुए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह समष्टि (समाज) को अपनी नजर मे रखकर उसे हानि पहुचे ऐसा बुरा काम न करे। जो मनुष्य समष्टि (समाज) को अपनी दृष्टि मे रखकर कार्य नही करता, वह नीतिज्ञ नही कहा जा सकता।"

धर्म की समाज-सापेक्षता :

वे स्पष्ट रूप से यह मानते थे कि वह धर्म जो समष्टि (समाज) के कल्याण की उपेक्षा करके व्यष्टि (व्यक्ति) के कल्याण की बात करता है, एक बिना नीव के भवन की तरह है। उन लोगो की विचार धारा पर, जो कि धर्म को समाज-निरपेक्ष मानते हैं, चोट करते हुए वे कहते थे कि 'कई लोग कहते हैं कि ये (समाज और राष्ट्र की बातें) सासारिक बाते हैं किन्तु यह नही सोचते कि जितनी धर्म की बाते हैं, वे सब ससार के ही विचार से की जाती है, जिसमे ससार का कल्याण हो उसे ही धर्म की बात और जिससे ससार का पतन हो उसे पाप की बात कहते हैं। समाज और राष्ट्र आध्यात्मिक साधना की आधार भूमि हैं, उनकी अवहेलना करके अध्यात्म की दिशा मे आगे बढना सम्भव नही है। व्यक्ति को आध्यात्मिकता की दिशा मे उन्मुख करने के लिये एक सस्कारी समाज एव राष्ट्र का होना पहली अनिवार्यता है, क्योंकि व्यक्ति को जो कुछ सस्कार मिलते हैं, वे सब समाज से मिलते हैं।

साधक व्यक्ति समाज से पूर्णरूपेण निरपेक्ष नही हो सकता है। समाज का सुधार एव कल्याण व्यक्ति का प्राथमिक कर्तव्य है। आचार्यश्री कहते थे कि जब केवलज्ञान (आध्यात्मिक साधन की पूर्णता) प्राप्त कर लेने के पश्चात् केवली भगवान भी जगत् के कल्याण के लिये उपदेश देते हैं तो साधारण ससारी मनुष्य का ससार मे बैठे हुए यह कहना कि 'हमे (समाज या) राष्ट्र से क्या मतलब ?' कितनी भारी कृतघ्नता है। केवल सूत्र-चारित्र धर्म (आत्मिक धर्म) को मानना और राष्ट्र (या समाज) धर्म को न मानना वैसा ही है जैसा मकान की नीव खोदकर या वृक्ष की जड काटकर उसके सुरक्षित रहने की आशा करना। सूत्र-चारित्र धर्म मकान या वृक्ष के फल के समान है और राष्ट्र (या समाज) धर्म मकान की नीव या वृक्ष की जड के

समान है।" जो लोग ग्राम धर्म, नगर धर्म एव राष्ट्र धर्म की अवहेलना करते हैं वे आध्यात्मिक साधना के लिये योग्य आधार भूमि ही प्रस्तुत नही कर पाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यश्री सामाजिक चेतना को धार्मिकता के परिप्रेक्ष्य मे और धर्म को सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य मे विकसित करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होने निर्जीव सामाजिक रूढियो एव परम्पराओ पर चोट की एव एक स्वस्थ समाज के निर्माण की दिशा मे उपासक वर्ग को उद्बोधित किया।

बेमेल विवाह, सामाजिक कार्यों मे अपव्यय और प्रदर्शन, पर्दा प्रथा, मृत्युभोज, शोकप्रदर्शन जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियो की उन्होने न केवल खुलकर आलोचना की अपितु उपासकवर्ग को उनमे भागीदार नही बनने की प्रतिज्ञाएँ भी दिलवाई। वे अपने प्रवचनो मे अक्सर इन समस्याओ को उठाते थे, इनके दुष्परिणामो का मार्मिक चित्रण करते थे और श्रोताओ को इनमे भागीदार नही बनने के लिए प्रेरित करते थे। इस प्रकार वे समाज को नयी दिशा देने वाले एव सामाजिक चेतना के उन्नायक एक युगद्रष्टा और युगस्रष्टा आचार्य थे। आज जैन समाज के रूढिग्रस्त मारवाडी वर्ग मे जो कुछ सामाजिक एव राष्ट्रीय चैतन्यता हमे परिलक्षित होती है, उसके श्रेय के बहुत कुछ भागीदार आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० ही हैं।

राष्ट्रीय चेतना के वाहक

उन्होने न केवल सामाजिक चेतना को जागृत किया अपितु राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने वालो मे भी वे अग्रणी थे। मुनि-मर्यादा मे रहते हुए भी उन्होंने देश के स्वतत्रता सग्राम मे जो योगदान दिया, वह अभूतपूर्व है। आचार्यश्री के प्रवचन जनता मे राष्ट्र-चेतना फूकने वाले होते थे। वे अपने प्रवचनो मे गाधीजी के सत्याग्रह का खुल कर समर्थन करते थे। 'स्वदेशी' आदोलन के वे एक प्रबल समर्थक एव प्रचारक थे। स्वय खादी पहनते थे और लोगो को खादी पहिनने की प्रतिज्ञा दिलवाते थे। 'मिल के वस्त्र और जैन धर्म' पर दिये गये उनके प्रवचनो की एक पुस्तक भी स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हुई थी। 'विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार' उनके प्रवचनो का एक मुख्य विषय होता था। वे कहते थे 'यूरोपियन जाति मे अपने राष्ट्र के प्रति कैसी भक्ति है, वे हजारो मील दूर रहकर भी अपने देश की बनी वस्तु खरीदते हैं और भारत के लोग विदेश का बना कपडा पहनते हैं, यह भारत को अधिक पतन की ओर ले जाना नही तो और क्या है ? उन वस्त्रो को काम

मे लेना क्या धर्मभ्रष्टता नही है ? जिस देश के मनुष्य अपने देश और देश की बनी हुई वस्तुओ की कदर नही करते, उस देश के मनुष्यो की कदर दूसरे देशो मे भी नही रहती है।' वे यह मानते थे 'आज यहा की शिक्षा-प्रणाली ही कुछ ऐसी दूषित है कि भारतीयो मे भारतीय-भाव ही नही रह जाता है, जो विदेशी देश को अपने पैरो तले दबाये रखना चाहते है वे भला उस देश के लोगो को अच्छी शिक्षा क्यो देने लगे ? किन्तु जब शिक्षा मे राष्ट्रीय भाव भरे रहते हैं, तभी राष्ट्र का सिर ऊँचा रहता है।'

वे गरीबो के शोषण के भी विरोधी थे। वे स्पष्ट रूप से कहते थे कि गरीबों की रोजी मारकर धन बढा तो उस धन से क्या लाभ हो सकता है ? यदि कोई मनुष्य हजारो घर के दीपक बुझाकर अपने घर मे मशाल जलावे तो यह उचित नही। मैं पूछता हूँ कि मिलों वालो ने जो धन कमाया है, वह क्या भारत का नही है ? तो इसका क्या अर्थ हुआ ? यही न कि जो खून सारे शरीर मे दौडता था वह एकत्रित होकर एक स्थान पर जम गया या एक पैर तो खम्भे के समान मोटा हो गया और दूसरा बेंत की तरह पतला। तो क्या यह सुन्दर कहा जा सकता है ? लाखो मनुष्यो की आय नष्ट करके केवल अपनी आमदनी बढा लेने को कोई नीतियुक्त कार्य नही कह सकता, (ऐसा) धन, धन नही बल्कि गरीबो का स्वत्व हरण है।"

धर्म सामाजिक हो, व्यक्ति धार्मिक हो

सक्षेप मे वे एक ऐसे क्रान्तिकारी आचार्य थे, जिन्होने धर्म का सम्बन्ध उस सबसे जोडा था जिसमे हम जीवन जीते हैं। धर्म और व्यावहारिक जीवन की खाई को पाट कर उन्होंने समाज को नई दिशा दी। उनकी दृष्टि मे धर्म का सही रगमच धर्मस्थान नही, अपितु जीवन का कर्मक्षेत्र है। आज उनकी जन्मशती पर केवल उनका नाम स्मरण पर्याप्त नही है अपितु धर्म को समाज और जीवन से जोडकर एक नये समाज और नये मानव की सृष्टि करना है। आज की आवश्यकता है, धर्म सामाजिक हो और व्यक्ति धार्मिक हो।[१]

---

१ इस लेख के सभी उद्धरण आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० की 'धर्म व्याख्या' नामक पुस्तक से लिये गये हैं।

आत्मधर्मी आचार्य की राष्ट्रधर्मी भूमिका

● श्री इन्दरराज बैद

मानव जाति को आत्मोद्धार के पथ पर ले चलने वाले सतो की सुदीर्घ परम्परा मे कुछ ऐसे महापुरुष भी हुए हैं जिन्होने आत्मोद्धार के साथ-साथ राष्ट्रोद्धार का पथ भी प्रशस्त किया है और मातृभूमि के प्रति लोगो को उनके कर्त्तव्यो और दायित्वो का भान कराके उन्हे बलिदान की वीर भावना से प्रेरित भी किया है । ऐसे महान् व्यक्तित्व को धारण करने वाले विलक्षण साधु पुरुषो मे दो नाम स्वत ही उभर कर आते है और वे हैं स्वामी विवेकानद और अचार्यश्री जवाहरलाल । सनातन धर्म और श्रमण धर्म के प्रचारक के रूप मे तो इन दोनो सत पुरुषो ने अपनी कीर्ति अर्जित की ही, राष्ट्रीयता का भावोद्बोधन करके एक व्यापक राष्ट्रधर्म की आधारशिला भी रखी । सचमुच भारत की धर्मप्राण और राष्ट्रप्रेमी जनता के हृदय मे इन दोनो साधु पुरुषो के व्यक्तित्व का तेज सदैव जगमगाता रहेगा ।

जीवन · सघर्ष और उत्कर्ष :

आचार्यश्री जवाहरलाल जी का जन्म विक्रम सवत् १९३२ की कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को मालव प्रदेश के थादला नामक हरे-भरे रमणीय क्षेत्र मे हुआ था । जन्मस्थली की यह समृद्धि और रमणीयता ही आगे चलकर उनके जीवन की आध्यात्मिक समृद्धि और सात्विक रमणीयता के रूप मे प्रकट हुई थी । ओसवाल वशोत्पन्न कवाड गोत्रीय श्री जवाहर की माता का नाम श्री नाथीबाई और पिता का नाम श्री जीवराज था । हैजाग्रस्त होकर मा ने अपने पुत्र का साथ जल्दी ही छोड दिया । जवाहर उस समय केवल दो वर्ष के बालक थे । मा का यह बिछोह उनके जीवन की अत्यत करुणापूर्ण दुर्घटना

थी, जिसने जवाहर के मानस का इस सीमा तक मथन किया कि उसमे आगे चलकर समस्त मातृरूपिणी स्त्री-जाति के प्रति निश्छल भक्ति की लहरें उच्छलित होती रही। पाच वर्ष की अवस्था तक पहुचते-पहुचते उनके पिता भी चल बसे। मातृपितृहीन वालक को उसके मामा श्री मूलचन्द घोका ने आश्रय दिया। फिर अध्ययन का क्रम आरभ हुआ, व्यापार का सिलसिला भी चला। और फिर तेरह वर्ष की आयु मे मामा का भी स्वर्गवास! अपने आत्मीय जनों की मृत्यु का दौर कुछ इस तरह चला कि जवाहर के मन मे जीवन और मृत्यु का रहस्य विजली की तरह कौंधना शुरु हो गया। जीवन की क्षणभगुरता के प्रत्यक्षदर्शी जवाहर के मन मे एक शुभ सकल्प ने जन्म लिया और अतत उन्होने विक्रम सवत् १९४८ की मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को १६ वर्ष की अल्प आयु मे पूज्य श्री हुक्मीचद जी महाराज की परम्परा मे दीक्षित होकर एक नये तेजस्वी जीवन का शुभारभ किया। लगभग अट्ठाईस वर्षों के मुनि जीवन के बाद जवाहर आचार्य घोषित किये गये। उसके बाद के दो दशक उनके साधु जीवन की प्रखरता के दशक थे। सन् १९४३ की १० जुलाई को उन्होने सथारापूर्वक अपनी भौतिक देह त्याग दी। इस प्रकार वे लगभग ५० वरसो तक भारत की अध्यात्मनिष्ठ जनता की चेतना को जगाते रहे।

मातृभूमि-स्तवन

आचार्य श्री जवाहरलाल जी विरले सत थे, जिन्होंने घर-बार, धन-दौलत, रिश्ते-नाते सब कुछ छोडकर भी जननी जन्मभूमि की महिमामयी मिट्टी से कभी नाता नही तोडा। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी, की उदात्त भावना को अपने मन-वचन कर्म के द्वारा चरितार्थ करते हुए उन्होंने कहा—'हम लोगो को जन्म देने वाली, पालपोस कर वडा करने वाली माता तो माता है ही, मगर अपने पेट मे से पानी निकालकर पिलाने-वाली, अपने उदर मे से अन्न निकाल कर देने वाली स्वय वस्त्रहीन रहकर हमे वस्त्र देने वाली और माता की भी माता अपनी मातृभूमि है।' मातृभूमि की महिमा का गान करते हुए वे अपने शिष्यों को कहा करते थे कि मातृभूमि के प्रति कर्तव्य निर्धारित करना गृहस्थ के लिए ही नही, साधु के लिए भी आवश्यक है। मातृभूमि तो गृहस्थो और सन्यासियो दोनो के लिए ही समान रूप से वदनीय है। उन्होंने उस मान्यता का घोर विरोध किया जो साधुत्व को देश की सीमा से परे खीच ले जाती है। यह कथित उदारता या मानवेतर आदर्श उन्हें कभी स्वीकार्य नहीं हुआ। राष्ट्रभक्ति को दुनियादारी का अग मानने वालो को

लताडते हुए उन्होने कहा कि ऐसे लोग आत्मधर्म की ओट मे राष्ट्र के उपकार से विमुख रहते हैं । राष्ट्रधर्म की उपेक्षा करके राष्ट्र का कोई भी धर्म, चाहे वह आत्मधर्म ही क्यो न हो, अपनी पूर्णता का दावा नही कर सकता ।

संस्कृति-प्रेम और स्वातंत्र्य-निष्ठा :

भारत की भूमि से उन्हे जितना प्रेम था, उतना ही आदर उनके मन मे यहा की सस्कृति के प्रति भी था । वे भारत को विश्व सस्कृति का प्रतिष्ठापक मानते थे, उसे आध्यात्मिक गुरु मानते थे । ऐसे महान् देश की पराधीन जनता मे उन्होने आध्यात्मिक और सास्कृतिक दरिद्रता के उभरते हुए लक्षण देखे । उन्होने देखा कि 'जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सबको सभ्यता सिखाने वाला था, आज वह इतना दीन-हीन हो गया है कि आध्यात्मिक विद्या की पुस्तकें जर्मनी से मगाता है । युद्ध सामग्री के लिए अमेरिका के प्रति याचक बनता है, नीति-धर्म की पुस्तको के लिए इगलैड के सामने हाथ पसारता है । और तो और सूई जैसी तुच्छ चीज के लिए भी वह विदेशियो का मुह ताकता है । इसका क्या कारण है ?' उन्होने यह अनुभव किया कि जब तक परतत्रता की शृखलाओ को तोडने के लिए देश तैयार नही होगा, तब तक उसके जीवन मे उभरने वाली हीन ग्रथियो का निग्रथन भी सभव नही हो पाएगा । अत अपनी सीमा मे अपने समस्त ओज और तेज के साथ उन्होने अपने अनुयायियो को उनके परावलवन के लिए धिक्कारा और फटकारा । पारतत्र्य की कलुषित छाया से मुक्त होने के लिए उन्होंने समाज का आह्वान किया । उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए उत्सर्ग की आवश्यकता होती है । स्वतत्रता का पथ फूलो से नही, काटो से आकीर्ण है ।' इस प्रकार त्याग, स्वावलबन, पुरुषार्थ और बलिदान का पाठ पढाकर उन्होने जन-मानस मे स्वातत्र्य भाव की रमणीय लहर पैदा करदी ।

स्वदेशी-प्रचार

आचार्य जवाहर ने अपने अनुयायियो मे राष्ट्रीयता के सभी सघटक तत्त्वो के प्रति निष्ठा का भाव जगाने का अथक प्रयत्न किया । स्वाधीनता आदोलन के सभी जीवत प्रतीको के प्रति लोगो मे श्रद्धा का भाव पैदा किया। चर्खे को वे भारतवर्ष का सुदर्शन चक्र मानते थे । उनकी दृष्टि मे भारत के दैन्य रूपी दैत्य को ध्वस्त करने का यह अमोघ शस्त्र था । खादी-प्रचार उनके उपदेशक जीवन का महत्त्वपूर्ण अग ही बन गया ।

वस्तुत स्वदेशी के प्रचार मे उनकी भूमिका सदैव स्मरणीय रहेगी ।

उन्होंने कहा कि स्वदेशी को अपनाना अपने देश का ही सम्मान करना है, उसका गौरव बढाना है । विदेशी वस्तुओ के मोहाध लोगो को फटकारते हुए उन्होने कहा कि ऐसा करके वे अपनी भारत जननी का ही अपमान करते हैं। उनके ये उद्गार—'स्वदेश का उद्धार उसी दिन से आरभ होगा, जिस दिन देशवासी स्वदेशी वस्तुओ का व्यवहार करना सीखेंगे'—वर्तमान सदर्भ मे कितने खरे प्रमाणित हो रहे हैं, यह कौन नही जानता ? स्वदेशी को तिरस्कृत करके हमने 'तस्करी' को बढावा दिया । आज जब हम तस्करी का उन्मूलन करके स्वदेशी की प्राण-प्रतिष्ठा कर रहे हैं, तब उनकी यह भविष्यवाणी अनायास ही याद हो आती है, जब उन्होने कहा था—'विदेशी वस्तुओ का विक्रय बद हो जाय और स्वदेशी वस्तुओ के व्यवहार का प्रचार हो जाय तो राष्ट्र के लाखो-करोडो गरीबो को, जिन्हे पहिनने को वस्त्र और खाने को भरपेट अन्न नही मिलता, अन्न-वस्त्र मिल सकता है । इस प्रकार स्वदेशी वस्तुओ के व्यवहार से करोडो भारतीयो को सुख-शाति पहुँचाई जा सकती है ।'

राष्ट्र भाषा का समर्थन.

हिन्दी को उन्होने भारतीय सस्कृति की आत्मा के रूप मे स्वीकार किया । मातृभाषा को उन्होने अत्यधिक महत्त्व दिया । जिस प्रकार मातृभूमि का उन्होने स्तवन किया, उसी प्रकार मातृभाषा का माहात्म्य-वर्णन भी किया। उन्होने यह अनुभव किया कि हिन्दी के मार्ग मे सबसे बडी बाधा है अग्रेजी । वे अग्रेजी शिक्षा को राष्ट्र के लिए घातक मानते थे क्योकि वे जानते थे कि इसमे मानसिक पराधीनता के बीज पडेंगे, जो राष्ट्रीयता की समस्त फसल को जहरीली बना डालेंगे । इसी परिप्रेक्ष्य मे उन्होने हिन्दी का समर्थन और अग्रेजी का विरोध किया । देशी भाषाओ को दासी बनाने वाली, भारतीय सस्कृति को विकृत करने वाली और आर्य सस्कारो को धूमिल करने वाली अग्रेजी के विरोध की सिंह-गर्जना करते हुए उस साधु पुरुष ने कहा कि ऐसी भाषा से 'मैं अपने विरोध की घोषणा करता हू और अपने श्रोताओ को विरोधी बनने का परामर्श देता हू ।'

आर्थिक विषमता पर प्रहार

आचार्य जवाहरलाल जी के राष्ट्रधर्म का एक महत्त्वपूर्ण अग था, उनका समाज सम्बन्धी दृष्टिकोण, उनका सामाजिक दायित्व निर्वाह । इतिहास मे वे क्रातिकारी समाज-सुधारक के रूप मे भी अमर रहेगे । पुण्यो के बल पर धनी हो जाने की धारणा का उन्होने समर्थन नही किया । समाज की

आर्थिक विषमता उन्हे असह्य थी। देश की स्वतत्रता के मार्ग मे यह वैषम्य और तद्जनित बुराइया आड़े आती थी। अत उन्होने अपने अनुयायी धनिक वर्ग को न्याय, धर्म और समानता के जीवन मे उतारने का उद्बोधन दिया। समाजवादी व्यवस्था के सूत्र बिखेरते हुए उन्होने कहा कि 'सम्यग् दृष्टि का लक्ष्य यही है कि वह अपनी सपत्ति परोपकार के लिए समझे और आप उससे अलहदा रहता हुआ अपने को ट्रस्टी अनुभव करे।' यदि समाज अपनी यह ट्रस्टी की भूमिका नही निभाता है, तो उसे सचेत करते हुए उन्होने कहा कि समाज को भविष्य मे ऐसी क्राति का सामना करना पड सकता है, जो आर्थिक वैषम्य के दुर्ग की ईट से ईट बजाकर रख देगी। क्या आज हम इस चेतावनी को चरीतार्थ होते नही देख रहे हैं ? ऐसी कल्पना और घोषणा आचार्य जवाहर जैसे क्रातदर्शी सात्त्विक महापुरुष ही कर सकते थे।

नारी-जागरण का स्वर :

नारी-समाज के प्रति जवाहरलाल जी के मन मे उदात्त विचार थे। वे नारी को पुरुष का आधा ही नही, अधिक महत्त्वपूर्ण अग मानते थे। नारी जाति के प्रति उनके मन मे अपार सादर का भाव था, जो उनके उपदेशो मे सदैव मुखरित हुआ करता था। नारी-समाज पर होने वाले अत्याचारो का उन्होंने विरोध किया। पैसो के लालच मे पडकर अपनी फूल सी कोमल कन्याओ को बूढो के हाथ सौपने वाले क्रूर माता-पिताओ को उन्होंने आड़े हाथो लिया और अनमेल विवाह के कुकर्म को हमेशा के लिए मिटा डालने की उन्हें हितकारी सीख दी। समाज मे छोटी अवस्था मे होने वाले गठ-बधनो का भी उन्होने विरोध किया क्योकि ऐसे विवाह शक्तिहीनता को जन्म देते थे। उन्होंने समाज के सभी लोगो से यह अपील की कि 'इस घातक प्रथा को त्याग दे। इसका मूलोच्छेदन करके सतान का और सतान के द्वारा समाज एव राष्ट्र का मगल-साधन करे।' उन्होने विधवाओ पर होने वाले अत्याचारो के विरुद्ध भी आवाज उठायी। स्त्री शिक्षा को बढावा देने के लिए भी उन्होने समाज का उद्बोधन किया। वे स्त्रियो के लिए उस शिक्षा के पक्षधर थे जो उनमे आत्मविश्वास और आत्म-गौरव जगा सके।

गोवध और मद्य-पान का विरोध:

गौ को वे राष्ट्रीय निधि मानते थे। गौवध उनकी दृष्टि मे भारतीयो के लिए कलक था। उन्होने एक मानवतावादी जैन अहिंसक साधु के नाते ही नही, एक राष्ट्रहितचिंतक के रूप मे भी यह कामना की कि गौधन के

सरक्षक और सवर्धन के साथ ही भारत की समृद्धि भी जुडी हुई है । गौ-हत्या की तरह उन्होने भारतीय जनता मे व्याप्त मद्यपान पर भी चिता व दुःख व्यक्त किया । उन्होने कहा कि 'जगत का कोई भी धर्म सप्रदाय या मत, जो किसी ऊचे उद्देश्य से कायम हुआ है, मदिरापान का विधान या समर्थन नहीं कर सकता ।'

श्रद्धास्पद व्यक्तित्व ·

आचार्य जवाहरलाल जी विशुद्ध राष्ट्रवादी जैन सत थे, जिन्होंने आत्मधर्म के साथ राष्ट्रधर्म को भी अगीकार किया था । उन्होने दोनो को एक-दूसरे का पूरक माना । इतना ही नहीं, राष्ट्रधर्म को वृहद् आत्मधर्म की आधार-भूमि के रूप मे स्वीकार किया । वे कहते थे कि जिस प्रकार पात्र के अभाव मे घी नही टिक सकता, उसी प्रकार राष्ट्रधर्म के बिना सूत्र-चारित्र धर्म भी नही टिक सकता । वस्तुत वे ऐसे राष्ट्रनिष्ठ, धर्मप्राण सत पुरुष थे जिन्होने राष्ट्र को जगत का प्रतीक माना और आत्मा के उद्धार के साथ राष्ट्र अर्थात् जगत् के उद्धार का भी पथ प्रशस्त किया । आज के राष्ट्रीय भावोन्माद के विशुद्ध वातावरण मे उनके तपस्वी व्यक्तित्व ने जो सौरभ बिखेरा है, वह चिरकाल तक इस उद्यान को सुवासित बनाये रखेगा । इसी पवित्र प्रतीति-पूर्ण भावना के साथ लेखनी अपनी श्रद्धा अर्पित करती हुई कृतार्थ हुआ चाहती है ।

ब्रह्मचर्य दिव्य शक्ति और दिव्य तेज प्रदान करने वाली महान् रसायन है । जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है, उसके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नही रहती ।

राष्ट्रीय जागृति में आचार्यश्री का योगदान

● श्री रत्नकुमार जैन

श्रीमज्जवाहराचार्य के नाम से जैन समाज अपरिचित नही है। यद्यपि वे एक स्था जैन सम्प्रदाय के आचार्य थे, तब भी उनका समस्त जैन समाज मे एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व था। वे जिस समय कार्यरत थे, उस समय हमारा देश परतत्र था, अशिक्षा और नाना कुरीतियो का शिकार बना हुआ था। एक तरफ राष्ट्रपिता गाधी जी के नेतृत्व मे स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रह था— तो दूसरी तरफ आचार्य श्री जवाहरलाल जी म राष्ट्रीय जागृति के लिये धार्मिक क्षेत्र मे क्रातिकारी भूमिका अदा कर रहे थे।

उन्होंने देखा कि भारत के लोगो को आज दोनो समय का खाना भी नसीब नही होता है, बेकारी के वजह से वे अपने परिवार का भरण-पोषण भी नही कर सकते हैं, तो उन्होंने गाधीजी के खादी आन्दोलन मे अपना भी सहयोग चालू किया। उन्होंने स्वय खादी पहनना आरम्भ किया और लोगो को भी खादी धारण करने का उपदेश दिया। वे अपने सार्वजनिक प्रवचनो मे खादी के वस्त्रो का प्रतिपादन इतनी सचोट और मर्मस्पर्शी भाषा मे करते थे कि उनसे प्रभावित हजारो लोगो ने चरबी के वस्त्रो का त्याग कर खादी पहनना शुरु कर दिया था। पुरुषो ने ही नही, कई महिलाओ ने भी खादी पहिनने का व्रत ग्रहण किया था। उनके कई शिष्य [1] आजीवन खादी के ही वस्त्रो का उपयोग करते रहे। उस समय यह बहुत बडी बात थी। एक जैन सन्त होकर, जिसकी कि अपनी मर्यादा है, उसमे रहते हुए राष्ट्रीय प्रश्नों

---

१ प० सिरेमल जी म आदि।

पर खुले आम चर्चा करना और लोगो को उन पर चलने का निर्देश देना, सूझ-बूझ और हिम्मत का काम था, जो कि आचार्यश्री ने किया। गाधी जी भी उनके विचारो से बडे प्रभावित हुए थे। चन्द मिनटो की मुलाकात के दरमियान ही उन्होंने यह कहा था कि देश मे दो जवाहर हैं—'एक मेरे पास है और एक जैन समाज के पास है।'

आचार्यश्री सचमुच युगद्रष्टा सन्त महापुरुष थे। उन्होंने सामयिक कुरीतियों जैसे कि बेकारी निवारण, अशिक्षा, नारी दुर्दशा, दहेज और मृत्यु भोज के—विरुद्ध भी अपने स्पष्ट विचार समाज के सामने रखे थे। उन्होंने अपने साधु-सन्तो को पढाने का भी सिलसिला चालू किया था। वे यह भली-भाति समझते थे कि अगर सन्त समाज पढा-लिखा और विद्वान् न होगा तो समाज को उनसे लाभ नही मिल सकेगा। आज भी उनके समुदाय मे सन्तो के पठन-पाठन का व्यवस्थित क्रम चालू है। पठन-पाठन के साथ २ लेखन प्रवृत्ति मे भी सन्तो को आगे आना चाहिये।

स्त्री शिक्षा के लिये भी आचार्यश्री अपने प्रवचनो मे बहुत जोर दिया करते थे। इस क्षेत्र मे आज जो कुछ भी प्रगति दृष्टिगोचर हो रही है, यह उन्ही की देन समझनी चाहिये।

दहेज और मृत्यु-भोज सम्बन्धी बुराइयो के प्रति तो वे आजीवन सजग प्रहरी के रूप मे समाज को सावधान करते रहे। उस समय मेवाड या मालवा मे ऐसा रिवाज था कि किसी भी परिवार मे कोई बडा मर जाता था तो उसका महीनो तक शोक रखा जाता था और रोना-धोना किया जाता था। आचार्यश्री ने इस कुप्रथा के बारे मे लोगो को बहुत समझाया, परिणाम स्वरूप आज कही भी एक महीने से अधिक शोक नही रखा जाता है। दहेज प्रथा की बीमारी तो आज भी विषम बनती जा रही है। यह एक राष्ट्रीय समस्या बन गई है। इसके उन्मूलन मे हमारे सन्त चाहे तो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। जिस समाज मे वे रहते हैं, उस समाज का सही मार्ग-दर्शन करना उनका धर्म है।

आचार्यश्री का जीवन बडा आदर्श जीवन था। उनके प्रवचन का भी अपना ढग था। प्रार्थना मे उनका अटूट विश्वास था। गाधीजी भी प्रतिदिन प्रार्थना करते थे। आचार्यश्री भी प्रात प्रवचन से पूर्व प्रार्थना किया करते थे। जिन्होंने उन्हें देखा है, वे यह जानते हैं कि प्रार्थना मे वे कैसे तल्लीन हो जाते थे? सप्ताह मे वे एक दिन मौन रखा करते थे। गाधीजी

भी सप्ताह मे एक दिन मौन रखा करते थे । इस तरह यदि हम जीवनचर्या और कार्यकर्ताओ की दृष्टि से देखेंगे तो गाधीजी और स्व० आचार्यश्री के जीवन मे काफी समानता दृष्टिगोचर होगी ।

गोपालन और कृषि के बारे मे भी लोगो के दिलो मे जो भ्रान्त धारणाए घर कर गई थी, उनका भी उन्होने अल्पारभ और महारभ को समझाते हुए, निराकरण किया और खेती करने मे महारंभ नही होता, समझाया। श्रावक का धर्म है कि वह आत्मनिर्भर बने और देश को आत्मनिर्भर बनावे। इस दृष्टि से खेती और गोपालन उसके आवश्यक कर्त्तव्य हो जाते हैं ।

साधु और श्रावक की मर्यादा मे बडा अन्तर है । साधु अपनी मर्यादा मे रहते हुए वाहन से देश-विदेश की यात्रा नही कर सकता है । धर्म-प्रचार के नाम पर साधुता मे शिथिलाचार का पोषण करना आचार्यश्री को स्वीकार नही था। इसलिये उन्होने साधु और श्रावक के बीच की एक 'वीर सघ योजना' तैयार की थी । समय की अपरिपक्वता से भले ही इस योजना को उस समय सफलता न मिली हो, परन्तु इसमे दो राय नही हो सकती है कि यह योजना अगर अमल मे आ जाती तो संघ मे शिथिलाचार को फैलने का मौका नही मिल पाता । आज भी इस पर ठोस विचार करने की आवश्यकता है ।[1]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि स्व० आचार्यश्री का जीवन के हर क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन और योगदान रहा है । उनका प्रकाशित साहित्य तो आज भी लोगो का प्रेरणास्रोत बना हुआ है । उनकी जन्म-शताब्दी के के अवसर पर समाज उनके उपदेशो का अनुसरण करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहे, यही शुभ भावना है ।

१— श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ ने आचार्यश्री के जन्म-शताब्दी वर्ष मे इस योजना को मूर्त्त रूप दे दिया है ।

> वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य के मस्तिष्क की महिमा को भले ही प्रकट करती हो, पर उसमे मनुष्यता जरा भी विकसित नही हुई है । जो विज्ञान मनुष्य की मनुष्यता नही बढाता, बल्कि उसे घटाता है और पशुता की वृद्धि करता है, वह मानव जाति के लिये हितकर नही हो सकता ।

सामाजिक जागरण में आचार्यश्री की भूमिका

● श्री महेशचन्द्र जैन

सर्वोदयी दृष्टि :

महा महनीय पूज्य श्री जवाहराचार्य उन महापुरुषो मे एक महान् विभूति थे, जिन्होने अपने जीवन की अमर ज्योति जगा कर जैन संस्कृति के महान् प्रकाश से इस जगतीतल को प्रकाशित किया। आप मे विशाल हृदयता, सूक्ष्म निरीक्षणता, दृढ निश्चयता और सर्वोदय की भावना मूर्तिमत थी। जीवन के आन्तरिक रहस्य को खोल कर रखने मे वे अद्वितीय थे। यद्यपि वे एक सम्प्रदाय के आचार्य थे तथापि उनका हृदय समुद्र की तरह विशाल और गम्भीर था। उनकी दृष्टि मे मानवता सर्वोपरि थी। इसीलिये चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र सभी की उन्नति के लिये वे प्रयत्नशील थे, यानि उनमे सर्वोदय की भावना विद्यमान थी।

धर्म सब का : सब धर्म के :

आपका यह दृढ विश्वास था कि सासारिक प्राणी अनेक संघर्षो मे अपना जीवन यापन कर रहा है। संघर्ष रत प्राणी धर्म नही कर सकता। जो व्यक्ति सासारिक द्वन्द्वो—संघर्षो पर विजय प्राप्त कर लेता है, वही सच्चा धर्माराधक बन सकता है। धर्म कोई उपाश्रय की चीज नहीं है। जब तक उपाश्रय मे रहे, मुहपत्ती बाध कर जीवो के रक्षक बने रहे। उपाश्रय से छूटते ही दुकान पर आने मे या व्यापार-धन्धो मे जीवरक्षा का ध्यान नही रहता, वहा सभी प्रकार के झूठ, कपट, छल इत्यादि का सहारा लेता है तो फिर वह रक्षक कहा रहा ? अत आचार्यश्री का यह उपदेश था कि जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में धर्म का व्यवहार होना आवश्यक है। जीवन के हरेक क्षेत्र मे और

हर एक क्षण मे ईश्वरीय उपासना यानी धर्म–प्रवृत्ति होना आवश्यक है । जो जीवन–व्यवहार मे, व्यापार–धन्धो मे धर्म को भूल जाता है, अधर्म का आचरण करता है तो वह वास्तविक आराधक नही कहा जा सकता । धर्म किसी ज.ति विशेष के लिये नही हैं । उसे जो आचरण करेगा वह उसी का उद्धार करेगा चाहे वह किसी भी वर्ण या मत का क्यो न हो ? अत धर्ममय जीवन व्यतीत करना, यह मानव का प्रथम धर्म है ।

मानवता के पुजारी ·

आप मानवता के पुजारी थे । दया, प्रेम, सहानुभूति, परस्पर सहायता देना, चोरी न करना, अधिक सचय न करना, अपने से किसी को हीन न समझना, दीन, अनाथ व गरीवो की मदद करना, दुखियो को सहायता पहुचाना, शत्रु की भी आपद्काल मे देख कर सेवा करना, मरते हुए जीव को बचाना, आग मे जलते हुए का रक्षण करना, पास–पडोसियो की वैयावृत्य करना, उनके सुख दु ख मे भागीदार वनना, गरीव छात्रो को छात्र–वृत्ति देना इत्यादि, ये सब मानवता के गुण है । इन्ही गुणो से प्रेरित होकर आचार्यश्री करुणार्द्र होकर उपदेश दिया करते थे ।

खादी प्रयोग पर वल .

आचार्यश्री की वाणी मे युगदर्शन की छाप थी । आप एक महान् समाज–सुधारक थे । आपके हृदय मे सामाजिक बुराइयो को देख कर ज्वाला प्रज्वलित हो उठती थी । पर वह ज्वाला वाह्य ज्वाला की तरह समक्ष आने वाले प्रत्येक पदार्थ को भस्मीभूत न करती थी । वह तो एक ऐसी ज्वाला थी जो बुराइयो को भस्म कर देती थी । आपने समाज मे फैले हुए अनेक मिथ्या विचारो को नष्ट करने का प्रयत्न किया । फिर भी आप शास्त्रीय मर्यादा से किञ्चित् मात्र भी इधर उधर न हुए । उदाहरण—रेशमी वस्त्रो को पहनना पवित्र समझा जाता था । रेशमी वस्त्र पहन कर मन्दिरो मे भी जा सकते थे, चाहे वे धुले हुए न हो । किन्तु आचार्यश्री ने स्पष्ट रूप से इसका खडन किया और खादी पहनने पर जोर दिया । आचार्यश्री ने वताया कि रेशमी वस्त्र पहनने से असख्यात कीडो का नाश होता है । जो जैन कीडो को मारने मे पाप समझता है, वह असख्यात कीडो के घात से उत्पन्न वस्त्र को कैसे पहन सकता है ? वह अहिंसक कैसे कहा जा सकता है ? मिल का वस्त्र भी अहिंसक उपयोग मे नही ला सकता क्योकि उसमे भी पशुओ की चर्वी का उपयोग किया जाता है । हाथ–कते व हाथ–वने वस्त्रो का उपयोग करना

आवश्यक है, इसमे अनेक लोगो का गुजारा भी होता है। जिस समाजवाद और अपरिग्रहवाद को हम फैलाना चाहते है, उसका भी प्रचार होता है। खादी पहनने मे शारीरिक दृष्टि से भी लाभ होता है क्योकि वह गर्मी मे ठडी और ठडी ऋतु मे गर्म रहती है। उसमे पसीना सुखाने की अपूर्व शक्ति होती है। इस तरह आचार्य श्री ने खादी को अपनाने की बात कही।

नैतिकता का प्रसार

आचार्य श्री ने गृहस्थ जीवन को अत्यन्त विकृत देखा तो उनकी आत्मा तिलमिला उठी। वे कहा करते थे कि अपने जीवन को नीतिमय बनाना जरूरी है। 'धर्म और धर्मनायक' पुस्तक मे दस धर्मो और दस नायको के कर्त्तव्यो पर ऐसा सुन्दर विवेचन दिया है कि जो देखते ही बनता है। अनैतिकता मे ग्राम, नगर, राष्ट्र आदि समुन्नत नही हो सकते। मानव केवल धन कमाने मे लगा है, वह नैतिक या अनैतिक व्यवहार की ओर ध्यान नही देता, किन्तु इससे राज्य मे कितनी अराजकता फैलती है, कितनी अशान्ति व अव्यवस्था होती है, कहा नही जा सकता। अपने सुख के लिए दूसरो के सुख की ओर ध्यान न देना यही तो अनैतिकता है। अत मानव मात्र का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह शान्ति बनाये रखने के लिए, परस्पर सद्व्यवहार करे। आचार्य श्री अपने उपदेशो मे कहा करते थे कि 'तुम जैसा व्यवहार अपने साथ चाहते हो, वैसा ही व्यवहार दूसरो के प्रति करो।

साधु समाज मे ज्ञान का प्रसार .

आचार्य श्री अपना उपदेश केवल वक्तृत्व शक्ति प्रदर्शन के लिए ही नही दिया करते थे। उनका हृदय करुणा से आप्लावित था। अवसर आने पर वे सचोट भाषा का भी प्रयोग करते थे। उन्होंने अपने उपदेशो मे सामाजिक बुराइयो को दूर कर जीवन को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। श्रोताओ के जीवन को उन्नत करना उनके जीवन का लक्ष्य था। वे बडे क्रान्तिकारी विचारो के थे। साधु समाज में संस्कृत भाषा का प्रचार बहुत कम था। प्राकृत का भी उच्च ज्ञान न था और न अन्य भाषाओ का ही उच्च शिक्षण था। यो कहना चाहिये कि साधुओं का जीवन अन्य भाषाओ के ज्ञान से रहित था। स्थानक वासी समाज मे पडितों द्वारा साधु-साध्वियो को शिक्षित करने का कार्य सर्व प्रथम आपने ही चालू किया था। उस समय इसका घोर विरोध हुआ किन्तु आपने इसकी परवाह नही की। आपका कहना था कि यदि साधु साध्वी अज्ञानी रहेंगे तो वे स्व समय व पर समय को कैसे समझ सकते हैं?

ग्रौर जब स्व समय और पर समझ का ज्ञान न होगा तो जिनवाणी पर दृढ श्रद्धा कैसे हो सकती है ? अत सामाजिक विरोध को सहन करके भी आपने साधु–साध्वियो को पडितो द्वारा पढाने का कार्य आरभ किया ।

धर्म मे विवेक और भावना का महत्त्व

श्रावक के बाहर व्रतो पर प्रकाश डालते हुए आपने अहिंसा का सुन्दर विवेचन किया । साथ ही अल्प पाप और महा पाप की भी व्याख्या की। लोगो मे अब तक प्रचलित मान्यता को आपने गलत बताया । आपने स्पष्ट रूप से कहा कि विवेक मे धर्म है और अविवेक मे पाप। किसी भी कार्य मे यदि विवेक नही रखा जायगा तो वह महा पापकारी हो जायगा और यदि विवेक रखा जायगा तो वही अल्प पाप वाला हो जायगा । भावना पर ही यह बहुत कुछ आश्रित है । यदि शुभ भावना है तो अल्प पाप वाला होगा और वही दुर्भावना से महा पापवाला हो जाता है ।

इसी प्रकार समाज मे फैली हुई बुराइयो को आपने अपने उपदेशो द्वारा दूर करने का सदैव प्रयत्न किया । आपने सिनेमा के सम्बन्ध मे निम्न विचार व्यक्त किये है—"आजकल के सिनेमा तो नैतिकता से इतने पतित और निर्लज्जतापूर्ण होते सुने जाते है कि कोई भला मनुष्य अपने बाल–बच्चो के साथ उन्हें नही देख सकता ।' रसना–निग्रह के सम्बन्ध मे ये विचार प्रकट किये हैं– ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए, साथ ही स्वास्थ्य रक्षा के लिए जिह्वा पर अकुश रखने की बहुत आवश्यकता है । जिह्वा पर अकुश न रखने से अनेक प्रकार की हानिया होती हैं । जो मनुष्य अपनी जीभ पर काबू रखता है, उसे वैद्यो और डक्टरो के द्वार पर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती ।'

समाज–सुधार की दिशा

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे लोगो की भ्रान्त धारणाओ का वणन इस प्रकार किया है–विषय भोग की कामना का नियन्त्रण नही हो सकता, यह कामना अजेय है, इस प्रकार की दुर्भावना पुरुष समाज मे पैठ पायी तो भयकर अनर्थो की परम्परा का सामना करना सहज न होगा । आचार्य श्री का कहना है कि ऐसे लोग काम भोग को क्रीडा मात्र समझते हैं । पर किसी व्यक्ति की असमर्थता देख कर यह धारणा नही बनानी चाहिये ससार मे ऐसे व्यक्तियो का अभाव नही है, जो बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन कर जन सेवा का

कार्य कर रहे हैं। भीष्म और नेमिनाथ का पवित्र जीवन, उच्च-आदर्श जिन का मार्ग-दर्शन कर रहा है उन भारतीयो मे यह भूत न मालूम कैसे घुस गया है ?' नेपोलियन जब 'असभव' शब्द को कोश मे से बाहर निकालने को कहता है तो फिर तुम भी काम भोग की इच्छा को दमन करने की असभवता को निकाल कर बाहर करो। आचार्य श्री के हृदय मे ब्रह्मचर्य के प्रति कितनी अपूर्व भावना थी।

विधवाओ को सदुपदेश देते हुए आप कहा करते थे कि 'अब परमेश्वर से नाता जोडो, धर्म को साथी बनाओ, सयम से जीवन व्यतीत करो। ससार के राग रगो को और आभूषणो को अपने धर्म पालन मे विघ्नकारी समझ कर त्याग करो। इसी मे आपकी प्रतिष्ठा है।

बाल विवाह के सम्बन्ध मे आप कहा करते थे कि 'छोटी-कच्ची-उम्र मे बालक बालिका का विवाह करना अमगल है। ऐसा विवाह भविष्य मे हाहाकार मचाने वाला है, ऐसा विवाह त्राहि त्राहि की आवाज से आकाश को गुजाने वाला है, ऐसा विवाह देश मे दुख का दावानल दहकाने वाला है। इस प्रकार के विवाह मे देश की जीवन-शक्ति का ह्रास हो रहा है।' 'यह बालक दुनिया के रक्षक बनने वाले हैं, इन पर दाम्पत्य का पहाड मत पटको।, बालक निसर्ग का सुन्दरतम उपहार है, इस उपहार को लापरवाही मे मत रौंदो।' इस प्रकार समाज मे फैले हुये बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, इत्यादि को अपने उपदेशो द्वारा मिटाने का प्रयत्न किया। हजारो लोगो को मद्य, मास, बीडी, सिगरेट, पर स्त्री-गमन इत्यादि बुराइयो से छुडाकर समाज को सस्कारी बनाया। ऐसे महान् समाज-सुधारक आचार्य के चरणो मे मैं अपने श्रद्धा के पुष्प अर्पण करता हूँ।

अगर सच्चे कल्याण की चाहना है तो सब वस्तुओ पर से ममत्व हटाओ। 'यह मेरा' इस बुद्धि से ही पाप की उत्पत्ति होती है। 'इद न मम' अर्थात् यह मेरा नहीं है, ऐसा कहकर अपने सर्वस्व का यज्ञ कर देने मे अहकार का विलय हो जायगा और आत्मा मे अपूर्व आभा का उदय होगा।

आचार्यश्री की देन के विविध आयाम

● श्री हिम्मतसिंह सरुपरया

आचार्यश्री से मेरा सम्पर्क और तत्त्वलाभ :

मुझे आपश्री के सर्व प्रथम वचनामृत सुनने का लाभ सवत् १९७६ मे मिला, जब आप युवाचार्य पद पर थे व उदयपुर चातुर्मास के लिये पदार्पण किया। इसके पूर्व मैं शैशवास्था मे था। आपके पाडित्यपूर्ण, शास्त्रसम्मत, हृदयस्पर्शी प्रतिभावत प्रवचन श्रवणकर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। भविष्य मे भारत की एक अद्वितीय विभूति सिद्ध होने का आभास मिला। सवत् १९७७ मे जब मैं अजमेर मे पढता था, पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज साहब सहित आपके दर्शनो का व्यावर मे लाभ मिला। सवत् १९७८ मे जब आप पूना विराजते थे, मैं भी वहा फरगूशन कालेज मे पढता था। तब मेरे पितृव्य भ्राता जवानसिंह जी की दीक्षा आपके द्वारा हुई जिनका दीक्षा नामकरण 'जिनदास' रखा गया। सवत् १९८० मे जब मैं बबई बी एस-सी मे अध्ययन करता था, आपश्री के दर्शन घाटकोपर मे किये। आपश्री ने विज्ञान व आगम के विषयो को तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन की प्रेरणा दी व प्रेमास्पद शब्दो मे हृदय के उद्गार व्यक्त किये कि व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कर सब कोई उदरपूर्ति कर सकते हैं, पर विरले ही ऐसे होते हैं जो शासन की नि स्वार्थ सेवा कर अपने जीवन को सार्थक करे।

सवत् १९८२ मे जब चातुर्मास पूर्व शेखेकाल आपश्री का उदयपुर आगमन हुआ, तब तपस्वी श्री उत्तमचद जी महाराज (जो १२ वर्ष से छाछ के आगार पर तपस्या करते थे) वहा विराजते थे। आपश्री के वचनामृत का पुन लाभ व तत्त्वचर्चा श्रवण से उद्बोध मिला। तपस्वी जी के साथ आपका प्रेम व सौहार्द अनुकरणीय था। शाकाहारी व आमिष भोजन के विषय मे चर्चा सुनी। शाकाहारी गृहस्थ के लिये एकेन्द्रिय जाति वनस्पति का त्याग शक्य नही, जीवन की समस्या के लिये उसका आरम्भ-समारम्भ करना पडता है जिसके लिये भी मन मे पश्चात्ताप रहता है। विरतिमय जीवन की आकाक्षा

करता है– परन्तु एकेन्द्रिय से अनन्त गुणे पुण्य हो तब वेइन्द्रिय जाति मिलती है, वेइन्द्रिय से अनन्तगुणे पुण्य से तेइन्द्रिय, उससे अनन्तगुणे पुण्य से चतुरिन्द्रिय, उसमे भी अनन्तगुणे पुन्य से पचेन्द्रिय जाति मिलती है। ऐसी पचेन्द्रिय जाति का वध करने मे क्रूरतम परिणाम होते हैं। उससे जीव मरकर नरक मे गमन करता है। मास भोजन से तामसिक प्रवृत्ति होती है। यह महारभ है।

एक मुमुक्षु ने यह शका की कि इन्द्रियातीत विषय स्वर्ग नरक वा लोक के तिर्यग् भाग मे असख्यात द्वीप समुद्रो का जो स्वरूप शास्त्रो मे उपलब्ध होता है, उनकी सत्ता मे कैसे विश्वास किया जावे ? आपश्री ने समाधान किया कि उन वीतराग केवलियो ने जो प्रवचन दिये, वे त्यागी, पूर्णज्ञानी महात्मा थे। उन्हे किसी प्रकार का लोभ, लालच नही था। उन्हे कोई दूकानदारी नही लगनी थी। अपने कैवल्य से जैसा वस्तु का स्वरूप उन्होंने देखा, वैसा प्रतिपादित किया। तदनुसार ही गणधरो ने उनके भावो को शास्त्रनिबद्ध किया। बकरी (अजा) के मुँह मे कोला (कुष्माड फल) न समावे तो उस फल की असत्ता नही कह सकते। एक नारगी के चारो ओर कीडी फिर जावे और कहे कि लोक का स्वरूप इतना ही है तो यह पर्याप्त नही। छद्मस्थ की दृष्टि सीमित है। कर्मो से आच्छादित है। वह पूर्ण ज्ञान नही कर सकता। वही पुरुष उत्कृष्ट साधना कर कैवल्य प्राप्त कर वस्तु के सत्यासत्य का निर्णय कर सकता है।

शेषेकाल अनन्तर करजाली की वाडी मे बावजी चतुरसिंह जी (महाराणा सा० के काका व योगी– जिन्होने पातञ्जल योग का सरल हिन्दी मे अनुवाद किया, मेवाडी गीता आदि कई ग्रन्थ रचे) ने आपश्री के दर्शन किये। हिंदुवा सूर्य महाराणा प्रताप के वशजो मे परिचय कर गूढ योग के रहस्यों का उद्घाटन आपश्री ने किया। योगिराज को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। गुलाब बाग मे उदयपुर के तत्कालीन महाराज कुमार श्री गोपालसिंह जी ने आपसे भेंट की, तब मैं भी उपस्थित था। क्षात्रधर्म पर प्रतिबोध दिया। प्रजाहितो की ओर सकेत किया। महाराज कुमार ने कई एक नियम लिये। वे आपश्री के दर्शन कर अति प्रसन्न हुए। बेदला से मेरे विदा लेने पर आपश्री ने मुझे 'सेवा समिति' के अध्यक्ष के नाते जो उद्बोध दिया, आज भी मेरे कर्णो मे भरपूर है— "सेवाधर्मोऽतिगहनो योगिनामप्यगम्य।" सेवक को बिना किसी अहकार, ममत्व, प्रत्युपकार की वाछा के— समताभाव पूर्वक मानापमान का विचार न कर मानव ही नहीं, प्राणिमात्र की निस्वार्थ भाव से सेवा करना है। इसमे उत्कृष्ट रसायन होने पर तीर्थंकर गोत्र बधता है।

संवत् १९८४ मे आपके दर्शन भीनासर मे किये। उस समय कई एक अछूतो ने मास-मदिरा का त्याग किया। व्याख्यान मे विना किसी भेद-भाव के बैठाये गये। कालेज के विद्यार्थियो को 'ब्रह्मचर्य' पर मार्मिक व शास्त्र-सम्मत प्रभावशाली उद्‌बोध दिया। 'मरण विंदुपातेन-जीवन विंदुधारणात्' उसी काल मे दिन के समय 'सद्धर्म मडन' के विषय, आपश्री मुनिश्री जिनदास जी को लिखा रहे थे। स० १९९० मे जव आपश्री का उदयपुर चातुर्मास हुआ, मुझे विशेप सपर्क का लाभ मिला। शास्त्राभ्यास मे विशेप रुचि बढी। चातुर्मास के अनन्तर आपश्री नाथद्वारा पधारे। वहा वैरागी वधु श्री डूगर सिंह जी का दीक्षा महोत्सव मेरे यहा से ही कराया गया। कई एक हरिजनो ने आपका प्रेरणात्मक उपदेश श्रवण कर, मदिरा-मास का त्याग किया। जैन–अर्जन जनता का समूह आपके वचनामृत से लाभान्वित हुआ। योगाभ्यासी सुथारन भूरवाई की आप पर अटूट श्रद्धा जागृत हुई। आपश्री की 'किरणा-वलियो' से वे अत्यन्त प्रभावित हुई। अभी भी वे उनके स्वाध्याय का विपय वन रही हैं। वही महामन्त मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र श्री रमाकान्त मालवीय जो उस वक्त नाथद्वारा ठिकाने के 'कोर्ट आफ वार्ड' के अध्यक्ष थे, आपश्री से भेंट कर लाभाविन्त हुए।

तदनन्तर चैत्र कृष्णा १० सवत् १९९० मे मैंने साधु-सम्मेलन म आपश्री के दर्शन किये। जहा २६ सप्रदाय के २४० साधु महात्मा एकत्रित हुए थे। एक जगम तीर्थ वन गया था। जब सत-महात्मा कतारबद दो-दो के साथ 'भमैयो के नोहरे' (सम्मेलन स्थान) से लाखन कोटडी (निवास स्थान) की ओर पधारते थे, सवसे आगे पूज्य श्री मन्नालालजी म० साहव को दो सत डोली मे उठाकर ले जाते थे। वह दृश्य आज भी मेरे स्मृति पटल पर अकित है। धन्य है ऐसे महामन्त शासन के सेनानी को।

स्थानकवासी सप्रदायो मे स्वच्छन्दता व भिन्न-भिन्न प्रणालियो—शिथिलताओ को देखकर, सवको एक सगठन-श्रद्धा प्ररूपणा व आचार व्यवस्था मे लाने हेतु जो आपश्री ने 'श्री वर्द्धमान सघ योजना' साधु-सम्मेलन के सामने रखी, यद्यपि सदस्यगण उसके लिये तैयार नही हुए, परन्तु वह सदा के लिये मार्गदर्शक वन गई। श्री हुक्मीचद जी म सा की सम्प्रदाय मे उसको असली रूप दे दिया गया है। एक ही आचार्य के नेश्राय मे दीक्षाशिक्षा, चातुर्मास व समाचारी की व्यवस्था है। अजमेर के साधु-सम्मेलन के नियमानुसार फाल्गुन शुक्ला ३ सवत् १९९० को जावद मे मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज सा को युवाचार्य पद से सुशोभित किया। मैं भी उस समय वहा उपस्थित था।

संवत् १९९१ मे जब पूज्यश्री का चातुर्मास कपासन था, मैंने भी दर्शनो का लाभ लिया। आपश्री के हाथ मे फिर से फोड़ा हो गया था जिसको 'मित्र' संबोधित कर असह्य वेदना होते हुए भी आपने अनुभव किया कि मेरा मन शरीर से ममत्व त्याग कर, एकान्त आत्मा पर केन्द्रित हो गया। अति आनन्द अनुभव हुआ, यह 'मित्र' का उपकार है। तर्क-वितर्कों मे आत्म-स्वरूप का साक्षात् नही होता। जिस पोल के ऊपर कमरे मे आपश्री विराजमान थे, उसके दो दरवाजे थे। मुझसे पूछा— प्रत्येक देहली के दरवाजे बाहर कितनी लंबाई है, नाप सकते हो? मैंने कहा, हा नाप सकता हूँ। १०-१५ फीट होगी। पूज्यश्री ने समझाया, इसी तरह मानव का जीवन अल्प है सीमित है। जो कुछ सुधार, उन्नति, आत्मोत्थान करना हो, कर लो अन्यथा जीवन के परे अनन्त ससार पड़ा है। मुक्ति का स्वरूप तर्क-बुद्धि से परे है 'सव्वे सरा णियट्टन्ति, तक्का तत्थ ण विज्जइ।'

संवत् १९९७ मे काठियावाड, गुजरात से लौटकर आपश्री का बगड़ी मे चातुर्मास हुआ। चातुर्मास उठने पर मैंने विदाई के वक्त मंगलिक के लिये निवेदन किया तो आपश्री ने विहार करने बाद अवसर देखने को कहा। विहार करने के बाद रास्ते मे एक स्थान पर बैठकर उन दिव्यदृष्टि ने जीवन सुधार की जो प्रेरणाएँ दी वे आज भी मेरे लिये मार्गदर्शक बन रही हैं। उन्ही का उपकार है कि मैं अपने जीवन मे परिवर्तन ला सका हूँ, उसे मर्यादित व यथास्थिति संयमित कर पाया हूँ। भविष्य मे भी यही लक्ष्य रखता हूँ।

अद्भुत व्यक्तित्व :

गौरवर्ण—लंबा कद, दोहरा बदन, विशाल ललाट, करुण व वात्सल्य से ओतप्रोत चक्षु, प्रसन्न मुख, प्राणिमात्र के हितैषी। (आपश्री के जन्मलग्न के ग्रह व हस्तरेखाएँ सूचित करती थी कि ये महापुरुष या तो छत्रपति होंगे या पत्रपति) आप अपूर्व प्रतिभाशाली, अनुपम तेजस्वी, अद्वितीय विचारक, अद्भुत विवेचक, असाधारण वाग्मी व शास्त्रनिहित रहस्य के मर्मज्ञ व सूक्ष्म अन्वेषक थे। आपकी आत्मा ने गहन अध्ययन व मनन से आन्तरिक प्रकाश प्राप्त कर लिया था जो उनके रोम २ से प्रस्फुट हो जनसमुदाय के हृदय को आलोकित आंदोलित व विकसित कर देता था।

प्रखर वक्ता :

आपकी भाषण शैली चमत्कृतिपूर्ण थी। जिस किसी विषय को

उठाते–अपने करुण सौहार्द से समन्वित मधुर कठ मे ऐसा चित्रित कर देते थे कि जनता मन्त्रमुग्ध हो विभोर हो जाती । आप प्रार्थना मे एकदम ऐसे लीन-तन्मय हो जाते कि पैर के दोनो अगूठे भी आपके लय मे सहयोग देते थे । प्रभु की प्रार्थना मे आपकी गहन श्रद्धा भक्ति थी । अधिकतर 'आनन्दघन' चौवीसी की कडियो का मधुर कठ मे गायन करते । यह 'चौवीसी' साधारण जन को दुरूह है परन्तु आप उसी पर विवेचन ऐसी सरल भाषा मे करते कि अल्पज्ञ भी समझ सकता था । यह आपके गहन अध्ययन, प्रतिभा व शास्त्रो के मर्मज्ञ होने का परिणाम था । १०–१० हजार श्रोताओ के एकत्रित होने पर भी ऐसी शान्ति रहती कि आत्मार्थी पिपासु चातक आपके वचनामृत मेघवर्षा के लिये लालायित रहते । आपके हृदयस्पर्शी उपदेशो मे प्रेरणा पाकर श्रोताजन एकदम आपके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करने को उद्यत होते । कई एक जीवो को अभय दान मिलता । कइयो ने मद्य, मास, परस्त्री गमन, भाग, गाजा आदि मादक पदार्थो का परित्याग किया, कई जनोपयोगी सस्थाए व गोरक्षा सदन, गुरुकुल, जैसे कार्य हाथ मे लिये गये । राजा-महाराजाओ ने, नेताओ ने, सेठ साहूकारो ने, आफिसर कर्मचारियो ने, वकील-वैरिस्टरो ने अपने जीवन को मोड दिया, नियमोपनियम ले जीवन सभ्य सुसस्कृत बनाया । कई एक अगार से अनगार बने, आत्मोद्धार किया । आप प्रार्थना मे कभी २ कबीर की निम्नोक्त पदावली मधुर कठ मे दोहराते थे जो अभी भी कानों मे स्फुरणा भरती है—

"सुने री मैंने निर्बल के बल राम ।
पिछली साख भरू सतन की, आडे सुधारे काम ।

सस्कृत शिक्षा · वैतनिक पण्डित :

सवत् १९६९ के पूर्व स्थानकवासी सम्प्रदाय मे सस्कृत भाषा का पठन-पाठन कम था । व्याकरण-साहित्य का अध्ययन कर विदग्ध बनने की ओर किसी की रुचि नहीं थी । पुराने विचारो के लोग सस्कृत भाषा पढने के विरोध मे थे । श्री जवाहरलाल जी महाराज सा० को रूढि के बीच दबा रहना असह्य था यद्यपि सयम की मर्यादाओ को वे दृढता मे पालन करते थे । मुनिश्री स्थानकवासी सम्प्रदाय मे समर्थ विद्वान देखना चाहते थे अन्यथा यह समाज विद्वानो के समक्ष टिक नही सकेगा । अत उन्होंने अपने शिष्यो को सस्कृत पढाने का निश्चय किया, परन्तु मुनिश्री के सामने यह कठिनाई हुई कि स्थानकवासी समाज मे तो कोई साधु या श्रावक, शिष्य गणेशीलाल जी व

घासीलाल जी को नियमित रूप से पढाने वाला नही है । वेतन देकर पढाने मे श्रावक आपत्ति उठाते हैं । अत वेतन देकर गृहस्थ से पढाना अच्छा है या इन शिष्यो को अनपढ रहने देना ? आपश्री ने अपने धर्म की रक्षा के लिये, प्रतिवादियो का मुकावला करने के लिये सस्कृत भाषा की जानकारी अनिवार्य समझी । श्रावको के इस प्रश्न पर कि क्या साधु वैतनिक पण्डित से पढ सकता है ? आपने अद्भुत युक्ति से समाधान किया 'मरते वक्त पिता ने पुत्र को कहा— मैं तुम्हारे हित के लिये जो कुछ कर सकता था, किया । अव मैं जाते वक्त अन्तिम समय मे एक शिक्षा दिये जाता हू– "तुम किसी से ऋण मत लेना और न भूखे मरना ।' पिता के देहान्त के वाद पुत्र आर्थिक सकट मे पड गया । सम्पत्ति नष्ट हो गई । मरने से वचने को ऋण लेने के सिवाय और चारा नही । उसने थोडा ऋण लेकर जीवन को मरने से वचाया व ऋण वापिस चुका दिया । इसी तरह क्या आप अपने धर्मगुरुओ को मूर्ख ही वने रखना चाहते हो, क्या धर्म पर मिथ्या आरोपो का निवारण करने हेतु समर्थ नहीं वनाना चाहते हो ? "अनाणी कि काही किवा नाही सेय पावक" (अज्ञानी भला बुरा, हेय उपादेय को क्या समझ सकेगा)— अध्ययन-अध्यापन सावद्य कार्य नही है । मूर्ख रहने की अपेक्षा गृहस्थ से अध्ययन करना कम दोप है । दोप की शुद्धि प्रायश्चित्त द्वारा की जा सकती है । यह है पूज्यश्री की दीर्घदृष्टि व युगप्रवर्तक प्रतिभा, जिसके फलस्वरूप दोनो शिष्यो को पण्डितों द्वारा अध्ययन कराया जाकर प गुणे शास्त्री पी-एच डी व म म अभ्यकर शास्त्री से परीक्षा लिवाई गई तो दोनो व्याकरण मे ८२ प्रतिशत से व साहित्य मे ६७ प्रतिशत से उत्तीर्ण हुए । उन्ही युगद्रष्टा की सूझ के वाद आज इनकी सप्रदाय मे १०० से अधिक साधु-साध्वी विद्वानो के पास उच्च अध्ययन कर रहे हैं व प्रति वर्ष परीक्षा दे रहे है । ये प्रभु के शासन के भावी दीपस्तभ वनेंगे व जनता को सत्य मार्ग पर लगावेंगे ।

चर्वी के वस्त्र का त्याग व खादी धारण :

सवत् १९६७ की वात है जव आपश्री भीनासर विराजते थे । यह ज्ञात होने पर कि मिल के वस्त्रो को चमकीला व मुलामय करने हेतु इन पर चर्वी लगाई जाती है— जिसके पीछे घोर हिंसा होती है तो आपश्री ने मिल के वस्त्रो को सर्वथा त्याग दिया और आजन्म उसका पालन किया व साधुओं को भी खद्दर उपयोग मे लाने का उपदेश देकर उन पर जिम्मेदारी डाली कि यदि अहिंसा को तुमने समझा है, अगर महावीर स्वामी को समझ पाये हो

ती चर्बी के वस्त्रो का सर्वथा त्याग करना चाहिये क्योंकि इसके पीछे पशुओ का कत्ल होता है, महारभ होता है । खादी से जीवन मे सादगी व धर्म की आराधना होती है । आपश्री ने गृहस्थो को भी यही उपदेश दिया । वस्त्रो की आवश्यकता पूर्ति हेतु महात्मा गाधी ने जो चर्खा चलाने का व खादी धारण का आग्रह किया, इससे धर्म की रक्षा, अहिंसा का पालन, गरीबों को रोजी मिलती है, देश की सम्पत्ति विदेश मे जाने से रुकती है, जो सम्पत्ति वहा सिवाय शोषण, विषय वासना के सेवन जैसे महारभ को उत्तेजन करने के अलावा कोई फल नही देती । साधुवर्ग व कई गृहस्थ आज भी आपसे प्रेरणा पाकर खादी धारण कर रहे हैं । कई विधवा बहिनो ने आजन्म खादी अगीकार की है ।

गोरक्षा व गोपालन :

सवत् १९८० मे जब घाटकोपर का होली चातुर्मास व्यतीत कर पूज्यश्री बबई नगरवासियो के अनुरोध पर बबई जाने के लिये दादर पहुचे तो रास्ते मे मांस से भरे हुए टोपले ले जाते पुरुषो को देखा व पूछने पर ज्ञात हुआ कि बादरा व कुरले के कसाईखाने मे जो पशु मारे जाते हैं, उनका मास बेचने को ये टोकरे वाले जाते हैं । उस समय मे प्रति वर्ष १४०००० गायें भैसे कटती थी दूध के व्यापारी घासी लोग जब तक गाय भैस पर्याप्त दूध देती हैं, रखते है । ४–५ सेर दूध ही दें तो ये कसाई को बेच देते है । इनको पालना दुर्भर पडता है । यह सुनकर पूज्यश्री का हृदय द्रवित हो गया । पूज्यश्री ने बबई की ओर पापमय गढ मे पैर रखना पसद नही किया । पुन घाटकोपर लौट गये व जनता को बेचारे मूक पशुओ की रक्षा के लिये दया पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये । गोपालन के लिये शास्त्र की मर्यादानुसार सुन्दर विवेचन किया । प्राचीन श्रावक ४००००–६०००० गायें रखते थे । देश समृद्ध था । खेती पुष्कल होती थी । श्रीकृष्ण दरिद्र नहीं थे, परन्तु गोरक्षा हेतु ही उन्हे चराने ले जाते । गोरक्षा पर ही देश की समृद्धि निर्भर है । गोपालन मे अधिक हानि नही होती । जितना खर्चा उतना दूध । गर्भवती होने के बाद भी सतति वर्धन–बैलो से खेती मे वृद्धि । गोबर पवित्र है । उससे खाद बनता है, घर की सफाई–छाणे आदि होते हैं । गोमूत्र कस्तूरी बराबर माना गया है । गाय का दूध अमृत तुल्य है । जिस माता ने पाला-पोसा उसी का बलिदान कृतघ्नता है, महाहिंसा, महारभ का पाप है । इसकी रक्षा व अन्य प्राणियो की रक्षा करना धर्म है । आर्य कह-लाने वाले ही गोहत्या मे सहायक बनें, उसकी चर्बी लगे वस्त्र पहनें, मांस खाने वालो की वृद्धि होती रहे, फिर गोभक्त कहलाना कहा तक सगत है ? गुरु-

का मक्खन है। हरिकेशी, मेतारज भी चाण्डाल थे। परन्तु अपनी उत्कृष्ट साधना कर आज हमारे लिये पूजनीय हो गये है, उच्चगति को प्राप्त हुए हैं। आपके उपदेशो से जनता की दृष्टि पलटी। उनसे भाईचारा, स्नेह बढा व देश की प्रगति मे आपके विचार बडे सहायक हुए।

स्वतन्त्रता :

सवत् १९८८ मे दिल्ली का चातुर्मास उठने के बाद पूज्यश्री जब जमुना पार वहा के सज्जनो की प्रार्थना पर पधार रहे थे– उन दिनो मे राष्ट्रीय आदोलन जोरो से चल रहा था। प्राय सभी नेता लोग कारागृह में ठूस दिये गये थे। उस समय पूज्यश्री के व्याख्यान धार्मिकता से सगत किन्तु राष्ट्रीयता के रग से ओतप्रोत थे। परस्पर भेदभाव मिट जाने से, सभी प्रकार के श्रोता-गण व्याख्यान सुनने आते। शुद्ध खद्दर के वस्त्र, राष्ट्रीयता से सनी हुई वाणी अपार जनता के हृदय को प्रभावित कर देती थी। धर्माचार्य के रूप मे यह नया राष्ट्रीय नेता सरकार की आखो मे खटकने लगा। सी आई डी गुप्तचर पूज्यश्री के पीछे २ फिरने लगे श्रावको ने पूज्यश्री की गिरफ्तारी होने की आशका से पूज्यश्री को निवेदन किया—'आप अपने व्याख्यानो को धर्म तक ही सीमित रखें— राष्ट्रीय बातो मे सरकार को सन्देह हो रहा है, ऐसा न हो आप गिरफ्तार किये जायें व सारी समाज को नीचा देखना पडे।'

पूज्यश्री ने उत्तर दिया— मैं अपने कर्तव्य को भलीभाति समझता हूँ। मुझे अपने उत्तरदायित्व का भान है। मैं जानता हूँ धर्म क्या है। अधर्म मार्ग पर नही जा सकता परन्तु परतन्त्रता पाप है। परतन्त्र व्यक्ति ठीक तरह से धर्म की आराधना नही कर सकता। मैं व्याख्यान मे प्रत्येक बात सोच समझकर मर्यादा मे रहकर ही कहता हूँ। फिर भी राजसत्ता गिरफ्तार करे तो भय नही। उपसर्ग परीषह सहना हमारा कर्तव्य है। यदि कर्तव्य पालन करते जैन समाज का आचार्य गिरफ्तार हो जाता है तो अपमान की बात नही। अत्याचारियो का अत्याचार सर्वोन्मुख प्रकट हो जायेगा। यह हैं एक 'धर्म केशरी' के निर्भयतापूर्वक हृदयोद्गार, स्वतन्त्रता की वेदी पर धर्म रक्षा हेतु अपने सर्वस्व को बलिदान कर देने की तत्परता। ऐसे ही महापुरुषो ने भारत का गौरव सदा सदा के लिये अक्षुण्ण रखा। राजनैतिक क्षेत्र मे प० जवाहरलाल नेहरू व धार्मिक क्षेत्र मे जवाहराचार्य को जन्म देकर यह भारत माता विश्व की जननी बन गई।

थली प्रान्त मे प्रतिबोध :

बालोतरा, जेतारण व भीनासर आदि क्षेत्रो मे पूज्यश्री ने भाइयो ने

सम्पर्क साधा, तत्र दया दान विनय के प्रति उसमें अन्धश्रद्धा देखकर भावरोग से पीडित इन भाइयो पर करुणा आई । इन मान्यताओ को सुधारने हेतु आपश्री ने १६८४ के मार्गशीर्ष मे जनकल्याण हेतु थली प्रात की ओर विहार किया। क्षेत्रीय वेदना व मानवीय उपसर्ग कष्टो की परवाह न कर आप वहा पधारे और उन भाइयो को व आम जनता को प्रतिबोध दिया ।

अल्पारंभ-महारंभ :

प्राचीन लोगो मे ऐसी धारणा बैठ गई थी कि दूसरे से काम कराने की अपेक्षा अपना काम अपने आप करने मे अधिक पाप है । प्रत्यक्ष की अल्प के सामने अप्रत्यक्ष की बडी से बडी हिंसा को नगण्य समझते थे । पूज्यश्री ने इस विषय मे गहन चिन्तन व शास्त्र-रहस्य को समझ उद्बोधन दिया कि शास्त्र, नीति व व्यवहार मे सभी में विवेक व यतना को महत्व दिया गया है । विना विवेक धर्म कैसे टिक सकता है ? सुबुद्धि प्रधान ने विवेक से गदा पानी भी शुद्ध कर राजा को प्रतिबोध देकर धर्मनिष्ठ बना दिया । स्वय यतना से रोटी बनाने की अपेक्षा हलवाई से पुडिया खरीद कर खाने मे अधिक पाप है। चर्खा कातने की अपेक्षा चर्बी के वस्त्र पहिनने मे अधिक पाप है । अल्पारभ-महारभ का प्रश्न उन्ही के लिये है जो सम्यक् दृष्टि हैं । मिथ्या-दृष्टि के लिये यह प्रश्न नही उठता । वह तो विवेक यतना के अभाव से महारभी है । सम्यक् दृष्टि के लिये जहा विवेक है, यतना है, अल्प पाप है । विवेक के अभाव मे चाहे कार्य छोटा भी हो महा पाप है । चेटक, उदायन-भरत चक्रवर्ती विवेक के कारण राज्य पालन करते हुए अल्पारभी हैं । तदुल मच्छ अविवेक से शक्ति न होते हुए भी महारभी नरकगामी हुआ । घृत का व्यापारी पशुओ के अधिक मरने पर भाव बढना चाहता है तो महारभी है । चर्म बेचने वाला-पशु कम मरे तो भाव बढेगा ऐसाचाहता है तो अल्पारम्भी है । जल्लाद अपनी ड्यूटी समझ पश्चात्तापपूर्वक अपराधी को फासी पर चढाता है तो अल्पारभी है । दर्शक लोग फासी पर चढाने का अनुमोदन करते हैं तो महारभी है ।

समाज-सुधार :

पूज्यश्री ने मृत्युभोज, बाल विवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय, दहेज प्रथा के विरोध मे सचोट प्रहार किये । इन वृथा कुरीतियो से समाज रसातल पहुँच रही है। शादी पर नृत्य आदि आडम्बरों में वृथा धन खर्च न किया जाकर शुभ प्रवृत्तियो मे धन का उपयोग करने की प्रेरणाएँ दी, फलस्वरूप कितने ही जनहितैषी कार्य प्रारम्भ हुए--- जीवरक्षा सस्था-गुरुकुल-जनहितैषी सस्था-

चिकित्सालयादि । विधवाओ के आदर सम्मान हेतु प्रतिबोध दिया— "आपके घर मे विधवा वहिनें शील–देविया हैं । इनका आदर करो— पूज्य मानो— इनको खोटे दुखदायी शब्द न कहो— ये शील देविया पवित्र हैं, पावन हैं— मगलमय हैं । इनके शकुन मगलमय हैं । याद रखो यदि समय पर न चेते, विधवाओ की मानरक्षा न की, इनका निरन्तर अपमान करते रहे— इन्हे ठुकराते रहे तो शीघ्र ही अधर्म फूट पडेगा । आपका आदर्श धूल मे मिल जायेगा । आपको ससार के सामने नतमस्तक होना पडेगा । आपने व्याजखोरी, कालावजारी का घोर विरोध किया ।

ब्रह्मचारी वर्ग :

पूज्यश्री ने अपने उर्वर मस्तिष्क से जिनशासन की सेवा व सिद्धांतो के प्रचार-प्रसार हेतु एक ब्रह्मचारी–वर्ग की योजना सुझाई जो साधु व गृहस्थ के वीच का ब्रह्मचारी वर्ग हो, जो गृहस्थ कार्यों से निवृत्ति पा देश-विदेश मे जैन धर्म का प्रचार-प्रसार कर सके । यह साधु वर्ग का काम नही । वे अपने व्रत व मर्यादा अक्षुण्ण रीति से पाल सकें, यह आवश्यक है। उन्हे इस काम मे न डाला जावे । यद्यपि पूज्यश्री की यह योजना उस वक्त कार्यरूप मे न परिणत हो पाई परन्तु आचार्यश्री की जन्म शताब्दी पर कार्तिक शुक्ला ४ दिनाक ७–११–७५ को देशनोक मे इस योजना ने मूर्त स्वरूप ले लिया । कई सदस्यो ने अपने नाम लिखा 'वीर सघ' को चालू करा दिया है ।

राजा महाराजा व राष्ट्र-नेताओं से भेंट :

सवत् १९७१ मे जलगाव के चातुर्मास मे सेनापति वापट जो वेरीस्टर व आई सी एस ओफिसर थे, नौकरी छोड देशभक्त हो गये । सादगी व ईमानदारी का जीवन यापन करते थे । आपश्री के उपदेश सुन परम श्रद्धालु वने । सवत् १९७२ मे अहमदनगर मे आपश्री का व्याख्यान प्रोफेसर राममूर्ति ने सुन सूर्य के सामने अपने को जुगनू स्वीकार निरामिष भोजन व ब्रह्मचर्य पालन से ऐसा शक्तिशाली वन सकना वताया । इसी वर्ष अहमदनगर मे लोकमान्य तिलक ने आपश्री से भेंट की । 'गीता रहस्य' मे जो 'जैनधर्म केवल निवृत्तिमार्गी साधु के लिये लिखा' गृहस्थ मोक्ष नही पा सकना लिखा इस पर पूज्यश्री ने समाधान दिया– जैन धर्म वेष पर महत्त्व नही देता । गृहस्थ अनासक्ति व इन्द्रियजय से मुक्त हो सकते हैं 'गृहस्थ लिंग सिद्धा' आदि प्रकाश डाल 'तिलक' जी को समाधान दिया । उन्होंने धारणा पलटी व भविष्य मे शुद्धि करने का आश्वासन दिया । सवत् १९७८ मे रतलाम नरेश पूज्यश्री के व्याख्यान मे आये । खादी के विषय मे जो आप की घृणात्मक धारणा थी,

पूज्यश्री का उपदेश सुन दूर हो गई । संवत् १९८४ मे बीकानेर मे चातुर्मास मे वहाँ के दीवान सर मन्नुभाई मेहता ने भेंट की । राउंड टेबुल कानफरेंस में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत मे जाने पर आपको न्याय व सत्य का पक्ष ले निडर होने के लिये प्रतिबोध दिया । वही चातुर्मास उठने पर प० मदनमोहन मालवीय जी ने भेंट कर प्रसन्नता व्यक्त की । दिनांक २६-१०-३६ (संवत् १९९३) को राजकोट मे महात्मा गांधी आपके दर्शन करने आए और कहा, अहमदाबाद था तब से ही आपके दर्शन का इच्छुक हूँ । यहाँ आकर बिना मिले कैसे जा सकता हूँ ? लोग मुझे घेर लेते हैं । मेरी इच्छा आपके उपदेश मे आने की थी । पूज्यश्री ने दीवाल घडी के सामने संकेत कर कहा—मशी-नरी चलाने वाले तो आप ही हैं । जनता आपके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलेगी । दि १३-१०-३६ को सरदार पटेल ने आपश्री के दर्शन किये । गांधी सप्ताह चल रहा था । पूज्यश्री ने कहा— गांधीजी द्वारा प्रदर्शित उपाय, खादी को अपना कर देश को समृद्ध बनाने के उपाय मे सहयोग देना सच्ची सेवा है । पटेलजी ने हर्ष प्रकट कर जनता को पूज्यश्री के उपदेशो को कृत्य मे लाने का अनुरोध किया । दिनांक ४-१-३८ को मोरवी नरेश आपश्री की सुखसाता पूछने आये । ३-४ बार राजकुमार सहित व्याख्यान मे पधारे । दि २६-३-३८ (१९९५) को मोरवी मे चातुर्मास की विनती हेतु अहमदाबाद, मोरवी नरेश पधारे । चातुर्मास मोरवी होने पर दर्शनार्थियो के आवास यान आदि की सब व्यवस्था राज्य की ओर से की गई । सर प्राणजीवन सी रामआ भाई ने निःस्वार्थ भावना से जामनगर मे पूज्यश्री के पैर की सूर्यचिकित्सा आदि की ।

साहित्य-सेवा :

पूज्यश्री ने उत्कृष्ट साहित्य सेवा की है—जो 'जवाहर किरणावलियो मे संग्रहीत है । श्रावक के १२ व्रतो को जिस सुन्दर व अद्यतन शैली मे वर्णन किया है, उसने जैन आचार प्रणाली के महत्त्व को बढ़ा दिया है । अहिंसा व सत्य आदि का वर्णन प्रत्येक भावुक को गद्‌गद् कर देता है । 'धर्म व्याख्या' मे आपने अति कुशलता दिखाई है । 'स्थानांग' सूत्र के आधार पर आपने जो ग्रामधर्म, नगरधर्म, देश व राष्ट्रधर्म पर अनुपम व्याख्या की है, भावी जनता को सदा मार्गदर्शन करती रहेगी । भूत व वर्तमान का मेल बैठाने मे आप सिद्ध-हस्त थे । सती चंदनबाला, हरिश्चन्द्र तारा का रोमांचकारी चित्र सा देख अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है । साहित्य आरंभ कर जब तक पूरा नही पढ़लें— मन को सन्तोष नहीं होगा । राजकोट व्याख्यान संग्रह—जामनगर व्याख्यान

सग्रह, प्रशसनीय हैं। श्री सूयगडागसूत्र सटीक आपके अगाध शास्त्राध्ययन व प्रतिभा बुद्धि का सूचक है। भगवतीसूत्र पर कुछ अश प्रकाशित हुए हैं। पाण्डित्यपूर्ण शास्त्र का निचोड है। 'भ्रमविध्वसन' ग्रन्थ मे प्रतिपादित जैनधर्म के अहिंसा-दया दान आदि सिद्धान्तो व मान्यताओ के खडन रूप आपने 'सद्धर्म मडन' नामक ग्रन्थ प्रगाढ विद्वत्ता, सूत्र प्रमाण सहित सयुक्तिक रचा। यह कृति भक्तजनो के लिये अमर रहेगी। ऐसी ही 'अनुकम्पा विचार' की पुस्तक आपश्री की अद्भुत अनुपम सेवा की स्मृति सजोए रखेगी।

मूल्यांकन : -

पूज्यश्री जवाहराचार्य जी की कथनी व करनी एक थी। आध्यात्मिक, सामाजिक, नैतिक व व्यावहारिक उन्नति के लिये आपने प्रबोध व विशिष्ट दृष्टि प्रदान कर युगद्रष्टा–युगस्रष्टा–युगप्रवर्तक का कार्य किया। मानव समाज सदा के लिये उसका ऋणी रहेगा। आप वीर, वीर, प्रभावक तथा जैन सस्कृति के सतत पहरेदार हैं। आपकी व्याख्यान शैली व व्यवहार आदर्श स्वरूप का रहा है। आपके प्रवचन क्रान्तिकारी एव सुधारना के विचार को लिये रहे हैं। आपके गुणो को लेखनीबद्ध करना मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिये सागर मे से रत्न निकालने जैसा असभव है तथापि भक्तिवश श्रद्धा से नतमस्तक हो यह यत्किञ्चित् स्मरण–पुष्पो की श्रद्धाजलि सविनय अर्पित है।



दु खों का रोना मत रोओ। हाय दु ख, हाय दु ख मत चिल्लाओ। ससार मे अगर दु ख हैं तो उन पर विजय प्राप्त करने की क्षमता भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। रोना तो स्वय ही एक प्रकार का दु ख है। दु ख की सहायता से ही क्या दु खों को जीतना चाहते हो ?

भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी

● श्री मिट्ठालाल मुरड़िया

राष्ट्रव्यापी स्वातन्त्र्य आन्दोलन :

देश मे आजादी की लड़ाई–लडी जा रही थी । स्वदेश–प्रेम का वातावरण वन रहा था । प्रेम, एकता और मैत्री की लहर फैल रही थी, मातृभूमि की रक्षा के लिए हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, जैन और ईसाई तिरगे झण्डे के नीचे एकत्र होकर एक स्वर से वोल रहे थे—

इन्कलाव जिन्दा वाद ।
भारत माता की जय हो ।
महात्मा गाधी की जय हो ।

इन्कलाव–जिन्दावाद के नारो से नभ गूज रहा था । सभी के तन मे देशप्रेम और देशभक्ति का जोश वढ रहा था, भुजाए फडक रही थी, आततायियो को खदेडने के लिए सर्वत्र एक ललकार थी । सभी मन और दिल से एक होकर विचार गोष्ठिया चलाते और वार–वार मत्रणा के लिए वापू के पास जाते । आजादी के केन्द्रविन्दु वापू ही थे । चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिह आजादी के मैदान मे आ चुके थे ।

राष्ट्रव्यापी भावनाएं

सरदार पटेल, राजेन्द्र वावू, मौलाना आजाद, शरत्चन्द्र वोस, पुरुषोत्तमदास टडन, शकरराव देव, सरोजनी नायडू, जयप्रकाश वावू और प जवाहर लाल नेहरू अग्रेज सरकार की ज्यादती का घोर विरोध कर स्वतन्त्रता की माग कर रहे थे । देशव्यापी आन्दोलन छिडा हुआ था । हम मरेंगे मिटेंगे, किन्तु आजादी लेकर रहेंगे । वर्धा सावरमती आश्रम मे वैठा एक वूढा मार्गदर्शन दे रहा था ।

इधर मैथिलीशरण गुप्त की "भारत–भारती" प्रकाशित हो चुकी थी ।

उधर बालकृष्ण शर्मा नवीन "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये, और माखनलाल चतुर्वेदी कारागृह मे बैठे हुए कोयल से वार्तालाप कर रहे थे । इस देशव्यापी आन्दोलन और व्यापक धूम से अग्रेज सरकार घबडा गई । एक ओर सडको पर देशप्रेमियो की टोलिया निकलती और दूसरी ओर गिरफ्तारी के लिए गोरी पलटनें हथकडिया लेकर पीछा करती ।

अग्रेज सरकार की ज्यादती के खिलाफ और स्वदेश प्रेम के लिए ये देश के दीवाने अपने मूल्यवान विदेशी वस्त्रो की होली जला रहे थे । उनकी आखो मे उस समय वस्तु का मूल्य न था, देशप्रेम का मूल्य सर्वाधिक था । भारत माता के लिए जीना और मरना ही उनका मन्त्र बन गया था ।

आचार्यश्री के क्रान्तिकारी विचार

ऐसे समय मे आचार्यश्री जवाहरलाल जी म ने देशप्रेम, देशभक्ति और स्वदेशी वस्तुओ को अपनाने का आह्वान किया । राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत उनकी वाणी सर्वत्र गूजती हुई जन-जीवन को जगा रही थी । अपने शिष्यो सहित गाव-गाव, नगर-नगर घूम कर आचार्यश्री ने लोक-जीवन को आन्दोलित किया और क्रान्तिकारी विचार दिये । जन समुदाय की विचार शक्ति को व्यापक बनाया । फलस्वरूप देश मे चेतना की नूतन लहर दौड पडी ।

आचार्यश्री ने लोगो को सकल्प दिलाया कि हम देशप्रेम के लिए त्याग करेंगे, खादी पहिनेंगे, अपने दोष त्यागेंगे, एकता बढावेंगे, प्रेम और भ्रातृत्व का प्रचार करेंगे, जीवन मे सत्य और अहिंसा का उपयोग करेंगे, प्रलोभनो मे नही फसेंगे, न्याय और नीतिमय व्यवहार करेंगे, जीवन मे विवेक, शान्ति और सतोष को महत्त्व देकर देश के लिए सब कुछ करेंगे । अपना कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व निभावेंगे । तन, मन और धन से जनता की भलाई करेंग ।

आचार्यश्री की क्रान्तिकारी वाणी का जबरदस्त असर पडा । रूढिया लडखडाने लगी, आडम्बर दो टूक हुए, परपराए टूटने लगी, चली आ रही मिथ्या धारणाए मिटने लगी, प्रदर्शन खत्म हुए और अधश्रद्धा समाप्त हुई । समाज मे भारी परिवर्तन हुआ । देशप्रेम जागा, सद्भावनाए बढी ।

आचार्यश्री ने सामान्य जन-जीवन मे आशा की ज्योति जगाई, जनता को जन्तर-मंतर से, जादू-टोना से, भैरू भवानी के चक्कर मे हटाया । दोषो से मुक्ति दिलाकर साहस भरा ।

जबरदस्त आचार्य :

आचार्यश्री ने अपने व्यापक ध्येय को लेकर सन्तो को ललकार कर

कहा कि श्रमण–रागद्वेप, लोभ, मोह सयोग–वियोग सुख–दुख और जय–पराजय से परे होते है। जो निर्ग्रन्थ मानव–जीवन के कल्याण का उपदेश न देकर जनता को गुमराह कर गलत मार्गदर्शन देते हैं, वाणी की चालाकी से, शब्दो के चमत्कारो से और नाना प्रपच रचकर छलमय मन्त्रणा करते हैं, वे सच्चे निर्ग्रन्थ कैसे हो सकते हैं ? जिनका मन और दिल पवित्र है और जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य के वल से काम–क्रोध, लोभ–मोह की सभी गाठे तोड देते हैं—वे ही सच्चे निर्ग्रन्थ है। आचार्यश्री इसी श्रेणी के श्रमणाचार्य थे।

थली प्रान्त के लोकजीवन मे आचार्यश्री ने शान्ति और विवेक के साथ क्रान्ति का शख फूका और प्रेम का विगुल वजाया। एक ओर आचार्यश्री देशप्रेम के भाव भरे व्याख्यान देते, दूसरी ओर तप–त्याग की वात कहते, एक ओर ज्ञानध्यान का प्रचार करते, दूसरी ओर मैरु भवानी से मुक्ति दिलाते, एक ओर देशोद्धार की वार्ता चलाते और दूसरी ओर खादी का महत्त्व समझाते। एक श्रमणाचार्य व्रत और नियमो की मर्यादा मे रहकर, देश के लिए, धर्म के लिए जितना कर सकता है, उन्होने किया।

आचार्यश्री आत्मज्ञानी थे, प्रवुद्ध विचारक थे, क्रान्तिकारी सत थे, गहरे तत्त्वज्ञ और जीवनदर्शी थे, सन्त–समुदाय और लोक जीवन के दिव्य प्रकाश थे, देश के उज्ज्वल नक्षत्र थे, चिन्तन, मनन, त्याग, अनुभव और भावना के विराट व्यक्तित्व थे। उनकी वार्ता मे राष्ट्रीयता, विचारो मे क्रान्ति, पहनावे मे खादी, व्यवहार मे सौहार्द्र और व्याख्यानो मे भारतीय–सस्कृति की झलक थी।

भारतीय सस्कृति मे दो धाराए वह रही थी। एक धारा का प्रहरी सभी सस्कृतियो का घोल वना रहा था और दूसरी धारा का प्रतिष्ठापक मिली हुई सभ्यताओ, सस्कृतियो, धर्म व्यवस्थाओ, दर्शन दृष्टियो और नैतिक विचारो को व्यापक रूप दे रहा था।

दोनो धाराओ के दोनो प्रवाही अपने अपने पथ पर वढे जा रहे थे। दोनो का पथ पृथक् था। पर दोनो का उद्देश्य एक। अनेकत्व मे समत्व। दोनो का मार्ग महान् सकटो से घिरा था, भयकर विपत्तियो से पूर्ण था।

एक यूरोपीय कला, साहित्य, धर्म और दर्शन का अध्येता था और दूसरा भारतीय वाङ्मय और धर्म–दर्शनो का पारगत मर्मज्ञ था। एक नेता था, दूसरा महर्षि था। दोनो ही प्रतापी और स्वनामधन्य थे। एक प जवाहरलाल नेहरू और दूसरे श्रीमद् जवाहराचार्य, दोनो ही सत्य प्रेम एकता शान्ति अहिसा के लिए आये और दोनो ही जीवन मे सर्वांगीण सफलता प्राप्त कर देश के कण–कण मे समा गये।

एक देश के लिए दौड-धूप करता, कभी सरदार पटेल से वार्तालाप, कभी बापू से मन्त्रणा, कभी मौलाना आजाद से परामर्श । दूसरा लोक जीवन को जगाने के लिए पर्यटन, वन के समतल मैदानों और ऊबड-खाबड भू-खण्डों को पैदल पार करता हुआ, नवकार मंत्र और मांगलिक सुनाता हुआ जीने की कला सिखाता ।

दोनों को कोई कामना, कोई स्वार्थ न था । दोनों को किसी धन की, मान की, पद की और प्रतिष्ठा की इच्छा न थी । दोनों का कार्य ही उनकी ख्याति का मेरुदण्ड था । दोनों घुमक्कड, फक्कड और मस्त जीव थे ।

एक बाहरी साधनों से देश को आजाद कराना चाहता था और दूसरा ज्ञान, ध्यान, त्याग, तप और वैराग्यपूर्ण भाव तरंगों से आजादी का वायुमण्डल बना रहा था । एक टकटकी लगा कर देख रहा था और दूसरा आंखें बन्द कर लोकजीवन के हृदय में बैठकर उसके मर्म का पता पा रहा था । अपनी मौन साधना से भावात्मक एकता, देश प्रेम और विचारों के व्यापक मंगल भाव भर रहा था । अप्रत्यक्ष रूप से आजादी की भूमिका बना रहा था ।

तप:पूत महर्षि :

एक का सम्पूर्ण कार्य साधनों पर निर्भर था, दूसरे का कार्य भाव-तरंगों पर अवलम्बित था । अपनी साधना द्वारा इस तपःपूत महर्षि ने प्रच्छन्न रूप से देश के लिए जो कार्य किया है, इतिहास उसे कभी नहीं भूल सकता ।

इस तरह आचार्यश्री ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य का प्रकाश फैला रहे थे । इनके व्यापक और विशाल साहित्य से पूरी एक आलमारी भरी जा सकती है । 'जवाहर किरणावलिया' जैन धर्म, कथा साहित्य और अमूल्य विचार-कणों का महासागर है ।



> दृश्य को देखकर द्रष्टा को भूल जाना बड़ी भारी भूल है । क्या आप बतलाएंगे कि आपकी उंगली की हीरे की अंगूठी अधिक मूल्यवान् है या आप ? — पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

आचार्यश्री के नारी सम्बन्धी विचार

● डॉ० शान्ता भानावत

नारी का माहात्म्य :

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म राष्ट्र की दिव्य विभूति थे । अपने धर्म के प्रति उनके मन मे जितनी श्रद्धा थी राष्ट्र के प्रति भी उतनी ही थी । वे सदैव राष्ट्रीय चारित्र उत्थान मे बाधक तत्वो को उखाड फेंकने की प्रेरणा लोगो को देत रहते थे । पूज्यश्री ने अनुभव किया कि समाज मे नारी की स्थिति बडी शोचनीय है । वह अशिक्षित है, फलस्वरूप अनेक कुरीतियो की शिकार है। इस कारण वह पुरुपवर्ग द्वारा पददलित समझी जाती है । " ढोर गवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी ", पैर की जूती, " जा तन की झाई पडें अधा होत भुजग " कह कर कवियो ने नारी के प्रति जो हीन भावना व्यक्त की, आचार्यश्री उसे सहन नही कर सके। नारी–समाज के उत्थान हेतु उन्होंने बहुत बडी क्राति की । उन्होने पुरुपवर्ग से स्पष्ट कहा कि जब तक तुम नारी को अपने समान नही समझोगे, कभी उन्नति नही कर पाओगे । नारी माहात्म्य को प्रकट करने वाले उनके शब्दो को देखिये—स्त्रिया जगत् जननी हैं। इन्ही की कूख से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुप समाज पर नारी का बडा भारी उपकार है । उस उपकार को भूल जाना, उनके प्रति अत्याचार करने मे लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है । स्त्री पुरुप का आधा अग है । क्या यह सभव है कि किसी का आधा अग बलिष्ठ और आधा अग निर्बल हो ? जिसका आधा अग निर्बल होगा, उसका पूरा अग निर्बल होगा । अगर पहले महिला–समूह की स्थिति सुधारने का प्रयत्न नहीं किया तो आप पुरुप समाज की उन्नति के लिये कितने ही प्रयत्न करें, असफल रहेंगे ।

नारी–शिक्षा की आवश्यकता :

वर्तमान मे अशिक्षा के कारण ही नारी पर्दा प्रथा, बालविवाह, अनमेल

विवाह, दहेज–प्रथा जैसी कुरीतियों की शिकार बनी हुई हैं । स्त्री जाति को इन कुरीतियो और हीन भावनाओ से मुक्त कराने के लिये आचार्यश्री ने स्त्री–शिक्षा को भी उतना ही आवश्यक माना जितना पुरुष शिक्षा को । बहुत से लोग स्त्री–शिक्षा का विरोध करते हैं और कहते हैं कि स्त्रियो को पढा–लिखा कर क्या करना, उनसे नौकरी थोडे ही करवानी है ? ऐसे स्त्री–शिक्षा विरोधी लोगो से आचार्यश्री ने स्पष्ट कहा—कन्या–शिक्षा का विरोध करने वाले उसके सबसे बडे शत्रु हैं । समाज रूपी वृक्ष को जीवित और सदैव हरा–भरा बनाये रखने के लिये बालिकाओ की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है ।

गृह–कार्य : सर्वोत्तम व्यायाम :

आचार्यश्री ने बालिकाओ के पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त उनकी शारीरिक स्वस्थता के ज्ञान की ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया । उनका कथन था कि निर्बल और सदैव बीमार रहने वाली महिलाए हाथ से काम नही करती । पश्चिमी सस्कृति के प्रभाव से वे गृहकार्य मे लज्जा का अनुभव करती हैं । आचार्यश्री ने ऐसी नारियो को उद्बोधन देते हुए कहा कि— भारतीय महिलाए विदेशी महिलाओ का अधानुकरण नही करें । वहा नारियो के लिये व्यायाम, खेल–कूद आदि की सुव्यवस्था है । पर भारत मे ऐसी व्यवस्था नही है । इसलिये भारतीय नारी के लिये सर्वोत्तम उपयुक्त व्यायाम गृहकार्य है । चक्की चलाना अच्छा व्यायाम है । इससे छाती, हृदय आदि मजबूत होते हैं । उनका कहना था कि जिस देश की स्त्रिया कमजोर व निर्बल होगी, उनसे गुणवान और शक्तिमान सतान की आशा कैसे रखी जा सकती है ?

नारी बोझ नहीं, शक्ति बनें :

स्त्री–शिक्षा का जब हम समर्थन करते हैं तो हमारे मन और मस्तिष्क मे एक प्रश्न उठता है—नारी–शिक्षा कैसी हो ? क्या वे भी पुरुषो की भाति ही पढ–लिख कर अपना कार्यक्षेत्र घर मे बाहर बनायें ? आचार्यश्री का कहना था—शिक्षा का अर्थ यह नही कि आप अपनी बहू–बेटियो को यूरोपियन लेडी बनावें और न यही अर्थ है कि उन्हे घूघट मे लपेट रखें । मैं स्त्रियो की ऐसी शिक्षा का समर्थन करता हूँ जैसी सीता, द्रौपदी, ब्राह्मी सुन्दरी को मिली थी, जिसकी बदौलत वे प्रात स्मरणीया बन गई । नारियो को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये जिसके कारण उन्हें अपने कर्त्तव्य का, अपने उत्तरदायित्व का, अपनी शक्ति और महत्ता का बोध हो सके जिससे वह अबला न रहे—प्रबला बनें । पुरुषो पर बोझ न रहे, शक्ति बनें । वे कलहकारिणी न रहे, कल्याणी बनें ।

आचार्यश्री वैसे प्राकृतिक दृष्टि से तो नारी का कार्यक्षेत्र घर मानते थे पर उनकी यह भी मान्यता थी कि नारी मे भी पुरुष की भाति आवश्यकता पडने पर जीविकोपार्जन करने की क्षमता होनी चाहिये क्योकि आजीविका की सबसे बडी समस्या उन्हे सदैव दु खी बनाये रखती है । उन्होने नारी को पुरुषों से कभी हीन नही माना । वे कहा करते थे—वीरता मे स्त्रिया पुरुषो से कम नही है । यद्यपि वे स्वभावत कोमल होती हैं पर समय पडने पर वे मृत्यु के समान भयकर हो सकती हैं । त्याग और वलिदान की भावना उनमे पुरुषो से अधिक ही होती है ।

आधुनिक शिक्षा-पद्धति से नारी का मानसिक विकास तो हुआ है, आज शिक्षिता स्त्रिया घर से वाहर नौकरी करना तो चाहती हैं पर आदर्श गृहिणी और सफल माता वनना नही चाहती । उनका कहना था कि केवल पुस्तकीय शिक्षा भारतीय नारी के लिये पूर्ण नही है । भारत की उन्नति केवल चारित्र वल से ही सम्भव है । चारित्रिक निष्ठा से ही नारी अपनी सतान को गुणवान, धर्मवान और चारित्रवान वना सकेगी ।

वालविवाह · सब रोगो की जड :

जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक सस्कार होते हैं । उनमे विवाह-सस्कार का अपना एक विशेष महत्त्व है, क्योकि इसके वाद जीवन मे एक नया परिवर्तन आ जाता है । इसमे पति-पत्नी मिल कर एक नवीन मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं । इस अवस्था मे उनके ऊपर अनेक उत्तरदायित्व आते हैं । इन उत्तरदायित्वो की अनुभूति वडी उम्र मे ही होती है । हमारे समाज मे वाल-विवाह की जो परम्परा चल पडी थी, उसका आचार्यश्री ने डट कर विरोध किया । वे कहा करते थे - वाल-विवाह का सभी धर्म-ग्रथो मे निषेध किया गया है ।

हमारे भारत मे गर्भावस्था मे ही वालक-वालिका के सगाई-सवन्ध तय हो जाने और एक वर्ष से कम उम्र के वालक-वालिका के विवाह हुए सुने जाते हैं । जो माता-पिता अपने वालक-वालिका का वाल-विवाह करते थे उनसे आचार्यश्री स्पष्ट कहते थे—कि तुम अपना कर्त्तव्य भुला कर अपने वच्चो के प्रति अन्याय कर रहे हो । अपने क्षणिक सुख के लिये अवोध वालक-वालिकाओ को भोग की धधकती ज्वाला मे भस्म होने को छोड रहे हो । वाल-विवाह का दुष्परिणाम वताते हुए उन्होंने कहा— वाल-विवाह और समय से पूर्व दाम्पत्य सहवास से शारीरिक विकास रुक जाता है । आयुर्वल भी कम हो जाता है । सदैव उन्हें रोग-शोक घेरे रहते हैं । असमय मे ही दात गिर

जाते हैं, वाल पकने लगते हैं, नेत्र ज्योति क्षीण हो जाती है। थोडे ही समय मे पुरुष नपुसक और स्त्री-स्त्रीत्व से रहित हो जाती है। इस प्रकार पति-पत्नी का जीवन दु खमय हो जाता है।

आचार्यश्री ने समाज मे वढती हुई विधवाओ की सख्या का कारण भी वाल-विवाह ही माना है। उन्होंने कहा-समाज मे चार-चार छह-छह और आठ-आठ वर्ष की विधवाए दिखाई देना वाल-विवाह का ही कटु फल है। जिस पति से अवोध वालिका ने कोई सुख नही पाया है, हृदय मे जिसकी स्मृति ही नही है, उम पति के नाम पर एक वालिका मे वैधव्य पालन कराने का कारण वाल-विवाह ही है। उन्होने स्पष्ट कहा—छोटे-छोटे वच्चो को गृहस्थ रूपी गाडी मे जोत कर उन पर ससार का वोझ लादने वालो को हम निर्दय ही कहेगे।

वृद्ध-विवाह और दहेजप्रथा, समाज के लिए कलंक :

वाल-विवाह की भाति वृद्ध-विवाह और दहेजप्रथा भी समाज पर कलक हैं। आचार्यश्री ने अपने व्याख्यानो मे इन कुप्रथाओ का घोर विरोध किया। वे कहा करते थे—वाल-विवाह, अनमेल-विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति समाज मे अशाति उत्पन्न करती है, लोगो को दुराचार की ओर प्रवृत्त करती है। आचार्यश्री समाजहित पर अपना चिन्तन देते तो लोग उनका विरोध करते और कहते साधुओ को सासारिक वातो से क्या मतलव ? वे यही उत्तर देते कि यद्यपि इन सासारिक वातो से साधु लोग परे हैं लेकिन साधुओ का धार्मिक-जीवन नीतिपूर्ण ससार पर ही अवलवित है।

आदर्श दाम्पत्य जीवन :

आदर्श दाम्पत्य जीवन हिन्दू समाज मे सदैव अनुकरणीय रहा है। जिनके दाम्पत्य सम्वन्ध पवित्र होते है वे ही सच्चे—पति-पत्नी हैं। आचार्यश्री ने दोनो की पवित्रता को समान महत्त्व देते हुए कहा है—जो पुरुष परधन और परस्त्री से सदैव वचता है उसका कोई कुछ नही विगाड सकता। स्त्रियो के लिये पतिव्रत धर्म है तो पुरुषो के लिये पत्नीव्रत धर्म।

आचार्यश्री ने नारी की फैशनपरस्ती, हाथ से काम न करने तथा मनोरजन के नाम पर अश्लील उपन्यास और चित्रपट देखने की प्रवृत्ति की कटु आलोचना की और जगह-जगह चेतावनी दी कि नारी इन दुष्प्रवृत्तियो से वचे।

एक माता सौ शिक्षको के वरावर :

माता के रूप मे नारी सदैव वदनीया और पूजनीया रही है। महावीर,

गाधी, वाशिंगटन आदि महापुरुषों ने मातृत्व शक्ति को वडा महत्त्व दिया है। माता ही अपने वच्चो को आचरणनिष्ठ और चारित्रवान वना सकती है। एक माता सौ शिक्षको का काम देती है। इसलिये आचार्यश्री ने माता की शिक्षा और सुसस्कारो पर वल देते हुए कहा—सतान मे सुसस्कारो के सिचन के लिये माता को अपना जीवन सस्कारमय अवश्य वनाना चाहिये। प्रत्येक मा को यह न भूल जाना चाहिये कि उसका पुत्र भविष्य का भाग्यविधाता है। मातृ-प्रेम ससार की सर्वोत्तम विभूति है, ससार का अमृत है। जो लोग पत्नी के वशीभूत हो माता के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं, वे निम्न दर्जे की कृतघ्नता सूचित करते हैं।

परिवार-नियोजन की समस्या आज भारत की राष्ट्रीय समस्या है। देश मे वढती हुई जन-सख्या को रोकने के लिये अनेक उपाय किये जा रहे हैं। आचार्यश्री ने इस समस्या के समाधान के लिये कहा—सन्तति-नियमन के लिये ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है।

पर्दा : नारी के लिए अभिशाप :

पर्दा नारी जीवन के लिये अभिशाप है। अवगुण्ठनवती नारिया आवरण मे रह कर अपना स्वास्थ्य तो चौपट कर ही देती हैं साथ ही हीन भावनाओ की शिकार भी हो जाती हैं। जिस समाज की नारी पर्दे मे रहेगी वह समाज कभी उन्नति नही कर सकता। इसलिये आचार्यश्री ने कहा—पर्दे का हटना केवल अकेली स्त्रियो की गुलामी दूर करने के लिये ही आवश्यक नहीं, वरन् समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिये भी अत्यन्त आवश्यक है।

शुद्ध सादगीमय जीवन :

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म सा नारी के शुद्ध सादगीमय जीवन के समर्थक थे। वे कहते थे— त्याग, सयम और सादगी मे जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्विकता है वह भोगो मे कहा ? वे अपने प्रवचनो मे प्राय कहा करते थे—वहिनें गहनो का मोह त्याग दें और सादगी के साथ रहे। असली सौन्दर्य आत्मा की वस्तु है। आत्मिक सौन्दर्य की सुनहरी किरणें जो वाहर प्रस्फुटित होती हैं, उन्हीं से शरीर की सुन्दरता वढती है।

नारी का शृंगार :

नारी को कैसा शृगार करना चाहिये ? इस ओर लक्ष्य करके आचार्यश्री ने कहा— वहिनो, धैर्य रूपी महावर लगाओ और लगाओ ललाट पर यश का तिलक। परोपकार की मिस्सी लगाओ, ज्ञान-रूपी सुगन्धित द्रव्य

का प्रयोग करो, शुभ विचारो की फूलमाला धारण करो । इस प्रकार का सिंगार करके सम, दम, सतोष के आभूषण को धारण करो । इसी प्रकार उन्होंने कहा—मुख मे पान-बीडा दवा लेने से स्त्री की प्रतिष्ठा नही वढती। प्रतिष्ठा वढाने के लिये स्त्री को विनय सीखना चाहिये ।

आचार्यश्री ने नारी को उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य की स्मृति भी दिलाई है। पानी छान कर पीना चाहिये, आटा हाथ से पीसा हुआ काम मे लेना चाहिये, क्योकि जो आटा मशीनो से पीसा जाता है, वह सत्त्व रहित हो जाता है। बिना छना पानी स्त्रियो को काम मे नही लेना चाहिये। इससे जीव हिंसा तो होती ही है, साथ ही अनेक प्रकार के रोग भी फैलते हैं। आचार्यश्री ने रात्रि-भोजन त्याग और मादक पदार्थों के सेवन से दूर रहने की भी प्रेरणा दी ।

आजकल स्त्रियो मे बारीक वस्त्र पहनने की एक होड सी चल पडी है— नायलोन, चिनौन, शिफोन, जारजट आदि की बारीक साडिया पहनने मे नारी अपना गौरव समझने लगी है । आचार्यश्री ने ऐसी नारियो को स्पष्ट कहा—बारीक कपडे निर्लज्जता का साक्षात प्रदर्शन है । कुलीन स्त्रियो को यह शोभा नही देता । इसलिये प्रत्येक स्त्री-पुरुष को मोटे कप े (खादी) पहनने चाहिये । मोटे-कपडे मजदूरी करना सिखाते हैं और महीन वस्त्र मजदूरी करने से मना करते हैं । महीन वस्त्र पहनने वाली बहिन अपना बच्चा गोद मे लेने मे भी सकोच करती है, इस डर से कि कही धूल न लग जाये । इस प्रकार बारीक वस्त्र सतान-प्रेम भी छुडा देता है ।

दृष्टि की उज्ज्वलता :

आज के युग मे परदोपदर्शन की प्रवृत्ति अधिक वढ गई है । आज नारियो मे गृह-कलह, मानसिक तनाव, ईर्ष्या, द्वेष आदि कलुषित भावनाए घर कर रही हैं। उसका कारण दूसरो के दोषो को देखना ही है । पारिवारिक जीवन को सुन्दर, सुखद बनाने के लिये आचार्यश्री सदैव फरमाया करते थे— आप अपनी दृष्टि ऐसी उज्ज्वल बनाइये कि आपको दूसरो के गुण दिखाई दें । अवगुणो की तरफ दृष्टि मत जाने दीजिये । हा ! अवगुण देखने हैं तो आप अपने ही देखो । अपने अवगुण देखने से उन्हे त्यागने की इच्छा होगी और आप सद्गुणी बन सकेंगे ।

नैतिक शिक्षा के अभाव मे आज की नारी दिग्भ्रमित है, किंकर्त्तव्यविमूढ है । वह पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से चुंधिया कर वहा के सांस्कृतिक

मूल्यो को ग्रहण कर रही है और भारत के उपयोगी परम्परागत आदर्शों को विस्मृत करती जा रही है। परिणाम यह हो रहा है कि घर का खान-पान विकृत हो रहा है। घर मे बूढे माता-पिता की उपेक्षा हो रही है, बच्चो को सही मार्गदर्शन नही मिल रहा है। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म के हृदय मे महिला-समाज मे सुधार और जागृति लाने की एक तडफ थी। उन्होंने अपने व्याख्यानो मे नारी-शिक्षा, विवाह और उसका आदर्श, दाम्पत्य, मातृत्व, ब्रह्मचर्य, पर्दा, आभूषण-प्रियता, नारी-जीवन के उच्च आदर्श जैसी बातो पर सुन्दर, सरस, रोचक और प्रवाहमयी भाषा मे प्रकाश डाला। बीच-बीच में सती-साध्वी नारियो के जीवन के आदर्शों की विवेचना करने से आचार्यश्री की प्रेरणाएं और भी रोचक और प्रभावशाली बन गई हैं। आचार्यश्री ने सती राजमती, सती मदनरेखा, रुक्मिणी-विवाह, हरिश्चन्द्र-तारा, अजना, चदनबाला जैसे स्वतत्र आख्यानो को लेकर भी नारियो को उनके कर्त्तव्य और आदर्शों की स्मृति दिलाई है। आचार्यश्री के इन ग्रन्थो के स्वाध्याय से महिला-समाज को आज भी नया दिशा-बोध प्राप्त होता है।



बहिनो ! शील का आभूषण तुम्हारी शोभा बढाने के लिए काफी है। तुम्हे और आभूषणो का लालच नही होना चाहिए। आत्मा की आभा बढाओ। मन को उज्ज्वल करो। हृदय को पवित्र भावनाओ से अलंकृत करो। इस मासपिंड (शरीर) की सजावट मे क्या पड़ा है ? शरीर का सिंगार आत्मा को कलकित करता है। तुम्हारी सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

बहुआयामी व्यक्तित्व

● श्री प्रतापचन्द जैन

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म के दर्शनो का सौभाग्य तो मुझे कभी मिला नही परन्तु उनके विषय मे पढा अवश्य है । 'समणसुत्त' की गाथा ३३७ के अनुसार साधु वह है जो सिंह के समान निर्भीक गर्जना करे, वृषभ के समान भद्र भी हो । हाथी के समान स्वाभिमानी होते हुए मृग के समान सरल भी हो। सागर के समान गम्भीरता हो तो चन्द्रमा के समान शीतलता भी हो। श्री जवाहरलाल जी महाराज ऐसे ही साधु थे। थे तो वे स्थानकवासी आचार्य श्री हुकमीचन्दजी महाराज की परम्परा के, परन्तु थे बड़े ही उदार-मना और ब्राड माइण्डेड । उनका प्रचार क्षेत्र स्थानकवासी धर्म की सीमा मे ही बन्धा न रह कर, व्यापक था। यहा तक कि राष्ट्रीयता से भी ओत-प्रोत थे।

राष्ट्रीयता तक कार्य क्षेत्र होने के कारण वे लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, विनोबा भावे, सरदार पटेल और जमनालाल जी बजाज सरीखे अनेक चोटी के राष्ट्रीय नेताओ के निकट सम्पर्क मे आये। वे साधु की मर्यादाओ का पालन करते हुए निर्भीकतापूर्वक अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोद्योग, स्वदेशी और खादी तथा मद्यनिषेध का कार्य करते रहे । कहते हैं कि उनकी इन गतिविधियो के कारण सरकारी गुप्तचर उनके पीछे लगे रहते थे और उनकी गिरफ्तारी की शका बनी रहती थी, परन्तु उन्होने कभी भय नही माना । परतन्त्रता उनकी दृष्टि मे पाप और गुलामी स्वतन्त्र-धर्म साधना मे बाधक । ऐसे निर्भीक और कर्मनिष्ठ थे वे ।

आपका कथन था कि जैन साधु की चर्या आसान नही है बड़ी कठिन है । उन्हे अपरिग्रही रह कर बहुत सी मर्यादाओ का पालन करना पड़ता है । समिति और गुप्तियो को पालना पड़ता है । वे पच महाव्रतो के धारी होते है । लोकमान्य तिलक और महात्मा गाधी ने भी सयम, तप और त्याग

की दृष्टि से जैन साधुओ को भारतीय समाज मे सर्वश्रेष्ठ माना है।

आचार्यश्री जी साधु-सख्या की वहुलता विपुलता को महत्व नही देते थे। उनके लिये तो साधु के त्याग और उसके चारित्र की उच्चता का ही महत्त्व था क्योकि ऐसे साधु ही पद की गरिमा को, उसकी श्रेष्ठता को बनाये रखने मे सक्षम हो सकते हैं। बहुसख्यक होते हुए भी यदि वे शिथिलाचारी हो जायेगे तो उससे पद का गौरव घटेगा, प्रतिष्ठा गिरेगी।

जैन धर्म को पालने वाले दो वर्ग है—एक श्रावक और दूसरा श्रमण (साधु)। उन्होने अनुभव किया कि समाज सुधार के कार्य का गुरुतर भार साधु समाज को ही उठाना पडता है जो उचित नही, क्योकि ऐसा करने मे जिस ससार को वे छोडते हैं, उसी की ओर पुन झुकाव होने लग सकता है। फलस्वरूप चारित्र पालन के प्रति उनमे शिथिलता आ जाने का खतरा है। वे चाहते थे कि श्रावको को भी यह भार उठाना चाहिये, सारा भार साधुओ पर नही छोडना चाहिए। परन्तु दुनियादारी के कामो मे बुरी तरह फसे रहने के कारण वे इस कार्य को निष्पक्ष रह कर नही कर सकते। तब इस दृष्टि से कि समाज सुधार का काम भी चलता रहे और श्रमणो पर अधिक भार न पडे, उन्होने सोचा कि श्रमणो और श्रावको के बीच अपरिग्रहियो और ब्रह्मचारियो के एक तीसरे वर्ग की स्थापना से यह जरूरी काम हो सकता है। यह वर्ग सामाजिक, शिक्षा प्रचार और साहित्य प्रकाशन के साथ साथ धर्म के काम भी कर सकेगा। ऐसा त्याग और सेवाभावी वर्ग न तो साधु की कठोर मर्यादाओ चर्याओ से बन्धा रहेगा और न वह घर गृहस्थी के झझट मे ही फसा रहेगा। जहा साधु नही पहुच पाता, वहा वह आसानी से पहुच भी सकेगा। विदेशो मे पहुच कर जैन धर्म के प्रचार व प्रसार द्वारा धर्म की प्रभावना भी कर सकेगा। भले ही इस वर्ग की स्थापना से साधुओ की सख्या मे कुछ कमी आ जाय।

उन्होने ज्ञान को सर्वाधिक महत्त्व दिया, चाहे वह कहा से भी प्राप्त हो। जब वे महाराष्ट्र मे थे तब उन्होने अपने कई शिष्यो को अजैन विद्वानो से सस्कृत का ज्ञान कराया था। उनका कहना था कि धर्म का ज्ञान धर्म से ही जाना जा सकता है बगैर सही ज्ञान के सही चारित्र भी सम्भव नही। उनका कहना था कि पूर्वजो से हमने जो कुछ सीखा है उसका लाभ हम वर्तमान के सन्दर्भ मे लें। उसे समयानुकूल गति प्रदान करें। तभी हम समाज, देश और मानव का हित कर सकेंगे।

वे कहते थे कि जैनधर्म केवल निवृत्तिमार्गी नही है, वह तो प्रवृत्तिमार्गी भी है। वह अशुभ से निवृत्ति और शुभ मे प्रवृत्ति का उपदेश देता है। विषयो मे प्रवृत्ति न हो, इसी पर उसने बल दिया है। वे कहते थे कि जैनधर्म मे मुक्तिमार्ग के पथिक के लिये किसी खास वेश की अनिवार्यता, आवश्यकता नही है। भावो की शुद्धि और स्व पर का भेद विज्ञान ही सब कुछ है। यह वेश तो एक बाहरी मार्का मात्र है जो एक धोखा भी हो सकता है, अन्तरग का वास्तविक द्योतक नही। अनासक्तिमुक्त गृहस्थ आसक्तियुक्त साधु से महान होता है। कहा भी है कि —

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोही जैन मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुने ॥

पुराणो मे कथा आती है कि आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के सुपुत्र सम्राट भरत चक्रवर्ती को दीक्षा के लिये वस्त्र और आभूषण उतारने उतारते ही केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था। एक और कथानक आता है कि एक मेढक भग महावीर की वन्दना के लिये जाते हुए राजा श्रेणिक के हाथी के पैर से कुचला जाकर स्वर्ग को गया। आचार्य अमितगति तो यहा तक कह गये है कि —

शीलवन्तो गता स्वर्गे नीच जाति भवा अपि ।
कुलीना नरक प्राप्ता शील–सयम–नाशिन ॥

समाज मे चली आ रही कई गलत हानिकारक मान्यताओ को उन्होंने निर्भीकता और दृढता के साथ ललकारा और समाज को सही दिशा दिखाई। खेती के उपकारी काम मे जैनियो को हिंसा दिखाई देने लगी तो उन्होंने उनसे कहा कि 'यह कार्य तो ससार के प्राणियो को मासाहार से बचाकर उनकी भूख को शान्त करने वाला है। खेती और गोपालन मे महा हिंसा का दोष नही लगता। इसे विवेक के साथ करो, परोपकार की भावना हो।" यदि खेती के काम मे महा हिंसा होती हो चतुर्थ काल के प्रारम्भ मे भगवान ऋषभ मानव को कल्पतरुओ के ह्रास पर इसकी शिक्षा ही क्यो देते ?

महाराष्ट्र मे आचार्यश्री जी ने लोगो को बाल–वृद्ध विवाह, मृत्यु भोज और कन्या विक्रय जैसी कई रूढ प्रथाओ के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाने की प्रेरणा दी थी। उन्हे मिल के और रेशमी कपडे न पहन कर खादी पहनने के लिये भी प्रेरित किया था। हजारो पर उनका प्रभाव पडा।

श्रावकों को वे वरावर उचित महत्त्व देते रहे । श्रावक को उनकी दृष्टि में साधु परम्परा का रक्षक और उस कठिन मार्ग पर चलते रहने मे उनका सहायक मानते थे । अत वे श्रावको को सही मार्ग पर चलते रहने के लिए सन्मार्ग भी वताते रहते थे ।

पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज ने आपको युवाचार्य वनाने की घोषणा तो तभी करदी थी जव कि वे महाराष्ट्र मे विराजमान थे, परन्तु उन्हे इस पद पर प्रतिष्ठित करने का समारोह रतलाम मे सन् १९१९ मे हुआ था ।

राष्ट्र हित, समाज सुधार, शिक्षा और साहित्य प्रकाशन का जो भी काम किया पूरी तरह अनासक्त रह कर किया । प्रतिष्ठा का मोह उन्हे कभी हुआ ही नही। ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के दु ख–समूह को हरते हैं । उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि ।



दान देकर ढिंढोरा पीटना उचित नही है । जो लोग अपने दान का ढिंढोरा पीटते हैं, वे दान के असली फल से वञ्चित हो जाते हैं । अतएव न तो दान की प्रसिद्धि चाहो और न दान देकर अभिमान करो ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

आचार्यश्री के शिक्षा संबंधी विचार

श्री उदय नागौरी

विचारो के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण क्रान्ति का शखनाद कर जैनाचार्य श्रीमद् जवाहरलाल जी म सा ने हमे नया दिशाबोध दिया। वैचारिक मथन कर आपने साप्रदायिक परिवेश से हट कर सार्वभौमिक सत्य एव तथ्य प्रकट किए। पर्दा प्रथा, शिक्षा, राष्ट्रीयता एव खादी विषयक आपके विचार अपने जमाने से भी आगे थे।

अक्षरज्ञान के साथ कर्तव्यज्ञान :

शिक्षा मानव को प्रकाश देती है और उसके मानसिक एव शारीरिक तन्तुओं को विकसित करती है। जीवन-प्रागण मे वैविध्यपूर्ण समस्याओ का समाधान शिक्षा ही प्रस्तुत करती है। मानव शिक्षित होकर स्वय का तो भला करता ही है परन्तु साथ ही समाज एव राष्ट्र के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है। अत कोरे किताबी ज्ञान पर कटाक्ष करते हुए श्री जवाहराचार्य ने बताया कि अक्षर ज्ञान के साथ कर्तव्यज्ञान की शिक्षा दी जाय, तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।[1]

सुखी एव सफल जीवन की कुजी शिक्षा है। प्रत्येक बालक अपने साथ कुछ जन्मजात प्रतिभा एव शक्ति लिए हुए जन्म लेता है। सच्ची शिक्षा वही है जो सुप्त शक्तियो का विकास कर उसे चरित्र-गठन एव लोक-मगल की भावना की ओर अभिमुख करे।

श्री जवाहराचार्य ने भी उत्तरदायित्व एव कर्तव्य केंद्रित शिक्षा पर जोर देते हुए बताया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमे हमे अपने कर्तव्य का, अपने उत्तरदायित्व का, अपनी शक्ति का एवं अपने स्वरूप का ज्ञान हो सके।[2]

१—जवाहर विचार सार, पृ १६३,
२—जवाहर विचार सार, पृ १६४

शिक्षा एवं शिल्पकला

विद्या का सच्चा रूप है, प्रकाश की वह आभा, जो हमारे मानस के अज्ञानान्धकार को मिटाये एव ज्ञान की ज्योति जगाए । सच्ची शिक्षा वही है जो हमे मन और इन्द्रियो पर सयम सिखाए, निर्मलता एव स्वावलवन की ओर प्रेरित करे तथा जीवननिर्वाह का सम्यक् साधन वताए ।

आज हमे जो शिक्षा प्रदान की जा रही है, उसमे यही कमी है कि पढलिख कर भी व्यक्ति नौकरी की चाह मे भटक रहा है । मुख्य कारण यह है कि वालक को रुच्यानुसार कला, वाणिज्य आदि की शिक्षा नही दी जाती। शिक्षा मे हृदय एव मस्तिष्क प्रकाशमान होने चाहिए पर इसके विपरीत वे दभपूर्ण वनते जा रहे हैं । "सा विद्या या विमुक्तये" के आधार पर हमारे युगाचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा के विचार देखिए—

"जीवन की परतत्रता का प्रधान कारण
शिल्पकला की शिक्षा का अभाव है ।" [3]

स्त्री शिक्षा :

स्त्री–शिक्षा के वारे मे भी श्री जवाहराचार्य के विचार अत्यत महत्त्वपूर्ण हैं । आपने वताया कि जीवन के अर्द्धांग को अपूर्ण या अविकसित क्यो रखा जा रहा है ? ब्राह्मी एव सुन्दरी ने तो हमे लिपि एव गणित का ज्ञान कराया है, उनकी प्रतिनिधि महिलाओ को शिक्षा से वचित रखना न्यायपूर्ण नहीं है। आपके मतानुसार स्त्री–शिक्षा का यह अर्थ नही कि हम अपनी वहू–वेटियों को यूरोपियन लेडी वनावें और नही उन्हें घू घट मे लपेटे रहे ।

शिक्षा और विश्ववन्धुत्व :

निस्सन्देह शिक्षा हमे सीमित दायरे से ऊपर उठने की प्रेरणा देती है । हम अपने सम्पर्क मे आने वाले हर व्यक्ति के प्रति स्नेह एव भ्रातृत्व की भावना रख सकें, तभी हमारी शिक्षा सार्थक होगी । श्री जवाहराचार्य के विचार इस सम्वन्ध मे द्रष्टव्य हैं—

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को समझे, उसे विकसित करे और धीरे–धीरे उसका दायरा विशाल से विशालतर होता चला जाय । [4] उन्होंने शिक्षा का व्यापक महत्त्व वताते हुए कहा, "जिस शिक्षा

३—जवाहर विचार सार, पृ १५६
४—जवाहर विचार सार, पृ १५४

की बदौलत गरीवो के प्रति स्नेह, सहानुभूति और करुणा का भाव जागृत होता है, जिससे देश का कल्याण होता है और विश्वबन्धुत्व की ज्योति अन्त करण मे जाग उठे, वही सच्ची शिक्षा है ।" [५]

शिक्षक :

शिक्षक समाज का निर्माता होता है । यदि वह वालक के मानसिक, वौद्धिक, शारीरिक एव सास्कृतिक विकास के लिए प्रयत्नशील रहे तो शिक्षक समाज और राष्ट्र का स्वरूप ही परिवर्तित कर सकता है । शिक्षक की महत्ता पर जोर देते हुए पूज्य श्री जवाहराचार्य ने बताया–शरीर मे मस्तिष्क का जो स्थान है, वही स्थान समाज मे शिक्षक का है । शिक्षक विधाता है, निर्माता है । [६]

सक्षेप मे कह सकते हैं कि क्रान्तद्रष्टा श्री जवाहराचार्य के विचार शिक्षा के बारे मे अत्यन्त व्यावहारिक एव अनुकरणीय थे । हमे इनका जीवन मे प्रयोग करना चाहिए ।

५–वही, पृ १५४

६–जवाहर विचार सार, पृ १५६



भारत का सद्भाग्य है कि यहा के किसान, धनवानो की तरह ठगविद्या नही सीखे है अन्यथा भारतवर्ष को कितनी कठिनाइयो का सामना करना पडता ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

श्रीमद् जवाहराचार्य का समाज-क्रान्ति दर्शन

● श्री श्रोंकार पारीक

महापुरुष समाज के पथ-प्रदर्शक होते हैं। जब-जब समाज मे अनाचार व्याप्त होता है, लोक-सघ विघटनावस्था को प्राप्त होकर स्वैराचारी रूप धारण कर लेता है, लोग सकुचित-सम्प्रदायवाद के घेरे मे, धर्म की सात्विक भावना का अपहरण करने से नही चूकते, समाज मे कुरीतिया, अमानुषिक परिग्रही वृत्ति का बोल-बाला हो जाता है, तब-तब इस रत्नगर्भा धरा पर मानव-समाज को उद्बोधन देने, उसमे सचेतना करने तथा समग्र राष्ट्रीयता, मानव-एकता और सर्वधर्म समभाव का शखनाद करने के लिए—श्रीमद् जवाहराचार्य जैसे क्रातिचेता, युग-पडित अवतरित होते हैं।

भारतीय समाज जैनधर्म का चिरऋणि रहेगा कि इसके साधक मुनियो, तपस्वियो एव आचार्यों ने इस राष्ट्र की जनता को, अपनी सवर-निर्जरा साधना के बल पर न केवल जाग्रत, उद्बोधित और सचेत ही किया बल्कि इनके शुद्धतम जीवनाचारो और व्यवहारो से, पराधीन और स्वाधीन भारत का समाज युगान्तरकारी परिवर्तनो के प्रबल झझावातो को अडिग रह कर सह सका है।

युग पर युग बीते, भारतीय समाज के समक्ष जैनधर्म की लोक पीठ से एक विराट व्यक्तित्व, जीवन की समस्त साधुता का प्रतीक बन—श्रीमद् जवाहराचार्य के रूप मे प्रगटित हुआ। सोए हुए समाज को जगाने के लिए जो हजारो-हजार कोस गाव-गाव घूमा। कदाचार मे लीन लोगो को, निस्पृह-भाव से, उस महासत ने समाज का सात्विक सत्य और धर्म का सात्विक तत्त्व समझाया कि पूरे युग में हलचल मच गई। पराधीन था भारत तब। पल्लवग्राही पडित नहीं समाज की लोक महिमा मे मडित उस महान् आत्मा ने जो धर्मोपदेश

दिए, जो ज्ञानधारा प्रवाहित की, उसने लाखो लोगो के जीवन वदल डाले। राजतन्त्रो की काया का कल्प करने वाला, व्यसनग्रस्त लोगो को सदाचारी वनाने वाला, हिंसक कसाइयो की आत्मा को झकझोर देने वाला - युगधर्म-प्रतिभा और पाडित्य के पौरुष धनी से जिस जमाने मे लोकमान्य तिलक सरीखे महान् स्वातन्त्र्य सेनानी और सरस्वती-पुत्र-पत्रकार प्रभावित हुए, उस दिव्यात्मा का समाज क्राति दर्शन आज के महान् समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, सार्वभौम लोकतान्त्रिक भारत गणराज की जनता का जीवन सम्वल सिद्ध होकर रहेगा।

● समाज-क्राति दर्शन की बीस-सूत्री योजना :

युग प्रतिभाओ की दूरदर्शिता भी कमाल की है। आचार्य-प्रवर श्रीमद् जवाहराचार्य के समाज दर्शन पर, इन दिनो ग्रथ प्रणयन हेतु जव से मैं स्वाध्याय सम्भूत होकर आचार्यश्री के व्याख्यान साहित्य का आलोडन कर रहा हू, मेरे सम्मुख "जीवन-धर्म" शीर्षक एक ग्रन्थ खुला पडा है। धर्म धुरी-समाज सत्योन्वेषक पडित—प्रवीण आचार्य प्रवर के जोधपुर व्याख्यानो के एक अध्याय पर मेरी आखें चकित-चकित हुई टिकी हैं। अध्याय का शीर्षक है—"परमात्म प्राप्ति के सरल साधन"। इस अध्याय को मैं भारतीय समाज का स्वाध्याय कहूँ तो अतिशयोक्ति नही होगी। कारण इसमे आचार्यश्री ने जिन बीस-सूत्रो का प्रणयन किया है उनको परिदृश्य मे रख कर सुविज्ञ पाठक वहुमान्य-प्रचारित "बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम" का परिप्रेक्ष्य जरा ध्यानपूर्वक चिन्तन क्षेत्र मे ग्रहण करें तो एक गजव का साम्य, एक अभूतपूर्व युगानुधारणा का प्रतिविम्ब पाठक के मानस पर पडेगा।

आखिर आज हम जिस "वीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम" को राष्ट्रीय जीवनधारा का पुण्यमय योग मान रहे है, उसका दूरगामी लक्ष्य तो समाज-क्रान्ति और सास्कृतिक सक्राति की पृष्ठभूमि ही तो तैयार करना है।

श्रीमद् जवाहराचार्य "परमात्म प्राप्ति के सरल साधन" रूप सर्व जनहिताय जो युगान्तरकारी वीस-सूत्र प्रतिवोधित कर गए हैं, वे है—

(१) जुआ न खेलना।
(२) मासाहार न करना।
(३) शराव न पीना।
(४) वेश्या गमन नही करना।
(५) परस्त्री-गमन नही करना।
(६) शिकार न खेलना।

(७) चोरी न करना ।
(८) वैवाहिक अवसरो पर अश्लील गाने न गाना ।
(९) मृत्यु पर दिखावटी रोना–धोना न मचाना ।
(१०) वालको मे डर न विठाना ।
(११) मृत्यु–भोज नही करना ।
(१२) अन्न की वर्वादी नहीं करना ।
(१३) दहेज नही लेना–देना । ठहराव नहीं करना ।
(१४) निर्धारित उम्र मे ही विवाह करना ।
(१५) विवाह मे नर्तकिया नही नचाना ।
(१६) अष्टमी व चतुर्दशी के क्रम से प्रतिमाह चार उपवास रखना ।
(१७) अस्पृश्यता त्यागना ।
(१८) आलसी न वनना ।
(१९) सयमित जीवन जीना ।
(२०) चर्वी वाले कपडे न पहनना ।

समाज का तलपट—

हस्तामलकवत्— सुस्पष्ट ये वीस–सूत्र भारतीय–समाज के समक्ष आज भी चुनौती के रूप मे प्रस्तुत है । क्या समाज इस सूत्र–पथ पर चल रहा है ? क्या हम अपने पूज्य गुरुदेव के प्रति सत्यत निष्ठावान हैं— उनके उपदेशो के पावन परिप्रेक्ष्य मे ? वहुत दु ख का विषय है कि जनता मे मासाहार एव मद्यपान की प्रवृत्ति वढ रही है । प्रत्यक्षत या परोक्षत सामाजिक विषय–लोलुपता दिनोदिन वढ ही रही है । हा, सरकार की सजगता से वन्य जीवो व अन्य प्राणियो की शिकार–हिंसा पर जरूर अकुश लगा है, पर गौ–जीव हत्याघर देश भर मे लाइसेंस मुदा खुले ही हुए हैं । चोरी तो कला वन गई है । वैवाहिक अवसरो पर अश्लीलता का नग्न–प्रदर्शन, लोक–सास्कृतिक परम्पराओ का गला घोटता जा रहा है । सिनेमा, क्लव केवरे, रगीन–रातो के जलसो से महानगरो का सात्विक जीवन भग हो गया है । वच्चो को 'हाऊ' का भय आज भी जताया जाता है । मृत्यु–भोज भी चोरी–छिपे जारी है । अन्न की वर्वादी का यह हाल है कि यदि हम भारतीय इसे रोकें तो देश अन्न के मामले मे पूर्णतया स्वावलम्वी हो जाय । दहेज–निषेध का नारा अभी जोरो पर है पर इस समाजासुर का आतक दवा नही है । वाल–विवाह, वृद्ध–विवाह वहुविवाह अभी भी जारी हैं । विवाहो मे अनाप–शनाप खर्च होता ही है । अन्न-ऊर्जा और पेयजल के विश्वव्यापी सकट की किसी को परवाह नही है । उपवास

एवं अन्य तपस्याओं का क्रम जैन घरानों में निःसन्देह विद्यमान है पर नई पीढ़ी' ' ' । अस्पृश्यता गांवों–नगरों में छद्मत अभी भी है । आलसीपन से छुटकारा पाने में हम लगे हैं । जीवन में असंयम का बोलबाला है । चर्बी लगे वस्त्र घर–घर में सुशोभित हैं ।

क्षमा सहित निवेदन है कि श्रीमद् जवाहराचार्य प्रणीत उक्त बीस–सूत्री समाज–सुधार योजना सूत्रों का जो तलपट ऊपर प्रस्तुत किया गया है— उस कटु सत्य को हमें स्वीकारते हुए क्या यह विचार नहीं करना चाहिए कि हम फिर किस मुंह से अपने महापुरुषों की दुहाई देते हैं ! केवल जैन–समाज को नहीं, पूरे भारतीय समाज को अब गहरे आत्मालोचन की युगीन आवश्यकता है ।

समाज–सुधार की अवधारणा :

दान और समाज–क्रांति घर से शुरू होती है। स्वतंत्र भारत मापगशूरों से अब थर्रा उठा है, घबरा उठा है । अब तो हमें अपने पुण्यश्लोक महात्माओं, महामनाओं एवं वीतराग–तपस्वियों, संतों, साधकों एवं आचार्यों के उपदेशों, संदेशों, व्याख्यानों तथा उनकी व्याख्याओं को आज के सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक धार्मिक परिप्रेक्ष्य में अंगीकार करना चाहिए । लकीर के फकीर हम नहीं बनें । मार्क्स और एंजील के पीछे अन्धविश्वासी हम क्यों बनें ? हम अपने आचार्यों द्वारा घोषित, आर्षग्रन्थों में उल्लिखित और लोकानुलोक प्रचलित साम्यवाद पर गर्व क्यों न करें । समाज–सुधार की रट लगाने वालों की अच्छी खासी खबर लेते हुए युग–प्रवर्तक श्रीमद् जवाहराचार्य ने कहा है—

"लोग अपनी-अपनी जातियों में सुधार के लिए कानून बनाते हैं । जातीय सभाओं में प्रस्ताव पास करते हैं । लेकिन जब तक हृदय में हराम आराम से बैठा है तब तक तुम से क्या होना–जाना है ? समाज सुधारक वर्षों से समाज–सुधार हेतु चिल्लाते हैं, मगर सुधार कहीं नजर नहीं आता, उसका कारण यही है कि लोगों के दिलों से हराम नहीं गया है । उसके निकले बिना व्यक्तियों का सुधार नहीं हो सकता और व्यक्तियों के सुधार के अभाव में समाज–सुधार का अर्थ ही क्या है ?"

[देखिए ग्रन्थ–' जीवनधर्म ', अध्याय 'कहां से कहां', पृ० २८६]

श्रीमद् जवाहराचार्य ने आज से युगों पूर्व समाज में नारी के सम्मानजनक स्थान के महत्त्व, बच्चों की संस्कारिक शिक्षा, गृहस्थ धर्म पालन, सदाचार-

युक्त सयमी जीवन, माधु–सेवा, दीनहीनो के परित्राण, अस्पृश्यता त्याग, खादी धारण, व्याज, जुआ, शराव तथा फैशन त्याग के विविध समाज–सुधार विषयक प्रसगो पर बहुत निर्भीकता से समाज के सत्य को उद्घाटित किया है तथा धन के पीछे दीवाने तथाकथित धर्माडम्बरियो की साहसपूर्वक लोक–भर्त्सना की है ।

एकता की आवाज अमर है

युग–प्रधान श्री जवाहराचार्य की यह स्पष्ट मान्यता रही है कि समाज–सुधार के दायरे मे साधु–साध्विया सीधा हस्तक्षेप न करें। इस प्रकार के हस्तक्षेप से साधु–समाज के निरकुश होने और साधुता के नियमो मे शैथिल्य आ जाने का युगाभास उन्हे जब हुआ तब उन्होने सघ–समाज एकता की दृढता हेतु "वीर–सघ" की परिकल्पना प्रस्तुत की । उसे हम इस जैनाचार्य के जीवन की महान् समाज–क्राति की आधारशिला कह सकते हैं ।

ठीक और ठोस वुनियाद की वात

आचार्यश्री जैन एकता के प्रवल समर्थक थे । उनका मन्तव्य था—
"आप किसी भी फिरके के हो, लेकिन हैं तो जैन ही । आप सब जैन हैं, इसलिए भाई–भाई हैं और आपका निकट का सम्बन्ध है, फिर भी आप लड रहे हैं । भाई–भाई का दल वना कर लडना क्या उचित है ? क्या आपको मालूम नही कि आपके ऐसे कामो से धर्म की निन्दा होती है, धर्म–प्रभावना के कार्य मे रुकावट आती है" ?
— "जीवनधर्म"–पृष्ठ २६ ।

एक भयकर आंधी उठ रही है ।

युगप्रबोधक श्रीमद् जवाहराचार्य के निम्न समाजान्दोलन और क्रान्ति-चेता कथन को पाठक युग–चेतावनी के मर्म के साथ ग्रहण करें—

"मैं किसी पर सख्ती नही करता । मेरा कर्त्तव्य आपके कल्याण की वात वता देना है । आपको जिसमे सुख लगे वही कर सकते हो पर मैं आपको यह चेतावनी देना चाहता हू कि अव पहले जैसा जमाना नही रहा । एक भयकर आधी उठ रही है । यह आधी उठ कर सभी ढोगो को अपने साथ उडा ले जायगी ।"

समय उपस्थित है । आधी उठ चुकी है । युगप्रवर्तक आचार्यश्री का सत्य, समाज–क्राति का नित्य–दर्शन है ।



आचार्यश्री के धर्म सम्बन्धी विचार

● श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

श्रीमज्जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा युगप्रधान महापुरुष तो थे ही साथ ही, युग-प्रवर्तक आचार्य भी थे। आप महात्मा गाधी के समकालीन थे तथा धर्म के लौकिक रूप के विषय मे आप मे और गाधी जी के विचारों मे काफी समानता थी। जिस प्रकार महात्मा गाधी ने अहिंसा-सत्य के सिद्धात को व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र से आगे बढा कर पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय आदि क्षेत्रो की समस्याओ के समाधान के रूप मे प्रस्तुत किया, उसी प्रकार आचार्य श्री ने समूचे धर्म को व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र से आगे बढा कर ग्राम, नगर, राष्ट्र, सघ आदि समष्टि क्षेत्रो की समस्याओ के समाधान के रूप मे प्रस्तुत किया। जिस प्रकार गाधी जी का प्रयास राजनीतिक क्षेत्र के इतिहास मे अनूठी देन है इसी प्रकार आचार्य श्री का प्रयास धार्मिक क्षेत्र के इतिहास मे अनूठी देन है।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा प्रखर-प्रवचनकार, महान् क्रातिकारी युगपुरुष एव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आप सच्चे अर्थो मे धर्माचार्य थे। धर्म ही आपका जीवन था। आपने अपनी अनुभूति के बल पर ससार के समस्त दु खो, विपत्तियो, कठिनाइयो व समस्याओ को दूर करने का उपाय 'धर्म' के रूप मे प्रस्तुत किया। आपने धर्म के सकीर्ण व सम्प्रदाय-परक अर्थ के स्थान पर धर्म का सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सार्वजनीन एव कल्याणकारी रूप निरूपित किया।

धर्म का स्वरूप निरूपण करते हुए आचार्य श्री फरमाते है—

'धर्म भी प्राकृतिक है। वस्तु का स्वभाव है। पयइ सहावो धम्मो' अर्थात् प्रकृति का स्वभाव धर्म है। ऐसी स्थिति मे धर्म मे भेदभाव को गुजाइश कहा है?'

"धर्म मे किसी भी प्रकार के पक्षपात को, जातिगत भेद-भाव को,

ऊंच-नीच की कल्पना को, राजा-रंक अथवा गरीब-अमीर की भावना को तनिक भी स्थान नही है। धर्म की दृष्टि में सब समान हैं।"

"जो धर्म मानव के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करता है, मनुष्य को मनुष्य से जुदा करना सिखलाता है, वह धर्म नही है।"

'धर्म सत्य है और सत्य सर्वत्र एक है, तो धर्म अनेक कैसे हो सकते हैं ? अत धर्म एक है अनेक नही।'

'जहा धर्म के नाम पर खून-खराबी हो, वहा यही समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर ढोंग प्रचलित है।'

"मानव जीवन यदि मकान के समान है तो धर्म उसकी नीव है।"

"धर्माचरण का फल आत्म-शुद्धि है। उसे भूल कर जो धन-धान्य आदि भोगोपभोग की सामग्री की प्राप्ति मे धर्म की सफलता मानता है, वह मूढ है।"

"धर्म परलोक मे ही सुख देने वाला नही, इस लोक मे भी कल्याणकारी है।"

"धर्म मगलकारक ही नही, साक्षात् मगल है।"

"धर्म के नाम पर किये जाने वाले भूतकालीन और वर्तमान कालीन अत्याचार और जुल्म धर्म-भ्रम या धर्मांधता के कारण ही हुए हैं और हो रहे हैं। धर्म तो सदा सर्वदा सर्वतोभद्र ही है। जहा धर्म है, वहा अन्याय, अत्याचार पास ही नही फटक सकते।"

"पाप से पाप का मुकाबला करने पर पापो की परपरा अक्षय हो जायेगी। पाप का क्षय धर्म से ही हो सकता है। धर्म से ही पाप का प्रतिकार करना हितप्रद है।"

"लौकिक धर्म से शरीर की और विचार की शुद्धि होती है और लोकोत्तर धर्म से अन्त करण एव आत्मा की।"

"सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को ग्रहण न किया जाय तो भगवान् के साक्षात् मिल जाने पर भी कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता।"

"निठल्लापन धर्म नही हो सकता। धर्म विवेक-पूर्वक कर्तव्य-पालन मे है।"

"अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म सदा मंगलमय है—कल्याणकारी है।",

आचार्य श्री ने तत्कालीन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को दृष्टिगत कर स्थानाग सूत्र मे आए दस धर्मों के आधार पर युगधर्म का प्रतिपादन किया। वे दस धर्म निम्नलिखित हैं—

(१) ग्राम धर्म (२) नगर धर्म (३) राष्ट्रधर्म (४) व्रत-धर्म (५) कुल धर्म (६) गण धर्म (७) सघ धर्म (८) सूत्र धर्म (९) चारित्र धर्म (१०) अस्तिकाय धर्म।

ग्रामधर्म की महत्ता दिखाते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"जहा ग्राम-धर्म जागृत होता है, वहा जीवन-धर्म की भूमिका तैयार होती है। बीज बोने से पहले खेत जोतना जैसे आवश्यक होता है, उसी प्रकार धर्म-बीज बोने के लिए मनुष्य को ग्रामधर्म की भूमिका तैयार करनी चाहिए क्योकि ग्रामधर्म की भूमिका मे से सभ्यता, नागरिकता और राष्ट्रीयता आदि धर्म के अकुर फूटते हैं।"

नगर धर्म की महत्ता बतलाते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"शरीर और मस्तिष्क मे जितना घना सम्बन्ध है, उतना ही सबन्ध ग्राम-धर्म और नगर-धर्म मे आपस मे है। ग्राम्य जन अगर शरीर के स्थान पर हैं तो नागरिक जन मस्तिष्क की जगह हैं। जब शरीर स्वस्थ होता है, तभी मस्तिष्क स्वस्थ रह सकता है, यह बात कौन नही जानता ?"

राष्ट्र-धर्म का वर्णन करते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"जैसे शरीर का प्रत्येक अग दूसरे अग का पोषक है, उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र विश्व-शरीर का पोषक होना चाहिए।"

"जहा विश्व-कल्याण के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय नीति का निर्धारण होता है, वही शुद्ध राष्ट्रीयता है।"

"राष्ट्र की रक्षा मे हमारी रक्षा है और राष्ट्र के विनाश मे हमारा विनाश है।"

व्रत-धर्म का निरूपण करते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"सच्चा व्रतधारी, सधर्मी पुरुष प्राणो का नाश होने पर भी धर्म का नाश नही होने देता।"

"न्यायवृत्ति रखना और प्रामाणिक रहना, यह सुव्रतियो का गुड्रा-नेस है।"

कुल धर्म का वर्णन करते हुए आचार्यश्री फरमाते है—

"कुलीनता धर्म-साधन का एक अग है । जव तक मनुष्य अपने कुल-धर्म का भली-भाति पालन न करे, तव तक वह श्रुत-चारित्र धर्म और आत्मिक धर्म का आचरण करने मे समर्थ नही हो सकता ।"

इसी प्रकार आचार्य प्रवर ने गण-धर्म, सघ-धर्म, सूत्र-धर्म, चारित्र-धर्म, अस्तिकाय-धर्म, समाज-धर्म, नारी-धर्म, जीवन-धर्म, मानव-धर्म और धर्म-नायको पर वडा ही प्रेरणादायक, रोचक व युक्तियुक्त प्रकाश डाला है । परन्तु आपने युग-धर्म से कितने ही गुना अधिक महत्त्व शाश्वत-धर्म को दिया है । आप श्रीमुख से फरमाते हैं—

"युग धर्म ही सव कुछ नही है, वरन् शाश्वत धर्म भी है जो जीवन को भूत और भविष्य के साथ सकलित करता है । युग धर्म का महत्त्व काल की मर्यादा मे वधा है पर शाश्वत धर्म सभी प्रकार की सामयिक सीमाओ से मुक्त है ।"

शाश्वत धर्म के रूप मे आचार्यश्री ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दान, शील, तप, भाव, सवर, सयम, इन्द्रिय विजय, समभाव, सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, विषय-कषाय-विजय, क्षमा, विनय, सरलता, ऋजुता, अनासक्ति, उदारता, वधुता आदि के रूप मे पर्याप्त प्रकाश डाला है और वही आपके वाङ्मय का मुख्य अग है । इस प्रकार आचार्यश्री ने धर्म के किसी भी अग को अछूता नही छोडा है । आपने धर्म का सर्वांगीण निरूपण कर विश्व की महान् सेवा की है ।



ससार मे एक अवस्था के वाद दूसरी अवस्था होती ही रहती है । अगर उसमे राग-द्वेष का सम्मिश्रण हो गया तो वह सुख-दुख देने वाला होगा । अगर राग-द्वेष का सम्मिश्रण न होने दिया और प्रत्येक अवस्था मे समभाव रखा गया तो कोई भी अवस्था दुःख नही पहुँचा सकती । दुःख से वचने का यही एक मात्र उपाय है ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा.)

विशेष लेख :

कृषिकर्म और जैनधर्म

● पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ

[आचार्यश्री जवाहरलाल जी म सा राष्ट्रीय चारित्र और स्वदेशी भावना के प्रबल समर्थक थे। अल्पारभ–महारभ की तात्त्विक एव समाज शास्त्रीय गूढ विवेचना करते हुए उन्होने जीवन-निर्वाह के लिए कृषिकर्म को गृहस्थ के लिए नैतिक कर्तव्य और विधेय कर्म के रूप मे प्रतिपादित किया था। 'जवाहर किरणावलियो' के सम्पादक प्रसिद्ध जैन विद्वान् प भारिल्ल जी ने हमारे विशेष आग्रह पर सम्बद्ध विषय पर महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं।

—सम्पादक]

जीवन और धर्म :

कृपिकर्म, जैनधर्म से विरुद्ध है या अविरुद्ध, इस बात का विचार करने से पूर्व यह देखना उचित होगा कि धर्म क्या है और जीवन मे धर्म का स्थान क्या है ? क्या धर्म कुछ विशिष्ट व्यक्तियो के लिए है या सर्व साधारण के हित के लिए ? इन प्रश्नो पर सरसरी निगाह डालने से कृपिकर्म का जैन धर्म के साथ जो सबध है, उसे समझना सरल हो जायगा।

धर्म जीवन का अमृत है- जीवन का सस्कार है, अतएव वह जीव-मात्र के हित के लिए है। धर्म का प्रागण इतना विशाल है कि उसमे किसी भी प्राणी के लिए स्थान की कमी नही है। यह बात दूसरी है कि कोई धर्म की छत्रछाया मे न जावे और उससे अलग ही रहने मे अपनी भलाई समझे, मगर धर्म किसी को अपनी शीतल छाया मे आने से नही रोकता। धर्म की अमृतमयी गोद मे बैठकर शातिलाभ करने का अधिकार सब को समान है, चाहे कोई किसी भी जाति का, वर्ग का और वर्ण का हो और किसी भी प्रकार

जीवन निर्वाह करता हो । इतना ही नही, धर्म-साधना का जितना अधिकार मनुष्य को है, उतना ही तिर्यच को भी है । अलवत्ता धर्म साधना की मात्रा प्रत्येक प्राणी की अपनी-अपनी योग्यता पर निर्भर है ।

मध्यकाल मे धर्म के सबध मे जो विविध भ्रातिया उत्पन्न हो गई है, उन भ्रातियो के कारण अनेकानेक रूढिया जन्मी हैं। ऐसी रूढिया अब तक हमारे यहा प्रचुर परिमाण मे विद्यमान हैं। इन रूढियो और भ्रमणाओ के काले बादलो मे सूर्य की भाति चमकता हुआ धर्म का असली स्वरूप छिप गया है। आज समाज का अधिकाश भाग धर्म की वास्तविकता से अनभिज्ञ है ।

धर्म सबधी भ्रातियो मे एक बहुत बडी भ्राति यह भी है कि धर्म व्यतिगत उत्कर्ष का साधक है और सामाजिक व्यवस्थाओ के साथ उसका कोई लेन देन नही है । निस्सन्देह यह धारणा भ्रमपूर्ण ही है, क्योकि व्यक्ति समाज से सर्वथा निरपेक्ष रहकर जीवित नही रह सकता । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर सामाजिक स्थिति का गहरा प्रभाव पडे विना नही रहता। इसके अतिरिक्त अगर धर्म का सबध सिर्फ व्यक्तिगत जीवन के साथ ही होता तो धर्मप्रवर्तक श्री महावीर स्वामी स्वय ही सघ की स्थापना क्यो करते ? सचाई यह है कि सघ या समाज के विना वैयक्तिक जीवन निभ नही सकता । अतएव धर्मशास्त्र मे जहा आत्मधर्म (व्यक्तिगत धर्म) का निरूपण किया गया है, वहीं राष्ट्रधर्म, सघधर्म आदि की भी प्ररूपणा की गई है । आशय यह है कि धर्म का सबध व्यक्ति और समाज दोनो के साथ है। अतएव किसी धार्मिक आचार का विचार करते समय हमे समाज तत्त्व को भूलना नही चाहिए ।

आत्मा अमूर्त्तिक है, अतीन्द्रिय है, यह सब सही है, लेकिन इससे भी अधिक प्रत्यक्ष सत्य यह है कि हमे आत्मा की उपलब्धि शरीर के साथ ही होती है । हम शरीर के विना जीवित नही रह सकते । जो अशरीर हैं उन्हे धर्म की आवश्यकता नही है । जिनके लिए धर्म है वे सब सशरीर है । और शरीर ऐसी चीज नही है, जिसका स्वेच्छापूर्वक चाहे जब त्याग कर दिया जाय । शरीर धर्म साधना का भी प्रधान अग है । शरीर का निर्वाह करना हमारे जीवन की एक ऐसी मूलभूत आवश्यकता है, जिसकी उपेक्षा कोई महान् से महान् आत्मनिष्ठ मुनि भी नही कर सकता ।

चाहे कोई कितना ही नियमशील क्यो न हो, शरीर-निर्वाह के लिए अन्न-वस्त्र की आवश्यकता उसे भी रहती है । वस्त्रो के अभाव मे भी कदा-चित् जीवित रहा जा सकता है, किन्तु अन्न के विना नही । 'अन्न वै प्राणा' यह एक ठोस सत्य है । ऐसी स्थिति मे अन्न उपार्जन करने के लिए किया

जाने वाला कर्म—कृषिकर्म क्या अधर्म है ? जिसके बिना प्राणी की स्थिति नही रह सकती, जिसके अभाव मे जीवन निर्वाह असभव है, जिस पर मनुष्य समाज का अस्तित्व अवलवित है, उस कार्य को एकान्त अधर्म कहना कहा तक उचित है ? जो लोग सतोष के साथ अन्नोपार्जन करके जगत् की रक्षा कर रहे हैं, उन्हे अधार्मिक या पापी कहना क्या अति साहस और विचारहीनता का द्योतक नही है ?

पहले कहा जा चुका है कि धर्म जीवन का अमृत है, किन्तु जो धर्म जीवन का विरोधी है, जीवन का विष है, जीवन निर्वाह का निषेध करता है, वह वास्तविक धर्म नही हो सकता । मगर धर्म वास्तव मे इतना अनुदार नही है । कृषि जैसे उपयोगी कार्य करने वालो को वह अपनी छत्रछाया से वचित नही करता । ऐसा करने वाला धर्म स्वय खतरे मे पड जायगा । अन्न के अभाव मे धर्म का आचरण करने वाले धर्मात्मा जीवित नही रह सकते और धर्मात्माओ के अभाव मे धर्म टिक नही सकता । आचार्य समन्तभद्र ने यथार्थ ही कहा है—'न धर्मो धार्मिकैर्विना ।'

एक ओर हम जैन धर्म की विशालता, व्यापकता और उदारता की प्रशसा करते-करते नही थकते और यह दावा करते हैं कि वह प्राणीमात्र का त्राण करने वाला और इसीलिए विश्वधर्म बनने के योग्य है। दूसरी ओर उसे इतने सकीर्ण रूप मे चित्रित करते हैं कि विश्व को जीवन देने वाले कार्य करने वालो को भी धर्म की परछाई से अलग कर देना चाहते हैं । हमारे ये परस्पर विरोधी दावे चल नही सकते । जिनेन्द्र भगवान् ने प्राणी मात्र के लिए धर्म का उपदेश दिया है । अतएव जिन कार्यो से दूसरो का अनिष्ट नही होता वरन रक्षा होती है, ऐसे उपयोगी कार्य करने वाले धम-वाह्य नही कहला सकते, जबकि वे धर्म का आराधन करने के इच्छुक हो ।

खेती और हिंसा

बहुत से लोगो की यह धारणा है कि खेती का काम हिंसाजनक होने के कारण त्याज्य है । खेती मे असख्य त्रस जीवो का और स्थावर जीवो का घात होता है । अतएव त्रस जीवो की हिंसा का त्यागी श्रावक खेती नही कर सकता । श्रावक को अपने जीवन निर्वाह के लिए अल्प-आरम्भ वाली आजीविका करनी चाहिए, जिससे धर्म की साधना भी हो और जीवन-निर्वाह भी हो । ऐसी विचारधारा से प्रेरित होकर लोगो का ध्यान प्राय सट्टे की ओर जाता है । सट्टे मे न आरभ है, न हिंसा है । न कुछ करना पडता है, न धरना पडता है । न लेन, न देन, फिर भी लाखो का लेन देन हो जाता

है । लोग सोचते हैं—कहां तो असीम हिंसा का कारण महारंभमय खेती और कहा निरारभ सट्टा ।

इस विचारधारा के कारण ही शायद बहुत से जैन गृहस्थ कृषिकाय से विमुख होकर सट्टा करते हैं और उसी मे सतोष मानते हैं ।

इसमे तो सदेह ही नही कि कृषि करने मे त्रस और स्थावर जीवो की हिंसा होती है और अगर जैन धर्म सिर्फ साधुओ का ही धर्म होता तो यह भी निस्सकोच कहा जा सकता था कि कृषिकर्म, जैन धर्म से असगत है । मगर ऐसी बात नही है । जैन धर्म जैसे साधुओ के लिए है वैसे ही श्रावकों-गृहस्थो के लिए भी है । धर्म की उपयोगिता नीचे स्तर (Standard) के जीवो को ऊचे स्तर पर ले जाने मे है । जो धर्म गृहस्थो के भी काम न आ सके वह धर्म ही कैसा ? अविरत सम्यग् दृष्टि जो जैनाचार का तनिक भी पालन नही करता, सिर्फ जैन धर्म पर श्रद्धाभाव ही रखता है, वह भी जैन धर्मी ही कहलाता है । इस प्रकार जब गृहस्थ भी जैन धर्म का अनुयायी है तो प्रश्न उपस्थित होता है कि उसकी अहिंसा की मर्यादा क्या है ? कृषिकर्म उस मर्यादा मे है या उससे बाहर है ?

शास्त्रो मे हिंसा के मुख्य दो भेद बतलाए गए हैं—(१) सकल्पजा हिंसा और (२) आरभजा हिंसा । मारने की भावना से जानबूझ कर जो हिंसा की जाती है वह सकल्पजा हिंसा कहलाती है, जैसे शिकारी की हिंसा । जीवन निर्वाह, भवन निर्माण, पशुपालन आदि कार्यों मे जो हिंसा होती है, जिसमे प्राणियो को मारने का सकल्प नही होता, वह आरभजा हिंसा कहलाती है । आरभजा हिंसा भी दो प्रकार की है—निरर्थक और सार्थक । जो हिंसा बिना किसी प्रयोजन-व्यर्थ की जाती है वह निरर्थक आरम्भजा हिंसा है और जो प्रयोजन विशेष से की जाती है, वह सार्थक आरभजा हिंसा है । साधारण श्रावक सिर्फ सकल्पजा हिंसा और निरर्थक आरभजा हिंसा का त्यागी होता है । वह सार्थक आरम्भजा हिंसा का त्यागी नही होता । अगर वह इस हिंसा का भी त्याग कर बैठे तो फिर वह गृहस्थी का कोई भी काम नही कर सकता । इस स्थिति मे साधु और श्रावक के अहिंसा व्रत मे कोई अन्तर नहीं रह जायगा ।

गृहस्थ धर्म का प्रतिपादन करने वाले उपासक दशाग सूत्र मे आनन्द श्रावक के व्रतग्रहण मे यह पाठ आया है—'थूलग पाणाइवाय पच्चक्खाइ-जाव-ज्जीवाए दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ।' अर्थात् दो करण और तीन योग से आनन्द स्थूल हिंसा का त्याग करता है ।

स्थूल हिंसा किसे समझना चाहिए ? इस प्रश्न का स्पष्टीकरण हेमचन्द्राचार्य ने अपने योगशास्त्र मे इस प्रकार किया है—

'स्थूल–मिथ्यादृष्टीनामपि हिंसात्वेन प्रसिद्धा या हिंसा या स्थूलहिंसा । स्थूलाना वा त्रसाना जीवाना हिंसा स्थूलहिंसा । स्थूलग्रहणमुपलक्षण, तेन निर–पराधसङ्कल्पपूर्वकहिंसानामपि ग्रहणम् ।'

—योगशास्त्र, द्वि प्र श्लोक ६८ (टीका)

अर्थात् जिस हिंसा को मिथ्यादृष्टि भी हिंसा समझते हैं वह स्थूल–हिंसा कहलाती है । अथवा स्थूल जीवो की अर्थात् त्रसजीवो की हिंसा स्थूल–हिंसा कहलाती है । यहा स्थूल का ग्रहण उपलक्षणमात्र है, अतएव निरापराध जीव की सकल्प–पूर्वक की जाने वाली हिंसा भी समझ लेनी चाहिए । इससे आगे आचार्य ने और भी स्पष्ट किया है—

पङ्गुकुष्ठिकुणित्वादि, दृष्ट्वा हिंसाफल सुधी ।
निरागस्त्रसजन्तूना हिंसा सङ्कल्पतस्त्यजेत् ॥

अर्थात् हिंसा करने वाले अगले जन्म मे लगडे कोढी और कुबडे आदि होते हैं, हिंसा का यह अनिष्ट फल देखकर बुद्धिमान् श्रावक को निरपराध त्रस-जीवो की सकल्पी हिंसा का त्याग करना चाहिए ।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रावक के द्वारा होने वाली निम्नलिखित हिंसा से उसका अहिंसाणुव्रत खडित नही होता—

(क) अपराधी त्रस जीवो की सकल्पी हिंसा से ।
(ख) निरपराध त्रस जीवो की आरभजा हिंसा से ।
(ग) स्थावर जीवो की हिंसा से ।

अब हमे यह देखना है कि खेती करने से जो हिंसा होती है, वह उक्त तीन तरह की हिंसा के अन्तर्गत है या नही ? खेती मे होने वाली हिंसा उक्त 'ख' और 'ग' विभाग के अन्तर्गत है । खेती करने वाले का उद्देश्य हिंसा करना नही, वरन खेती करना होता है । इसका प्रमाण यह है कि खेती करने वाले श्रावक को अगर एक हजार रुपये का प्रलोभन देकर कहा जाय कि–हजार रुपये ले लो और इस मकोडे को मार डालो, तो वह ऐसा करने को तैयार न होगा । जो किसान श्रावक खेती करने में अनगिनती जीवो की हिंसा करके सौ–दो सौ रुपयो का धान्य पाता है, वह हजार रुपये लेकर भी एक मकोडे को मारने के लिए तैयार नही होता । इसका कारण यह है कि मकोडे को मारना सकल्पी हिंसा है और खेती की हिंसा आरभी हिंसा है । असख्य जीवो

की आरभी हिंसा होने पर भी श्रावक का अहिंसाव्रत भंग नहीं होता, जबकि एक मकोड़े की सकल्पी हिंसा से भी व्रत का मग हो जाता है। आरभी हिंसा और सकल्पी हिंसा की तुलना करते हुए श्री आशाधर जी 'सागार धर्मामृत' नामक श्रावकाचार मे कहते हैं —

आरम्भेऽपि सदा हिंसा सुधी साङ्कल्पिकी त्यजेत् ।
घ्नतोऽपि कर्षकादुच्चैः पापोघ्नन्नपि धीवर ॥

—सागर० द्वि म.

अर्थात्—समझदार श्रावक आरभ करने मे भी सकल्पी हिंसा का त्याग करे, क्योकि सकल्पी हिंसा अतिशय पापमय है। खेती करने के भाव से पृथ्वी काय आदि की हिंसा करने वाले किसान की अपेक्षा, मछली आदि न मारने वाला किन्तु मारने का सकल्प करने वाला मच्छीमार अधिक पापी है।

वास्तव मे सकल्पी हिंसा मे परिणाम अत्यन्त उग्र और दुष्ट होता है, आरभी हिंसा मे नही होता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि खेती करने से श्रावक का अहिंसाणुव्रत खडित नही होता।

खेती और महारभ

दूसरा प्रश्न अल्पारभ–महारभ का है। कुछ लोगो की साधारण धारणा है कि खेती महारभ का कार्य है, अतएव वह श्रावक के लिए हेय है। किन्तु हमे यह देखना है कि क्या खेती सचमुच महारभ का कार्य है?

आजकल जनता मे अल्पारभ–महारभ के सबध मे अनेक भ्रम फैले हुए हैं। जैन धर्म के उद्भट विद्वान् स्वर्गीय आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज ने इस विषय मे बहुत विस्तृत और विचारपूर्ण व्याख्यान किया है। हम पाठको से उनके इस सबध के व्याख्यान पढ जाने का आग्रह करते है। उन्होने सन् १६२७ मे कहा था—

'मित्रो! एक प्रश्न मैं तुम्हारे सामने रखता हू। बताओ, खेती करने मे ज्यादा पाप है या जुआ खेलने मे? ऊपर की दृष्टि से जुआ (सट्टा) अल्प पाप गिना जाता है। इसमे किसी की हिंसा नही होती। केवल इधर की थैली उधर उठाकर रखनी पडती है। पर खेती मे? एक हल चलाने मे न जाने कितने जीवो की हिंसा होती है? यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि खेती मे छहो कायो की हिंसा होती है।

'मित्रो! उथले विचार से ऐसा मालूम होता है सही पर अगर गहराई मे जाकर विचार करेंगे तो आपको कुछ और ही प्रतीत होगा। आप इस

बात पर ध्यान दीजिए कि जगत् का कल्याण किसमे है ? पाप का मूल क्या है ? क्या सदेह करने की बात है कि खेती के बिना जगत् सुखी नही रह सकता ? खेती से प्राणियो की रक्षा होती है । थोडी देर के लिए कल्पना कीजिए कि ससार के सब किसान कृषिकार्य छोडकर जुआरी बन जाए तो कैसी बीते ?

जिस कार्य से जगत् के प्राणियो की रक्षा होती है, पालन होता है, वह कार्य शुभ है या पाप का ? वह कार्य एकात पाप का नही हो सकता ।'

अब आप जुए की तरफ देखिए । जुआ जगत् कल्याण मे तनिक भी सहायक नही है । बल्कि जुआ खेलने वालो मे झूठ, कपट, छलछिद्र, तृष्णा, आदि अनेक दुर्गुण पैदा हो जाते हैं । अधिक क्या कहे, ससार मे जितने भी दुर्गुण हैं, वे सब जुए मे विद्यमान हैं ।

जुआ और खेती के पाप की तुलना करते समय आप यह न भूल जाइये कि शास्त्रो मे जुए को सात कुव्यसनो मे गिना गया है, पर खेती करना कुव्यसनो के अन्तर्गत नही है । श्रावक को सात कुव्यसनो का त्याग करना आवश्यक है । अगर जुए की अपेक्षा खेती मे अधिक पाप होता तो कुव्यसनो की अपेक्षा खेती का पहले त्याग करना आवश्यक होता । परन्तु शास्त्र कहते हैं-आनन्द जैसे धुरधर श्रावक ने श्रावक धर्म धारण करने के पश्चात् भी खेती करने का त्याग नही किया था ।'

जो लोग यह समझते है कि हमे बिना विशेष आरभ किये बाजार से ही धान्य मिल सकता है तो धान्योपार्जन करने के लिए आरभ-समारभ क्यो किया जाय ? भले ही खेती मे महारभ न हो, किन्तु जिस आरभ से बचना सभव है उससे क्यो न बचना चाहिए ?

इस प्रश्न का समाधान करने के लिए आचार्य सोमदेव सूरि की यह सूक्ति ध्यान देने योग्य है —

क्रीतेष्वाहारेष्विव पण्यस्त्रीषु क आस्वाद ?

— नीतिवाक्यामृत, वार्त्तासमुद्देश ।

आचार्य ने यहा खरीदे हुए आहार और वेश्या की तुलना की है । यह तुलना बडी बोधप्रद है और धार्मिक भी है । विवाह करने मे अनेक आरभ समारभ करने पडते हैं, सैकडो तरह के झझटो मे पडना पडता है, बाल बच्चों की परपरा चलती है और उस परपरा से पाप की परपरा बढती चलती है । स्त्री और बाल बच्चो के भरण-पोषण के लिए न जाने कितना आरभ करना

पडता है। इस महारंभ से बचने के लिए वेश्यागमन करके ही काम वासना तृप्त क्यो न करली जाय ? थोडे से पैसे खर्च किए और अनेकानेक पापों से बचे। कहा तो पापो की परम्परा और कहा वेश्या का अल्प पाप !

इस प्रकार ऊपरी दृष्टि से वेश्यागमन मे अल्प पाप और विवाह करने मे महापाप भले ही प्रतीत होता हो, लेकिन कोई भी विवेकशील पुरुष इस व्यवस्था का समर्थन नही कर सकता। धर्म शास्त्रो से तो इसका समर्थन हो ही नही सकता। तात्पर्य यह है कि अल्पारभ और महारभ की मीमासा बाह्य दृष्टि से और तात्कालिक कार्य से नही की जानी चाहिए। ससार की व्यवस्था और समाज कल्याण की दृष्टि भी इसमें गर्भित है।

इसके अतिरिक्त थोडी देर के लिए मान लिया जाय कि बाजार से धान्य लाकर खाना ही धर्मसगत है और धान्य उपार्जन करना अधर्म है, तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बाजार मे धान्य आएगा कहा से ? अगर सभी मनुष्य इस धर्म को अगीकार करलें और खेती करना छोड दें तो जगत् की क्या स्थिति होगी ? क्या धर्म के प्रचार का फल प्रलय होना चाहिए ? जिस धर्म को अगीकार करने से जगत् मे हाय–हाय मच जाय, मनुष्य भूखे तडप-तडप कर प्राण दे दें, वह धर्म क्या विश्वधर्म बनने के योग्य है ? अथवा वे लोग जो अपने धर्म का पालन करने के लिए दूसरो को बलात् अधर्म मे प्रवृत्त करेंगे, क्या धर्मात्मा कहे जा सकेंगे ?

धर्म का उद्देश्य पारलौकिक शाति–सुख ही नही है बल्कि इहलौकिक शाति, सुख और सुव्यवस्था भी धर्म का लक्ष्य है। परलोक इस लोक पर अवलबित है और इस लोक की सुख–शाति कृषिकर्म पर बहुत कुछ अवलबित है। आचार्य सोमदेव सूरि कहते हैं—

'तस्य खलु ससारसुख यस्य कृषिधेनव शाकवाट सद्मन्युदपान च।
टीका–तस्य गृहस्यस्य खलु निश्चयेन सुख भवति यस्य कि ? यस्य गृहे सदैव कृषिकर्म क्रियते तथा धेनवो महिष्यो भवन्ति। —नीतिवाक्यामृत, पृ० ९३।

अर्थात् उस गृहस्थ को निश्चय ही सुख की प्राप्ति होती है, जिसके घर मे सदैव खेती की जाती है तथा गायें और भैंसे होती हैं।

आचार्य सोमदेव जी यद्यपि स्पष्ट रूप से खेती और पशुपालन करने का विधान नहीं करते, ऐसा करना साधु के आचार के विरुद्ध है, तथापि उनका आशय स्पष्ट है। वे परोक्षरूप से कृषि और पशुपालन का गृहस्थ के लिए समर्थन करते हैं। ऐसी दशा मे यह कैसे कहा जा सकता है कि खेती करना श्रावक धर्म के विरुद्ध है ? अतएव आरभ–समारभ की दृष्टि से कृषि का श्रावक के लिए निषेध करना उचित नही है।

कृषि कार्य मे आरभ नहीं है, यह कहना यहां अभीष्ट नही है। कृषि मे ही क्यो, आरभ तो छोटे से छोटे कार्य मे भी होता है। यहा तक कि घर आये हुए को आसन देने मे भी आरभ होता ही है कहने का आशय यह है कि कृषि का आरभ त्यागना श्रावक धर्म की मर्यादा मे नहीं है। श्रावक की योग्यतानुसार उसके आचार की अनेक कोटिया हैं। उसका आचार अनेक प्रकार का होता है। कोई श्रावक साधारण त्यागी होता है, कोई प्रतिमाधारी होता है। जैन शास्त्रो मे बतलाया गया है कि प्रत्येक प्रतिमाधारी श्रावक भी कृषि के आरभ का त्यागी नही होता। प्रतिमाओ का सेवन क्रमपूर्वक ही होता है और आरभ त्याग प्रतिमा (पडिमा) मे श्रावक खेती का त्याग करता है। दिगम्बर सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री समन्तभद्र कहते है—

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपरमति।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्त ॥

—रत्नकरण्डक श्रावकाचार, अ ३।

अर्थात्—सेवा, कृषि और व्यापार आदि आरभ से जो हिंसा के हेतु हैं, जो श्रावक निवृत्त होता है वह आरभ त्याग प्रतिमा का पालक कहलाता है।

श्वेताम्बर समुदाय के आचार्य श्री सिद्धसेन ने भी प्रवचन सारोद्धार की टीका मे लिखा है—

एषा पुनर्नवमी–प्रेष्यारम्भवर्जन प्रतिमा भवति, यस्या नवमासान् यावत् पुत्र–भ्रातृप्रभृतिषु न्यस्तसमस्तकुटुम्बादिकार्यभारतया धनधान्यादिपरिग्रहेष्वल्पाभिष्वङ्गतया च कर्मकरादिभिरपि आस्ता स्वय, आरम्भान् सपापव्यापारान् महत कृष्यादीनिति भाव। —प्रवचन सारोद्धार।

आशय यह है कि प्रतिमाधारी श्रावक आरभ त्याग नामक आठवी प्रतिमा मे स्वय आरभ करने का त्याग कर देता है। तत्पश्चात् प्रेष्यारभ त्याग नामक नौवीं प्रतिमा धारण करता है। इस प्रतिमा मे वह नौकर–चाकरो मे भी खेती का काम नही कराता, क्योकि वह अपने भाई या पुत्र आदि पर कुटुम्ब का भार छोड देता है और परिग्रह मे उसकी आसक्ति कम होती है। यह प्रतिमा नौ मास की होती है।

आरभ के अनेक काम हैं, फिर भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वामी समन्तभद्र और श्री सिद्धसेन सूरि दोनो ने ही, बल्कि सागार धर्मामृत आदि अन्य ग्रन्थो के कर्त्ताओ ने भी आरभ त्याग प्रतिमा का स्वरूप बतलाते हुए कृषि का उल्लेख किया है। समन्त भद्राचार्य सेवा और वाणिज्य के साथ

कृषि का उल्लेख करते हैं और सिद्धसेन सूरि सिर्फ कृषि का उल्लेख करके उसमें 'आदि' पद जोड देते हैं। आशाधर जी भी कृषि का उल्लेख अवश्य करते हैं और उसमे 'आदि' पद सिद्धसेन जी की भांति ही लगा देते हैं। आचार्य ने अपने-अपने समय मे आरभ त्याग प्रतिमा का स्वरूप बतलाते समय कृषि का खास तौर से उल्लेख किया होगा, यह बतलाने के लिए कि कृषि का त्याग आठवी प्रतिमा मे होता है। कुछ भी हो, यह स्पष्ट है कि इस विषय मे दिगम्बर-श्वेताम्बर सप्रदायो के आचार्य एकमत हैं कि कृषि का त्याग साधारण श्रावक के लिए जरूरी नही है। दिगम्बर सम्प्रदाय के आठवें प्रतिमाधारी श्रावक प्राय गृहवास का त्याग कर देते हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार आजकल प्रतिमाओ का धारण दुशक्य माना जा सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि गृहस्थ श्रावको मे खेती का त्याग करने के लिए कहना और खेती करने से श्रावक धर्म की मर्यादा का भग मानना भ्रमपूर्ण है।

यह अत्यन्त खेद की बात है कि कतिपय धर्मगुरु भी प्राय इस भ्रम मे पडे हुए हैं। इसका परिणाम यह होता है कि गृहस्थों को गृहस्थ धर्म की बातें नही बतलाई जाती और साधुधर्म का आचार उन पर लादा जाता है। गृहस्थ, श्रावक के कर्त्तव्यो का भली भांति पालन नही करते और साधुधर्म का का पालन तो कर ही कैसे सकते हैं? इस प्रकार वे न इधर के रहते हैं, न उधर के। वे केवल अनेक अवाछनीय प्रवृत्तियो मे पड जाते हैं, इसका एक प्रधान कारण यही आचार विभ्रम है।

कृषि कर्मादान नहीं है :

खेती के सम्बन्ध मे एक बात और विचारणीय है। वह यह है कि क्या खेती करना पन्द्रह कर्मादानो मे से फोडीकम्मे (स्फोटि कर्म) के अन्तर्गत है? कुछ लोगो की धारणा है कि हल के द्वारा जमीन को फोडना 'फोडीकम्मे' नामक कर्मादान है। कर्मादान भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार हैं अत व्रतधारी श्रावक अगर निरतिचार व्रतों का पालन करना चाहे, तो उसे कृषि-कर्म नही करना चाहिए।

वास्तव मे यह विचार भी अभ्रान्त नही है। अगर खेती करना कर्मादान मे सम्मिलित होता तो भगवान् महावीर स्वामी के समक्ष बारह व्रत ग्रहण करने वाला आनन्द श्रावक पाच सौ हलो से जोती जा सकने योग्य खेती की मर्यादा कैसे कर सकता था? क्या भगवान् उसे यह न समझाते कि व्रती श्रावक खेती नहीं कर सकता। मगर आनन्द बारह व्रत ग्रहण करता है, फिर भी पाच सौ हलों से जुतने योग्य खेती करने की छूट रखता है। इस बात का

उपासक दशाग सूत्र मे स्पष्ट उल्लेख है । मूल पाठ यह है—

तयाणतर च ण खेत्तवत्थुविहिपरिमाण करेई–नन्नत्थ पर्चाहि हलसएहि नियत्तणसइएण हलेण अवसेस खेत्तवत्थुविहि पच्चक्खामि ।

—उपासक दशाग पहला अध्ययन

अर्थात्—तत्पश्चात् आनन्द श्रावक क्षेत्र वस्तुविधि का परिमाण करता है–सौ निवर्त्तन (एक तरह का जमीन का नाप) जोतने वाले एक हल के हिसाब से पाच सौ हलो द्वारा जुतने योग्य भूमि के अतिरिक्त वाकी भूमि का प्रत्याख्यान करता हू ।

इस प्रकार अन्यान्य व्रतो को ग्रहण करने के पश्चात् ही आनन्द प्रतिज्ञा करता है—

'समणोवासएणं पण्णरसकम्मादाणाइ जाणियव्वाइ न समायरियव्वाइ, त जहा–इ गालकम्मे, वणकम्मे, भाडिकम्मे, फोडिकम्मे ' ।

अर्थात्– श्रावक को पन्द्रह कर्मादान जानने योग्य है, पर आचरण करने योग्य नही हैं । वे इस प्रकार हैं—अगारकर्म, वनकर्म, शकटकर्म, भाटककर्म, स्फोटिकर्म आदि ।

उपासक दशाग सूत्र के ये दोनो उल्लेख साफ वतलाते हैं कि खेती करना स्फोटिकर्म कर्मादान नही है, क्योकि आनन्द श्रावक कर्मादान का त्याग करता हुआ भी खेती का त्याग नही करता । खेती करना अगर कर्मादान मे गिना जाय तो ये प्रतिज्ञाए परस्पर विरोधी हो जाती हैं । हमे यह नही भूलना चाहिए कि व्रत ग्रहण कराने वाले स्वय भगवान् हैं और ग्रहण करने वाला आदर्श श्रावक आनन्द है ।

शास्त्र मे आनन्द श्रावक का चरित मनोरजन के लिए नानी की कहानी की तरह नही लिखा गया । यह एक आदर्श चरित है, जो इस भावना से लिखा गया है कि आगे के श्रावक उसे अपना पथ प्रदर्शक समझे और उसका अनुकरण करें । लेकिन हम लोगो के वारह व्रतो की वात ही दूर, मूल गुणो तक का ठिकाना नही है और चले हैं हम आनन्द से भी आगे वढने ! आनन्द पाच सौ हल चलाने की छूट रखता है और हम एक हल चलाने मे ही महापाप मानकर उसका त्याग करने की धृष्टता करते हैं। आचार का यह व्यतिक्रम, विकास का नही, अध पतन का ही कारण हो सकता है ।

पन्द्रह कर्मादानो मे एक साडीकम्मे अर्थात् शकटकर्म भी है । शकटकर्म का अर्थ है–गाडी बनाने वेचने और चलाने की आजीविका करना । अगर

इस कर्मादान का फोडीकम्मे की भांति सामान्य अर्थ लिया जाय तो श्रावक बैलगाडी, घोडागाडी, तागा, मोटर आदि कोई गाडी भी नही रख सकेगा, क्योंकि शकट चलाना कर्मादान है और व्रती श्रावक को कर्मादान का त्याग करना ही चाहिए।

औरो की बात जाने दीजिए और सिर्फ कर्मादान 'अगारकर्म' को ही लीजिए। श्रावक अपने उदरनिर्वाह के लिए अग्नि जलाता है, कोयले जलाता है तो क्या उसे कर्मादान का महापाप लगता है ? अगर भोजन बनाने के लिए अगार जलाने से ही कर्मादान का महापातक लग जाता है और श्रावक का व्रत दूषित हो जाता है तो फिर कर्मादानो का त्याग करने के लिए आजीवन सथारा लेने के सिवाय और क्या चारा है ? इस प्रकार श्रावक के व्रत ग्रहण करना अर्थात् शीघ्र ही मौत को आमत्रण देना ही ठहरता है। धर्म की यह कितनी ऊलूल-जलूल व्याख्या है !

लेकिन कर्मादानो का वास्तविक स्वरूप यह नही है। श्रावक अपने लिए गाडी बनाए, खरीदे और स्वय चलावे तो भी साडीकम्मे कर्मादान नहीं लगता। कर्मादान का पाप उस हालत मे लगता है जबकि गाडी बनाने का धधा ही अख्तियार कर लिया जाय और उसी धधे से आजीविका चलाई जाय। इसी प्रकार अपने भोजन आदि के उपयोग के लिए अगार जलाने का काम करने से 'अगारकर्म' कर्मादान नही लगता। कोयला बना बनाकर बेचने का व्यापार करने से कर्मादान लगता है। खेती करना 'फोडीकम्मे' कर्मादान नहीं है।

'फोडीकम्मे' कर्मादान मे तालाब खोदना कुआ-बावडी खोदना आदि कार्य भी गिने जाते हैं। परन्तु हमारा सहज ज्ञान क्या यह स्वीकार करने के लिए तैयार है कि परोपकार के लिए या अपने उपयोग के लिए कुआ आदि खोदने-खुदवाने से महान् पाप, इतना बडा पाप जिससे श्रावक का व्रत खडित हो जाए, लगता है ? कदापि नही। वास्तव मे अपने व्यापार के लिए भूमि फोडने का धधा करना ही कर्मादान है, कृषि करना कर्मादान मे सम्मिलित नही है।

जिस कार्य को करने से महान् पाप का बध होता है, वह कार्य कर्मादान कहलाता है। इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे मे जब कल्पवृक्ष नष्ट हो गए और कर्मभूमि का आरभ हुआ तब तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने उस समय की अज्ञान जनता को कृषिकर्म करने का उपदेश दिया था। श्री समन्त भद्राचार्य ने आदिनाथ की स्तुति करते हुए कहा है—

शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा। —बृहत्स्वयभूस्तोत्र।

अगर कृषिकर्म आर्योचित कर्म न होता, महान् पाप का कारण होता तो भगवान् उसका उपदेश क्यो देते ? भगवान् ने उस समय की प्रजा को जुआ या सट्टा न सिखला कर खेती की शिक्षा क्यो दी है ? तात्पर्य यह है कि कृषिकर्म न कर्मादान है, न अनार्य कर्म है । जगह-जगह उसे वैश्यो का कर्त्तव्य बतलाया गया है । श्री सोमदेव सूरि लिखते हैं—

कृषि. पशुपालन वाणिज्या च वार्त्ता वैश्यानाम्–नीतिवाक्यामृत ।

उत्तराध्ययन सूत्र मे 'वइसो कम्मुणा होइ' इस सूत्राश की टीका इस प्रकार की गई है—'कर्मणा कृषिपशुपालनादिना भवति।' अर्थात् कृषि और पशु-पालन आदि कार्यो से वैश्य होता है ।

कृषिकर्म वैश्यो का प्रधान कर्त्तव्य है । इस सम्बन्ध मे अधिक उद्ध-रणो की आवश्यकता नही है । यही बात दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कही जा सकती है कि जो वैश्य कृषि, पशुपालन और वाणिज्य रूप वैश्योचित कर्म नही करता वह अपने वर्ण मे च्युत होता है । वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से उसे वैश्य नहीं कहा जा सकता ।

कृषिकर्म के सम्बन्ध मे मुख्य-मुख्य बातो का यहा तक विचार किया गया है । इससे यह भलीभाति सिद्ध है कि कृषिकर्म, श्रावकधर्म को बाधा नही पहुचाता । हा, जो श्रावक गृहवास का त्याग करके प्रतिमा धारण करके विशि-ष्ट साधना मे अपना समय व्यतीत करने के लिए उद्यत होते हैं, वे जैसे अन्यान्य आरभो का त्याग करते हैं, उसी प्रकार कृषि का भी त्याग कर देते हैं । जो श्रावक व्रत रहित है या व्रत सहित होने पर भी आरभ त्याग प्रतिमा की कोटि तक नहीं पहुचे हैं, उनके लिए कृषिकर्म त्याज्य नही है ।

कृषि और अन्य आजीविकाएं :

अगर आजीविकाओ पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो यह प्रतीत हुए बिना नही रहेगा कि ब्याज-खोरी आदि अन्य आजीविकाओं की अपेक्षा कृषि आजीविका श्रावकधर्म के अधिक अनुकूल है । सट्टे के साथ जो एकप्रकार का जुआ ही है, कृषि की तुलना की जा चुकी है । जुए को धर्म-शास्त्रो में त्याज्य ठहराया है । सूदखोरी का धन्धा भी प्रशस्त नही है । शास्त्रो मे वर्णित कोई आदर्श श्रावक यह धन्धा नही करता था ।

आचार्य सोमदेव सूरि ने लिखा है—

पशुधान्यहिरण्यसम्पदा राजते-शोभते, इति राष्ट्रम् ।

अर्थात्—जो देश पशु धान्य और हिरण्य से सुशोभित होता है, वही

सच्चा राष्ट्र कहलाता है। यहां पशुओं और धान्य को प्रथम स्थान दिया गया है और उसके बाद हिरण्य (चांदी-सोने) को। ऐसा करके आचार्य ने यह सूचित कर दिया है कि किसी भी देश की प्रधान सम्पत्ति पशु और धान्य है, क्योंकि उनसे जीवन की वास्तविक आवश्यकता साक्षात् रूप से पूर्ण होती है। जो वस्तु जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं की साक्षात् पूर्ति करती है, उसका उपार्जन करने वाला सामाजिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से समाज एवं राष्ट्र का उपकार करता है। वह जगत को अपनी ओर से कुछ प्रदान करता है, अतएव वह जगत् का बोझ नहीं है वरन् बोझ उठाने वालों का हिस्सेदार है। वह समाज से कुछ लेता है तो उसके बदले समाज को कुछ देता भी है। अनाज पैदा करने वाला किसान दूसरों का भार नहीं है, बल्कि दूसरों का भार संभालता है। वह अनेक मनुष्यों को अन्न के रूप में जीवन दे रहा है, क्योंकि पैदा किया हुआ सारा अनाज वह स्वयं नहीं खा लेता। यही बात पशु-पालन के संबंध में भी कही जा सकती है। मगर सूद का धंधा करने वाला पुरुष स्वार्थ साधन के सिवा और क्या करता है? एड़ी से चोटी तक पसीना बहाकर किसान जो अन्न उपजाता है, उस पर सूदखोर का जीवन निर्भर है, फिर भी वह किसान को भरपेट नहीं खाने देता। समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों के परिश्रम पर वह गुलछर्रे उड़ाता है, मगर उनमें से किसी की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह कुछ भी आत्मदान नहीं करता। वह अगर कुछ करता है तो सिर्फ समाज में विषमता का विष ही फैलाता है। अतएव उसका कार्य जगत् के लिए कल्याणकारी न होकर अकल्याणकारी ही है।

व्यापार अगर सामाजिक भावना का विरोध न करते हुए, बल्कि समाज कल्याण की दृष्टि को साथ लेकर किया जाय तो वह भी उपयोगी और श्रावकधर्म से अविरुद्ध है, मगर ऐसा होता नहीं है। व्यापारी वर्ग व्यक्तिगत लाभ के लिए ही व्यापार करता है। यह बात गत युद्ध के समय में अत्यन्त स्पष्ट हो गई है। लोग भूखे मरे पर व्यापारियों का हृदय नहीं पसीजा। उन्होंने मुनाफे के लोभ में जनता के जीवन-मरण की चिन्ता नहीं की। कम-बढ़ रूप में सदा ही वह होता रहता है। लेकिन खेती में यह संभावना नहीं है। किसान अत्यधिक अनाज का लम्बे समय तक संग्रह नहीं रख सकता।

व्यापार की अपेक्षा खेती की महत्ता इसलिए भी अधिक है कि खेती मूल आजीविका है। मूल आजीविका वह कहलाती है, जिस पर अन्य अनेक आजीविकाएं निर्भर हों। कपास, रूई, सूत, जूट, बुनाई, सिलाई, कपड़े के मिल अनाजों का व्यवसाय इस संबंध के तमाम आढ़त आदि के धन्धे, तथा समस्त

अनाज संबंधी व्यवसाय हलवाई की दुकानें होटल ढाबा आदि-आदि कृषिकर्म पर अवलंबित हैं। अगर किसान खेती करना छोड़ दे तो दुनिया के अधिकांश व्यापारी चौपट हो जाएं। इस दृष्टि से व्यापार का मूल भी खेती ही ठहरती है। ऐसी स्थिति मे विभिन्न आजीविकाओ के साथ तुलना करने पर कृषि की उत्कृष्टता सिद्ध होती है। निःसदेह कृषि जीवन है और कृषक जीवनदाता है। लोग राजा-महाराजाओ को 'अन्नदाता' कहते है, मगर ईमानदारी से तो किसान अन्नदाता है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय

जैन धर्म सबधी आचार विषयक विभ्रम उत्पन्न होने के कारण पर एक निगाह डालना शायद अप्रासगिक न होगा। मेरे विचार से आचार विषयक विभ्रम का प्रधान कारण यह है कि हम जैन धर्म को एकान्त निवृत्तिमय मान बैठे है। धर्मोपदेशक भी प्राय इसी रूप मे धर्म का स्वरूप प्रकट करते हैं। लेकिन एकान्त निवृत्ति क्या कही सभव है? निवृत्ति प्रवृत्ति के बिना और प्रवृत्ति निवृत्ति के बिना असभव है। अक्सर लोग समझते है, अहिंसा निवृत्ति रूप है, लेकिन वास्तव मे अहिंसा मे जो निवृत्ति है, वह अहिंसा का शरीर है और उसमे पाया जाने वाला प्रवृत्ति का भाव उसकी आत्मा है। किसी प्राणी को नहीं सताना, अहिंसा का बाह्य रूप है और इस निवृत्ति के साथ सर्व-प्राणियो मे बन्धुभाव होना, विश्वप्रेम का अकुर उगना, करुणाभाव से हृदय द्रवित होना, जगत् के सुख के लिए कर्त्तव्यपरायण होना आदि प्रवृत्ति अहिंसा का आन्तरिक रूप है। इसके बिना अहिंसा की भावना न उद्भूत हो सकती है, न जीवित रह सकती है।

जैसे पक्षी एक पख से आकाश मे विचरण नही कर सकता, उसी प्रकार एकान्त निवृत्ति या एकान्त प्रवृत्ति मे आत्मा ऊर्ध्वगामी नही हो सकता। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति जैनाचार के दो पख है। इनमे से किसी भी एक के अभाव मे अध पतन ही सभव है। इसलिए शास्त्रो मे कहा है—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्त।

अर्थात्—अशुभ से निवृत्ति और शुभ मे प्रवृत्ति को ही चारित्र समझना चाहिए। प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय ही चारित्र का निर्माण करता है।

जब हमे जीवन-यापन करना ही है तो एकान्त निवृत्ति से काम नही

चल सकता । प्रवृत्ति कुछ करनी ही होगी । ऐसी स्थिति मे किस कार्य मे प्रवृत्ति करनी चाहिए और किससे निवृत्त होना चाहिए, यह प्रश्न अपने आप उत्पन्न हो जाता है । इसका आशिक समाधान ऊपर उद्धृत वाक्य से हो जाता है कि शुभ मे प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति करनी चाहिए । लेकिन शुभ क्या है और अशुभ क्या है ? यह प्रश्न फिर भी बना रहता है । शुभ और अशुभ की व्याख्या कुछ-कुछ देश काल की परिस्थिति पर निर्भर करती है, लेकिन उनकी सर्वदेश काल व्यापी व्याख्या यही हो सकती है कि जिस कार्य से आत्मा का और जगत् का कल्याण हो वह शुभ है और जिससे व्यक्ति और समष्टि का अकल्याण हो वह अशुभ है । इसी दृष्टि से हमे जीवन-निर्वाह के लिए कोई भी शुभ कार्य पसद करना चाहिए । पहले जो विवेचन किया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि कृषिकर्म जीवन के लिए अत्युपयोगी है—व्यक्ति और समाज का जीवन उसी पर अवलवित है । उससे किसी को किसी प्रकार की क्षति नही पहुचती । अतएव जीवन निर्वाह का जहा तक प्रश्न है, कृषि विधेय कर्म है । सट्टे आदि की निवृत्ति से कृषि आदि शुभ कार्यो मे प्रवृत्ति ही फलित होनी है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे वतलाया गया है कि धर्मात्मा पुरुष स्वर्ग मे उत्पन्न होने के पश्चात् जब मनुष्य योनि प्राप्त करता है, तब उसे दस श्रेष्ठ वस्तुओ की प्राप्ति होती है । यथा—

> खेत्त वत्थु हिरण्ण च, पसवो दास पोरुस ।
> चत्तारि कामखधारी, तत्थ से उववज्जइ ।।

—उत्तरा० तीसरा अध्ययन ।

यहा क्षेत्र (खेत) की प्राप्ति को प्रथम स्थान दिया गया है । वास्तव मे पुण्य के उदय से खेत मिलता है और खेत जोतने वाला जगत् की रक्षा करके पुण्य का भागी होता है ।

हमारा ख्याल है, पाठक इतने विवेचन से भलभाति समझ सकेंगे कि जीवन निर्वाह के कार्यो मे कृषि का स्थान क्या है और वह धर्म से सगत है या विसगत है ?



युवकों के प्रेरणा–स्रोत

श्री संजीव भानावत

वर्तमान समय मे हमारे देश मे अनुशासन की एक लहर आई हुई है, अत युवको को इन नई परिस्थितियो के अनुरूप स्वय को ढाल कर देश को विभिन्न क्षेत्रो मे आत्म–निर्भर बनाने के लिए कृत सकल्प होना है । अपनी शक्ति को उसे अब व्यर्थ के आन्दोलनो से हटा कर सृजन के कार्यो की ओर लगाना है । दुर्व्यसनो को त्याग कर उसे अब आत्म–निर्माण और राष्ट्र–निर्माण की ओर उन्मुख होना है । इस दिशा मे युग–प्रवर्तक महान् क्रान्तिकारी और युवा–पीढी के प्रेरणा–स्रोत आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा के विचार युवको का उचित मार्ग–निर्देशन कर सकते हैं ।

हमारा यह देश गावो का देश है । ग्राम–विकास पर ही देश की प्रगति व विकास निर्भर करता है । हमारे देश की सत्तर प्रतिशत जनता गावो मे निवास करती है । अत सर्व प्रथम हमे गावो को स्वच्छ बनाना होगा । आचार्यश्री के अनुसार—

"जिस धर्म को पालन करने से ग्राम्य जीवन की रक्षा होती है, उसका विकास होता है, वह साधारणतया ग्राम–धर्म कहलाता है ।" [१] उनका यह भी मानना है कि "सभ्यता की रक्षा के लिए ग्राम–धर्म की आवश्यकता होती है क्योकि सभ्यता का उद्भवस्थान ग्राम–धर्म है । अतएव जहा ग्राम धर्म की रक्षा नही की जाती, वहा सभ्यता या सस्कृति की भी सुरक्षा नही हो सकती ।" [२]

अत युवको को चाहिए कि वे ग्राम–धर्म की परिपालना की ओर

१—धर्म और धर्म नायक, पृ० ६
२—वही, पृ० ७

विशेष जागरूक हो तथा लोगो को इस बात के लिए प्रेरित करें कि वे ग्राम-धर्म का निर्वाह कर राष्ट्र-निर्माण मे अपना सहयोग दें। युवको को गावो के प्रति अपना पलायनवादी दृष्टिकोण त्यागना होगा।

गावो के विस्तार से नगर की रचना होती है। ग्राम-धर्म के समान नगर-धर्म की पालना भी आवश्यक है। गाव नगर का ही एक अग है। गाव व नगर एक दूसरे के पूरक हैं। दोनो के विकास पर ही देश की मजबूती को बल मिलता है। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा का कहना है—

"शरीर और मस्तिष्क मे जितना घना सम्बन्ध है, उतना ही सम्बन्ध ग्राम-धर्म और नगर-धर्म मे आपस मे है। ग्राम्य जन अगर शरीर के स्थान पर हैं तो नागरिकजन मस्तिष्क की जगह। जब शरीर स्वस्थ होता है तभी मस्तिष्क स्वस्थ रह सकता है, यह बात कौन नहीं जानता ?" [१]

अत शिक्षित युवावर्ग का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे नगर-धर्म का पालन करते हुए अपने आश्रित ग्राम-धर्म का भी निर्वाह करें तथा दूसरो को भी इस हेतु प्रेरित करें।

ग्राम-धर्म और नगर-धर्म के उचित तथा पूर्ण पालन से राष्ट्र-धर्म की सृष्टि होती है। दोनो धर्मों का सम्मिलित प्रभाव राष्ट्र पर पडता है। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि चन्द 'जयचन्दो' के नगर-द्रोही कार्यो ने सपूर्ण देश की प्रतिष्ठा को धूल मे मिला दिया। आज भी हमारे देश मे अनेक 'जयचन्द' हैं, जिन्होने समय-समय पर राष्ट्र की प्रगति मे रोडे अटकाये, उत्पादन को ठप्प करवाया, युवको को गुमराह किया तथा सारी व्यवस्थाओ को छिन्न-भिन्न कर प्रगति के पथ पर बढते इस देश को पीछे की ओर धकेलना चाहा। अब समय आ गया है जब देश की युवा शक्ति को इन 'जयचन्दो' को मार भगाना है।

आचार्य श्री का कहना है कि भारत गुलाम इसीलिए हुआ कि यहा के नागरिक नगर-धर्म का पालन नही करते थे [२]। आचार्य श्री कडे शब्दों में उन लोगों की आलोचना करते हैं जो नगर धर्म का ठीक पालन नही करते। वे उन्हें देश-द्रोही कहते हैं। देश के युवकों को आचार्य श्री के इस कथन को अपने हृदय-पटल पर अकित कर लेना चाहिए—

१—धर्म और धर्म नायक, पृ० १०
२—वही पृ० १७

"राष्ट्र की रक्षा में हमारी रक्षा है। राष्ट्र के विनाश में हमारा विनाश है।" [१]

स्वावलम्बन का हमारे जीवन मे अत्यधिक महत्त्व है। स्वावलम्वी व्यक्ति ही ग्राम–धर्म, नगर–धर्म और राष्ट्र–धर्म का निर्वाह कर सकता है। स्वावलम्बन की महिमा का बखान करते हुए राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—'स्वावलम्बन की एक झलक पर न्यौछावर कुबेर का कोष।' स्वावलम्बन की महिमा को शब्दो के माध्यम से व्यक्त नही किया जा सकता। इसका तो केवल अनुभव ही किया जा सकता है, किन्तु दुख है, आज का युवक स्वावलम्बन के महत्त्व को भूलता जा रहा है। दिन–प्रतिदिन नये–२ फैशन मे व्यस्त आज का युवक स्वावलम्वी जीवन त्याग कर आलसी तथा परावलम्वी होता जा रहा है। श्रम का उसके लिये कोई महत्त्व नही है। आचार्यश्री अपनी ओजमयी वाणी मे युवको को सन्देश दे रहे हैं—

"किसी भी दूसरे की शक्ति पर निर्भर न बनो। समझ लो, तुम्हारी एक मुट्ठी मे स्वर्ग है, दूसरी मे नरक है। तुम्हारी एक भुजा मे अनन्त ससार है और दूसरी भुजा मे अनन्त मगलमय मुक्ति है। तुम भाग्य के खिलौने नही हो वरन् भाग्य के निर्माता हो। आज का तुम्हारा पुरुषार्थ कल भाग्य बन कर दास की भाति तुम्हारा सहायक होगा।" [२]

अत भारत के युवको को, नौजवानो को आचार्यश्री से प्रेरणा प्राप्त कर स्वावलम्वी जीवन व्यतीत करना चाहिए, ताकि वे स्वय तो स्वस्थ रहेगे ही, साथ ही राष्ट्र की सुख–समृद्धि मे भी सहायक होंगे।

आज हमारे देश के युवको पर पाश्चात्य सस्कृति का काफी प्रभाव पड़ा है। इसी सस्कृति के वशीभूत होकर हमारा युवावर्ग नशीली वस्तुओ का सेवन काफी मात्रा मे करने लगा है। विश्वविद्यालय केम्पस मे तो अनेक छात्र हमे सिगरेट पीते हुए दिखाई देते हैं, किन्तु अब तो छात्रो को मदिरा, एल एस डी आदि मादक पदार्थों का भी चसका लग गया है। ऐसे छात्रो को सावधान करते हुए आचार्यश्री उनके सम्भावित खतरो के प्रति युवको को आग्रह कर रहे हैं—

"मदिरा पीने वाला मदिरा की बुराइयो को समझता हुआ भी उससे बच नही पाता। वह (मदिरा) पिशाचिनी की तरह एक बार अपने अधीन

१—धर्म और धर्म नायक, पृष्ठ–२३
२—जवाहर विचारसार, पृष्ठ–२६१

किन्तु मनुष्य का शक्ति चूस लेती है। वह मनुष्य को हड्डियों का ढेर बना डालती है। जीवन को एकदम बर्बाद कर देती है।" [1]

देश की प्रगति मे बाधक है—हमारी सामाजिक कुरीतिया। इन कुरीतियो को, इन सामाजिक बेडियो व बन्धनो को केवल युवक ही तोड सकते है। वृद्ध पुरुषो के लिये यह सम्भव नही क्योकि जिस रास्ते पर वे लम्बे समय तक चले, उसे यकायक छोड देना उनके बस की बात नही है। युवक सदैव से प्रगतिशील होता है, नये को स्वीकार करने तथा पुराने को छोड देने की हिम्मत व साहस उसमे होता है। इन सामाजिक रूढियो को तोडने का दायित्व युवको के कन्धो पर ही है।

सबसे पहली समस्या है, बाल-विवाह की। हालाकि शहर मे इस प्रथा का प्रचलन कम है, किन्तु गावो की स्थिति इस दृष्टि से दयनीय है। अत युवको को इसके विरुद्ध आवाज बुलन्द करनी है। आचार्यश्री का कहना है—

"छोटी-कच्ची उम्र मे बालक-बालिका का विवाह करना अमङ्गल है। ऐसा विवाह भविष्य मे हाहाकार मचाने वाला है। ऐसा विवाह त्राहि-त्राहि की आवाज से आकाश गु जाने वाला है। ऐसा विवाह देश मे दुख का दावानल दहकाने वाला है। इस प्रकार के विवाह से देश की जीवनी शक्ति का ह्रास हो रहा है। विविध प्रकार की आधि-व्याधियो को जन्म दे रहा है।" [2] अत जब बाल विवाह इतना घातक हो सकता है तो फिर क्यो न इसे बद करने मे पहल करें।

आचार्य श्री ने विवाह को मात्र भोग्य नही माना है बल्कि उसे जीवन विकास का साधन माना है। कितने सुन्दर विचार उन्होंने इस सदर्भ मे प्रकट किए हैं—

"विवाह तो तुम्हारा हुआ, पर देखना यह चाहिए कि तुम विवाह करके चतुर्भुज बने हो या चतुष्पद। विवाह करके अगर तुम बुरे काम मे पड गये तो समझो कि चतुष्पद बने हो। अगर विवाह को भी तुमने धर्म-साधना का निमित्त बना लिया है तो निस्सदेह तुम चतुर्भुज—जो कि ईश्वर का रूप माना जाता है, बने हो। इस बात के लिए सतत यत्न करना चाहिए कि मनुष्य चतुष्पद न बनकर चतुर्भुज-ईश्वर का रूप बने और अन्तत उसमे एव

१—जवाहर विचारसार, पृष्ठ—२२१
१— जवाहर विचार सार, पृ० १४७

ईश्वर मे किंचित् भी भेद न रह सके ।"[1]

अस्पृश्यता के विरुद्ध भी युवको को आवाज उठानी होगी । अस्पृश्यता हमारे समाज के लिए कलक है । इस कलक को मिटाने के लिए युवको को पहल करनी होगी । आचार्य श्री के ये उद्गार हमारे लिए दीपस्तम्भ के समान हैं—

"मित्रो ! सत्य को समझने का प्रयास करो । किसी के प्रति घृणा भाव लाकर अपने अन्त करण को कलुषित मत करो । मनुष्यता का अपमान मत करो । प्राणी मात्र पर मैत्री का अभ्यास करने वालो को मनुष्य के प्रति घृणा करना शोभा नही देता । अतएव उन पर यथा भाव रखोगे तो अपना ही कल्याण होगा ।"[2]

हमारे देश मे चन्द व्यापारियो की मुनाफाखोरी तथा जमाखोरी की प्रवृत्ति से अवश्यक वस्तुओ का कृत्रिम सकट पैदा हो गया था । आपातकालीन स्थिति की घोषणा के बाद व्यापारियो की इस प्रवृत्ति पर अकुश लगा है, किन्तु आशिक रूप से । इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए, ऐसे व्यापारियो को बेनकाब करने के लिए युवा-शक्ति को भी सगठित प्रयास करने पडेंगे । आचार्य श्री का यह कथन व्यापारियो के लिए आदर्श होना चाहिए—

"मित्रो ! आदर्श वैश्य ससार की माता की तरह सग्रह करता है, जोक की तरह नही । जो इस बात का ध्यान रखता है वह दयालु, करुणाशील और धर्मात्मा कहा जायेगा, क्योकि उसकी जीविका धर्म की जीविका है, अधर्म की नही ।"

युवा शिक्षको को आचार्यश्री प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि "समाज मे तुम्हारा स्थान बहुत ऊचा है । शरीर मे मस्तिष्क का जो स्थान है, वही स्थान समाज मे शिक्षक का है । शिक्षक विधाता है, निर्माता है ।"[3] देश के युवा शिक्षको के हाथ मे देश का भविष्य निर्भर है । आज का बालक कल का कर्णधार होगा और जिस देश का बचपन शिक्षित होगा, उस देश का यौवन भी वैभवपूर्ण होगा । अत भारत के शिक्षको ! देश की नयी पीढी का भविष्य आपके हाथो मे है, आप इन्हें राष्ट्रनिर्माण व राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा देकर ऊचा उठायें ।

१—जवाहर विचारसार, पृ० १४३
२—जीवनधर्म, पृ० ३०६
३—जवाहर विचारसार, पृ० २५

आज हमारे देश की युवा पीढी मे अश्लील साहित्य काफी लोकप्रिय है। यह साहित्य व्यावसायिक बुद्धि वाले क्षुद्र लेखकों द्वारा लिखा जाता है। ये लेखक इस वात पर विचार नही करते कि साहित्य का दूरगामी प्रभाव क्या पड़ेगा ? अत देश की युवा-शक्ति से आचार्य श्री यह अनुरोध करते है कि वे ऐसे साहित्य को न पढें—

"प्यारे विद्यार्थियो ! अगर तुम अपना जीवन सफल और तेजोमय वनाना चाहते हो तो ऐसी पुस्तकों को कभी हाथ मत लगाना, अन्यथा वे तुम्हारा जीवन मिट्टी मे मिला देगी।"

अत मेरा अपने युवा-साथियो से अनुरोध है कि वे श्रीमद् जवाहराचार्य की जीवनी को पढें, उनके विचारो को पढें तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त कर तदनुरूप अपने को ढालने का प्रयास करें। श्रीमद्जवाहराचार्य केवल जैन धर्म के उपदेशक ही नही हैं, वरन् सम्पूर्ण देश के युवा-वर्ग के प्रेरक हैं। श्री जवाहराचार्य एक दूरद्रष्टा थे। अंग्रेजो के जमाने मे उन्होने समय से आगे वढ कर वातें कही थी, जिनसे हमे उनके क्रातिकारी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। उन्होंने युवको से स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग करने का आह्वान किया। सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध उन्होंने अभियान छेडा। उनके विचार सदैव हमारा मार्ग-निर्देशन करते रहेगे। विभिन्न पुस्तको मे आपके समय-२ पर दिये गये प्रवचनो का सकलन है जो हमारे लिये पठनीय हैं। उनके विचार अमूल्य है और जीवन मे ढालने योग्य है।



तप करने वाले की वाणी पवित्र और प्रिय होती है। और जो प्रिय, पथ्य और सत्य वोलता है, उसी का तप वास्तव मे तप है। असत्य या कटुक वाणी करने का तपस्वी को अधिकार नही है। तपस्वी अपनी अमृतमयी वाणी द्वारा भयभीत को निर्भय वना देता है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा.)

स्वप्न हुआ साकार—'वीर संघ'

श्री भवरलाल कोठारी

श्रीमद् जवाहराचार्य इस युग के एक महान् क्रांतद्रष्टा, विचारक एव दृढ-धर्मा, सयमाराधक आचार्य थे । वे स्वय साधनारत रहते हुए अपने सम्यक् तलस्पर्शी ज्ञान, अनाग्रह-युक्त, अन्तर्स्पर्शी उदात्त दर्शन एव आध्यात्मिक योगी के उदात्त चारित्रिक प्रभाव से समाज को रूढ़ि-मुक्त और धर्म-सयुक्त करना चाहते थे ।

उनके विचारानुसार—धर्म-साधना के लिए सामाजिक और राष्ट्रीय वातावरण को भी शुद्ध बनाना आवश्यक है । समाज मे विकृतिया पनपती रहें, राष्ट्र परतन्त्रता की बेडियो मे जकडा रहे और देशवासी स्वदेशी के भान को भूल कर विदेशी वस्तुओ के मोहजाल मे फसे रहे, तो भला धर्म-आराधना के लिए शुद्ध निर्मल वातावरण कैसे बन सकता है ।

समाज-सुधार एव राष्ट्रीय जागरण, धर्म-साधना की पृष्ठभूमि हैं । धर्म को केवल वैयक्तिक साधना तक ही सीमित नही रखा जा सकता, वह समाज और राष्ट्रव्यापी है । वह व्यक्ति से समष्टि के विकास तक की यात्रा है । वह एकागी नहीं, सर्वागीण है ।

पारलौकिक व्यवहार को सुधारने से पूर्व लौकिक व्यवहार को सुधारने पर आचार्यश्री ने सर्वथा बल दिया । उनके शब्दो मे —

"जो समाज लौकिक व्यवहार में ही बिगडा हुआ होगा उसमे धर्म की स्थिरता किस प्रकार रह सकेगी ? व्यवहार से गया-गुजरा समाज धर्म की मर्यादा को किस प्रकार कायम रख सकेगा ? इस दृष्टि से समाज-सुधार का प्रश्न भी उपेक्षणीय नही है ।"

पर प्रश्न उठता है, समाज-सुधार का कार्य करे कौन ? श्रावक करे, या साधु ?

आचार्यश्री की पारदर्शी दृष्टि मे आज के तथाकथित श्रावको वा

गृहस्थी के जजालो मे गहरा उलझाव एव साधुजनो का संयम से च्युत होकर सासारिक प्रपचो मे फसने का खतरा सामाजिक उत्तरदायित्वो को निभा पाने मे प्रमुख बाधा थी ।

आपने देश की राजधानी दिल्ली मे स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स की साधारण सभा को सबोधित करते हुए दिनाक ११–१०–१९३१ को निम्नानुसार युगीन सदेश दिया था —

" साधु–समाज के निरकुश होने और साधुता के विषयो मे शिथिलता आ जाने के कारणो मे से एक कारण है साधुओ के हाथ मे समाज–सुधार का काम होना । आज सामाजिक लेख लिखने, वाद–विवाद करने और इस प्रकार समाज–सुधार करने का भार साधुओ पर डाल दिया गया है ।"

" समाज–सुधार का भार साधुओ पर पडने का परिणाम क्या हो सकता है, यह समझने के लिए यति–समाज का उदाहरण मौजूद है । यदि वर्तमान साधुओ को समाज–सुधार का भार सौंपा गया और उनमे सामाजिकता की वृद्धि हुई तो उनकी भी ऐसी ही—यतियो जैसी—दशा होना सभव है ।"

" अब प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा कौन सा उपाय है, जिससे समाज–सुधार का आवश्यक और उपयोगी काम भी हो सके और साधुओं को समाज–सुधार मे पडना न पडे ?"

" हमारे समाज मे मुख्य दो वर्ग हैं— साधुवर्ग और श्रावकवर्ग । साधुवर्ग पर उस बोझ पडने से क्या हानिया हो सकती हैं, यह बात सामान्य रूप से मैं बतला चुका हूँ । रहा श्रावकवर्ग, सो इसी वर्ग को समाज–सुधार की प्रवृत्ति करनी चाहिए । मगर हमारा श्रावकवर्ग दुनियादारी के पचडो मे इतना अधिक फसा रहता है और उसमे शिक्षा का इतना अभाव है कि वह समाज-सुधार की प्रवृत्ति को यथावत् सचालित नही कर सकता । श्रावको मे धर्म सबन्धी ज्ञान भी इतना पर्याप्त नही है, जिससे वे धर्म का लक्ष्य रख कर, धर्म-मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रख कर तदनुकूल समाज–सुधार कर सकें ।

" इस स्थिति मे किस उपाय का अवलबन करना चाहिए, जिससे समाज–सुधार के कार्य मे रुकावट न आवे और साधुओ को भी इस कार्य से अलहदा रखा जा सके ? आज यही प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है और उसे हल करना अत्यावश्यक है ।

इस समस्या के समाधान मे युग–बोध देने वाले युगद्रष्टा आचार्यश्री ने जो उद्बोधक विचार प्रस्तुत किये, वे इस युग को उनकी महानतम देन हैं —

"मेरी सम्मति के अनुसार इस समस्या का हल ऐसे तीसरे वर्ग की स्थापना करने से ही हो सकता है, जो साधुओ और श्रावको के मध्य का हो। यह वर्ग न तो साधुओ मे ही परिगणित किया जाय और न गृह-कार्य करने वाले साधारण श्रावको मे ही। इस कार्य मे वे ही व्यक्ति समाविष्ट किये जाए जो ब्रह्मचर्य का अनिवार्य रूप से पालन करे और अकिंचन हो अर्थात् अपने लिए धन-सग्रह न करें। वे लोग समाज की साक्षी से, धर्माचार्यो के समक्ष इन दोनो व्रतो को ग्रहण करें। इस प्रकार के तीसरे त्यागी श्रावक-वर्ग से समाज-सुधार की समस्या भी हल हो जायगी और धर्म का भी विशेष प्रचार हो सकेगा। साथ ही निर्ग्रन्थ वर्ग भी दूषित होने से बच जायगा।"

"सच्चे सेवा-भावी और त्याग परायण तृतीय-वर्ग की स्थापना से समाज सुधार के अतिरिक्त धार्मिक कार्यों मे बडी सहायता मिलेगी। यह वर्ग न तो साधु पद की मर्यादा मे बधा रहेगा और न गृहस्थी के झझटो मे ही फसा होगा। अतएव यह वर्ग धर्म प्रचार मे उसी प्रकार सहायता पहुचा सकेगा जैसे चित प्रधान ने पहुचाई थी।

'अगर अमेरिका या किसी अन्य देश मे सर्व-धर्म-सम्मेलन होता है, वहा सभी धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म की श्रेष्टता का प्रतिपादन करते है तो ऐसे सम्मेलनो मे मुनि सम्मिलित नही हो सकते। अत धर्म प्रभावना का कार्य रुक जाता है। यह तीसरा वर्ग ऐसे अवसरो पर उपस्थित होकर जैनधर्म की वास्तविक उत्तमता का निरूपण करके धर्म की बहुत सेवा कर सकता है।

'तीसरे वर्ग की स्थापना मे यद्यपि साधुओ की सख्या घटने की सभावना है और यह भी सभव है कि भविष्य मे अनेक पुरुष साधु होने के बदले इसी वर्ग मे प्रविष्ट हो, लेकिन इससे घबराने की आवश्यकता नही है। साधुता की महत्ता सख्या की विपुलता मे नही है, वरन् चारित्र की उच्चता और त्याग की गम्भीरता मे है। उच्च चारित्रवान और सच्चे त्यागी मुनि अल्प सख्यक हो तो वे भी साधुपद की गुरुता का सरक्षण कर सकेंगे। बहुसख्यक शिथिलाचारी मुनि उस पद के गौरव को बढाने के बदले घटायेगे ही। अतएव मध्यवर्ग की स्थापना का परिणाम यह भी होगा कि जो पूर्ण त्यागी और पूर्ण विरक्त होंगे, वही साधु बनेंगे और शेष लोग मध्यवर्ग मे सम्मिलित हो जाएगे। इस प्रकार साधुओ की सख्या कदाचित घटेगी तो भी उनकी महत्ता बढेगी। जो लोग साधुता का पालन पूर्णरूपेण नही कर सकते या जिन लोगो के हृदय मे साधु बनने की उत्कठा नही है, वे लोग किसी कारण विशेष से, वेश धारण

करके साधु का नाम धारण कर भी लें तो उनसे साधुता के कलंकित होने के अतिरिक्त और क्या लाभ हो सकता है ? इसलिए ऐसे लोगो का मध्यम वर्ग मे रहना ही उपयोगी और श्रेयस्कर है । इन सब दृष्टियो से विचार करने पर समाज मे तीसरे वर्ग की विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है ।"

साधुत्व को अक्षुण्ण बनाये रखने एव सामान्य गृहस्थो को गृहस्थी के प्रपचो से विरक्त होकर त्याग, ब्रह्मचर्य, शास्त्र ज्ञान और नि स्वार्थ सेवा भावना-पूर्वक तीसरे वर्ग की स्थापना का दिग्दर्शन युगद्रष्टा आचार्यश्री जी की इस युग को एक अन्यतम विशिष्ट देन है ।

श्री अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के सन् १९३२ के अजमेर अधिवेशन मे इस तीसरे वर्ग की योजना को स्वीकार किया गया और जयपुर निवासी रत्न-व्यवसायी धर्मवीर श्री दुर्लभ जी भाई जौहरी ने उसी समय उसमे प्रविष्ट होने की पहली घोषणा भी की परन्तु समय की परिपक्वता न होने के कारण उस समय उसे क्रियान्वित नही किया जा सका ।

समय के साथ इन विचारो की उपादेयता और उन्हें मूर्तरूप प्रदान करने की आवश्यकता निरतर बढती गई । श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ ने गत वर्ष देशनोक अधिवेशन मे आचार्य श्रीजी के विचारो की कडियो को जोड़कर निवृत्ति, स्वाध्याय, साधना और सेवा के चार मूल आधारो पर आधारित उपासक, साधक और मुमुक्षु की उत्तरोत्तर विकासशील तीन श्रेणियो की परिकल्पना के साथ इस ठोस एव व्यावहारिक योजना को **"वीर सघ"** नाम देकर मूर्तरूप प्रदान किया है । तीनो श्रेणियो को मिलाकर अब तक लगभग ७५ सदस्य बन चुके हैं । जयपुर के ही रत्न व्यवसायी मानवरत्न त्यागमूर्ति, श्री गुमानमलजी चोरडिया इसके प्रथम प्रधान निर्वाचित हुए हैं ।

वीर सघ मे अर्थ और पद का महत्व न रख कर कर्म और सेवा को ही प्रधानता रखी गई है। तदनुसार अध्यक्ष, मन्त्री, कोषाध्यक्ष के पदो के स्थान पर कार्य योजना के अनुसार व्यवस्था प्रमुख, स्वाध्याय प्रमुख, साधना प्रमुख, सेवा प्रमुख एव प्रथम सेवक के रूप मे प्रधान का चयन किया जाता है।

धर्मवीर लोकाशाह, लवजीऋषि आदि नवक्रांति का सूत्रपात करने वाले मनीषियो के सदृश यह योजना भी आज के सदर्भ मे एक नए युग का सूत्रपात है ।

नोट — योजना का विस्तृत विवरण **"वीर संघ"** रूप रेखा एव नियमावली पुस्तिका मे वर्णित है ।

द्वितीय खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य

जीवन-दर्शन

ज्योतिर्धर आचार्य

● प्रवर्तक पंडितरत्न श्री विनयऋषि जी म.

अप्रतिम संत

मेरे सद्भाग्य से मुझे कुछ दिन तक स्व० पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा की सेवा का लाभ मिला। वे सिर्फ स्थानकवासियो के नही, परन्तु पूरे जैन समाज के अप्रतिम, अद्वितीय सत थे । आप श्रमण एव आर्य–सस्कृति के महान् सरक्षक थे । आपश्री युगद्रष्टा, युगप्रवर्तक, क्रातिकारी, जैन समाज की महान् विभूति के रूप मे ज्योतिष्मान् नक्षत्र की तरह चमके ।

प्रखर वक्ता ·

आपकी वक्तृत्व शक्ति अलौकिक एव अजोड़ थी । आप जव प्रवचन फरमाते थे तव श्रोताजन मत्रमुग्ध हो जाते थे । वुलन्द आवाज, विवेचन शक्ति, नवीन स्फूर्तिदायक दृष्टि की विशालता एव मानवता के महान् पुरस्कर्ता के रूप मे आप जनता के हृदय मे सहज स्थान प्राप्त कर लेते थे ।

दो प्रश्न —

एक वार एक आर्य-समाजी भाई ने आकर उनसे दो प्रश्न किए— "आपके जैनधर्म मे शुद्धि एव पुनर्विवाह के लिए कुछ स्थान है ?" उत्तर में आपने फरमाया कि "हमारे शास्त्रो मे शुद्धि के १० प्रकार वताये हैं, छोटा या बड़ा दोष लग जावे तो उसके लिए भी प्रायश्चित्त का विधान है और उसे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध किया जाता है और समानता का स्थान दिया जाता है।

पुनर्विवाह के लिए हम कुछ नही कह सकते परन्तु एक मनुष्य स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन विताता है तो वह व्रत प्रत्याख्यान लिया हुआ भी श्रावक की श्रेणी मे नही आ सकता और पुनर्विवाह करने वाला श्रावक, व्रत–ग्रहण करके उसका पालन करके श्रावक हो सकता है ।"

निसर्ग के प्रति प्रेम

आपको विज्ञान एव कृत्रिमता की अपेक्षा कुदरत के प्रति विशेष प्रेम था। आपने कहा था—शिवनिवास पहाडी का जो सौदर्य है, वह एम्पायर विल्डिग से विशेष है। वे हमेशा करीव ६ मील घूमते थे, उस समय आपके मस्तिष्क मे अनेक प्रकार की स्फूर्तिदायक व जीवनोपयोगी कल्पनाए उद्भूत होती थी। उनका ये व्याख्यान मे उपदेश के रूप मे उपयोग करते थे।

संपत्ति–लक्ष्मी

एक श्रोता ने आपसे सपत्ति–लक्ष्मी के सवन्ध मे प्रश्न पूछा तो उत्तर मे आपने फरमाया कि "पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार नही है और उसका उपयोग भी पुत्र नही कर सकता, क्योकि पिता सपत्ति–लक्ष्मी का पति है तो वह पुत्र की माता हुई और उसका उपयोग करना माता के साथ दुर्व्यवहार करने के समान है।

भारत के दो जवाहर :

पूज्यश्री जव सौराष्ट्र मे विचरण कर रहे थे तव राणपुर पधारे, उस समय उनके जाहिर प्रवचन होते थे। वहा पर एक प्रसिद्ध पत्र के सपादक भी सुनने के लिए आते थे। उन्होने अपने अखवार मे आपका परिचय देते हुए कहा कि "भारत मे एक जवाहर नही है परन्तु दो जवाहर हैं। एक धर्मनेता जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज एव दूसरे राष्ट्रनेता हृदय–सम्राट श्री जवाहरलाल जी नेहरू।"

आचार्य श्री जी अपने प्रवचन मे सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, नैतिक एव शैक्षणिक उन्नति के सवन्ध मे हमेशा नई दिशा देते थे।

ऐसा दूध पीना खून के वरावर

आचार्यश्री घाटकोपर से वम्वई की ओर विहार कर रहे थे तव वे कुर्ला के नजदीक पधारे। वहा पर गाय, भैस एव वैल के कटे हुए मस्तको से भरी हुई गाडिया देख कर पूछा "यह क्या है?" तव श्रावको ने उत्तर दिया, "महाराज साहव! ये वान्द्रा के कतलखाने मे कटे हुए पशुओ के मस्तक हैं।" तव सभी वातो की जानकारी करने के वाद "जहा ऐसी हिंसा होती है, उस शहर मे पैर नही रखना।" यह कह कर वापिस लौट कर घाटकोपर आये और वहा पर चातुर्मास मे तत्सम्वन्धी उद्वोधनो से "सार्वजनिक प्राणी दया" संस्था की स्थापना की और कतलखाने मे और कसाइयो के हाथो कटते

हुए पशुओं को बचाने का उपदेश दिया। वे बम्बई और बडे शहरो में दूध को पीना खून के बराबर मानते थे, क्योंकि कृत्रिम रीति से दूध निकाला जाता था और दूध देना बन्द होने के बाद गाय-भैंस कसाई को बेच दी जाती थी।

संगठन-प्रेमी :

ई० सन् १९३३ मे अजमेर साधु-सम्मेलन मे उन्होने स्थानकवासी श्रमण-सघ के सगठन के लिए बहुत परिश्रम किया परन्तु सफलता न मिली। उनका फरमाना था कि एक सघ, एक समाचारी एव एक आचार्य का होना अनिवार्य है, परन्तु विचारभेद के कारण सफल न हो सके।

आत्मबल :

वि० स० १९८० मे जब आपको सातपुडा जहरी छाला हो गया था तब आपके हाथ का आपरेशन बिना क्लोरोफार्म सुघाये किया गया। उस समय डॉ० मुलगावकर आदि आश्चर्यचकित हो गये। ऑपरेशन के बाद कई दिनो तक विश्राति लेनी पडी। तब आपने कहा कि बीमारी ने मेरे पर बडा उपकार किया, मुझे चिन्तन-मनन के लिए अच्छा समय मिला।

सर्वथा निर्लिप्त :

वे परिग्रह से बहुत अलिप्त रहते थे। उनकी मान्यता थी कि जैसे विषयवासना का त्याग अर्थात् चौथे महाव्रत का जितनी कट्टरता से पालन करते हैं, उतनी ही कट्टरता से पाचवें महाव्रत का पालन करना चाहिए। पाचवा महाव्रत परिग्रह का—मूर्छा त्याग का है और परिग्रह भी एक आस्रव है। पूज्य श्रीलाल जी महाराज साहब के स्मारक के लिए बीकानेर श्रीसघ ने फड किया परन्तु आप उससे बिल्कुल अलिप्त रहे। आपने कहा कि यह मेरा साधु-धर्म नही है कि मेरे वचन से फड हो और उसकी अव्यवस्था हो तो जवाबदारी मेरे पर आती है।

वाणी के जादूगर :

आपश्री हरिश्चन्द्र-तारा, चदनबाला, सुदर्शन सेठ आदि की कथाए व्याख्यान मे आधुनिक शैली से समझाते थे। उन व्याख्यान-कथाओ की पुस्तकें जब प्रकाशित हुई, तब जनता मे उनकी काफी रुचि पैदा हुई। लोग दिलचस्पी से उन्हें पढते थे। "हरिश्चन्द्र-तारा" पुस्तक जब श्री मणिलाल जी कोठारी ने जेल मे पढी तब उन्होंने कहा कि मैंने बहुत सी हरिश्चन्द्र-तारा के सम्बन्ध

मे पुस्तकें पढी हैं परन्तु यह तो सबसे अनूठी है । ऐसे उत्तम भाव एव विचार-धारा दूसरे स्थान पर मिलना मुश्किल है ।

राष्ट्रीय विचारो के धनी :

आपश्री ने "धर्म और धर्मनायक" पुस्तक मे फरमाया है कि जब राष्ट्रधर्म की रक्षा होगी तभी सत्य-धर्म की रक्षा हो सकेगी । श्री ऋषभदेव भगवान् ने पहले राष्ट्रधर्म की शिक्षा और व्यवस्था दी। बाद मे आत्मधर्म के लिए उपदेश दिया । तात्पर्य यह है कि राष्ट्र सुरक्षित रहेगा तो ही धर्म भी सुरक्षित रहेगा, अत राष्ट्र की सेवा करना सब देशवासियो का कर्त्तव्य है ।

हरिजनों से प्रेम :

एक बार उदयपुर के व्याख्यान मे आपने कोठारी साहब से पूछा, "कोठारी जी ! गन्दगी करने वाला अच्छा या गन्दगी दूर करने वाला अच्छा ?" "बापजी ! गन्दगी साफ करनेवाला अच्छा है ।" "ये हरिजन आपकी गन्दगी को साफ करते हैं तो वे अच्छे हैं न । तो उनसे क्यो घृणा की जाती है ? उनको दूर क्यो बिठाया जाता है ? आप गन्दगी करो और वे दूर करें तो आप अच्छे और वे बुरे, यह कहा का न्याय ?"

क्रांतिकारी :

धार्मिक, सामाजिक रिवाजो मे आपने बडी क्राति की । आप जब जलगाव से रतलाम पधारे तब दर्शनार्थियो को मीठा भोजन जिमाने की अपेक्षा सादा भोजन जिमाने का उपदेश दिया । रतलाम श्रीसघ ने सादे भोजन का प्रबन्ध किया तो दर्शनार्थी लोग चर्चा करने लगे, तब भरी सभा में व्याख्यान के समय वर्धमान जी सेठ को पू महाराज सा ने पूछा - वर्धमान जी सेठ ! आपका भाई आपके घर पर आवे तो आप सादा भोजन जिमावो या मीठा ? तब सेठजी ने कहा—"बापजी ! सादा भोजन जिमावें ।" तब सेठजी को पूछा गया, "ये सब दर्शनार्थी आपके स्वधर्मी, धर्मबधु बन कर आये हैं या जमाई बन कर आये हैं ?" "बापजी ! ये सब स्वधर्मी बन्धु बन कर आये है, जमाई बन कर नहीं ," "तब उनको सादा भोजन देना ही बराबर है, मीठा भोजन देना योग्य नही है ।" फिर श्रोताओ मे पूछा कि—देवानुप्रियो ! आप सब स्वधर्मी बन्धु बन कर आये हैं या जमाई बन कर ? तब सभा मे से एक ही आवाज सुनाई दी, "अन्नदाता ! हम सब स्वधर्मी बन्धु बन कर आये हैं ।"

❀ ❀

अविस्मरणीय प्रसंग

● श्री मगनमुनिजी म. सा.

जैन समाज के प्रहरी, जिनवाणी के सदेश—वाहक, धर्म के प्रभावक जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म सा का शताब्दी महोत्सव मनाया जा रहा है। शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष्य मे 'श्रमणोपासक' विशेषाक छपने की तैयारी मे है, ऐसे समय मेरी कलम भी कैसे रुक सकती है ?

वात्सल्य वारिधि :

स० १६६६ मे, माघ महीने के शुक्लपक्ष की ११ के दिन मेरी दीक्षा सम्पन्न हुई। आध्यात्मिक चिकित्सक उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा का शिष्य बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। प्रथम चातुर्मास कानूर एव द्वितीय चातुर्मास सरदारशहर मे गुरुदेव के सान्निध्य मे हुआ। एक दिन गुरुदेव ने पूछा कि यदि अन्यत्र किसी की सेवा मे जाने का मौका मिले तो तुम जा सकते हो क्या ? मैंने प्रत्युत्तर मे कहा, पूज्य आचार्य श्री की सेवामे जाने के लिये मैं किसी भी क्षण तैयार हूँ। गुरुदेव ने फरमाया—आचार्य श्री की इच्छा है, मगनमुनिजी मेरी सेवा मे रहे तो ठीक है।

आज्ञा शिरोधार्य कर चातुर्मास समाप्ति के बाद दो सन्तो के साथ मैं आचार्य श्री की सेवा मे पहुँचा। आचार्य श्री ने वात्सल्य भाव से कृपा—पूर्ण दृष्टि डालते हुए प्रश्न किया—मैंने किस आशय से बुलाया तुम्हे, ज्ञात है ? फिर आशय बताते हुए कहा कि—जिस प्रकार तपस्वी श्री हमीरमल जी म. सा को उचित समय मे सथारा करवा कर उनका अतिम कार्य सिद्ध किया, उसी प्रकार समय आने पर मुझे भी सथारा देकर मेरा अन्तिम कार्य सफल करना। मेरा हृदय स्नेह सने शब्दो को सुनकर गद्गद् हो गया। मैंने कहा 'एक नवदीक्षित छोटे सत पर अगाध कृपा का भाव, आपकी महानता का द्योतक है।'

समता एवं समानता की साकार प्रतिमा :

समय कभी एकसा नही रहता । सुख–दु ख का चक्र निरन्तर चालू रहता है । जीवन मे साता एव असाता के उदय का क्रम बना रहता है, कभी तीव्र परिमाण मे, कभी मद परिमाण मे । स १९९९ के साल मे भीनासर विराजित आचार्य श्री के कमर मे ९ इच लबा चौडा जहरीला फोडा हुआ । फोडे का ड्रेसिग एव दवा देने का लाभ मुझे मिला । ड्रेसिग करते समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो आचार्यश्री समता–भाव मे स्नान कर रहे हैं । तीव्र वेदना को वे हसते–हसते सहन करते थे । भीनासर एव गगाशहर के मध्य मे रहे हुए बांठियाजी के बगले के हाल मे विराजित आचार्य श्री को एक दिन रात के २ बजे गरमी बहुत ही महसूस होने लगी । आपने फरमाया–असह्य गरमी से मैं बेचैन हो गया हू, अत मुझे हाल के बाहर बरामदे मे ले चल। मैंने सोचा–अब किसे जगाऊ ? मुझे विचार–मग्न देख आचार्य श्री ने कहा–अरे ! तू क्या सोच रहा है, तेरे मे १०० व्यक्तियो की शक्ति है । जरा प्रमाद दूर कर । इसी वाक्य को तीसरी बार जोश मे कहा । मैंने उस दिव्य, भव्य, सौम्य, एव सौजन्य मूर्ति की ओर देखा । आश्चर्य यह कि–आचार्य श्री के प्रभाव और प्रेरणा से ओतप्रोत शब्दो ने जादू का काम किया और उसी क्षण मुझे एक युक्ति सूझी, आत्म विश्वास जागृत हुआ । उसी के बल पर आचार्य श्री को एक पाट से दूसरे पाट पर बैठाते हुए मैं अकेला उन्हे बरामदे मे ले आया । ६ व्यक्तियो का कार्य अकेला कर सका । यह आचार्य श्री की कृपा-दृष्टि का ही सुफल था । आचार्य श्री ने प्रसन्न होकर कहा—आलस्यो हि मनुष्याणा शरीरस्थो महारिपु । शरीर मे रहे हुए आलस्य–शत्रु को नष्ट कर, प्रमाद को दूर करेगा तो हर कार्य मे सफलता प्राप्त होगी । महापुरुषो का प्रत्येक शब्द प्रेरणाप्रद होता है तथा दृष्टि मे कल्याण भावना ओतप्रोत बनी रहती है ।

करुणा–निकेतन

एक दिन, करीब रात के २ बजे का समय था । मैं एव बीकानेर वाले चौथमल जी म सा आचार्य श्री के इर्द गिर्द खडे थे । उसी समय मेरे दोनो पैरो के बीच टकराता हुआ सर्प निकला । बाहर से आते हुए प्रकाश मे सर्प देखते ही चौथमल जी म सा बोल उठे—मगन मुनिजी ! तुम्हारे पैरो के बीच होकर सर्प जा रहा है । मैंने कहा–कुत्ता पूछ हिलाता होगा । देखा तो सर्प था । सर्प को पकडने की इच्छा प्रकट की तो आचार्य श्री ने फरमाया, पकडने मे सर्प को कष्ट होगा, इसके पीछे २ जाकर जहा जाता है वहा इसे

छोड था ।' सवेरे वगीचे तक निशान देखे गये । वाद मे चम्पालाल जी वाठिया ने वताया कि यह वहुत वडा उर्प, यहा कई वर्षों से रहता है, पर कभी किसी को डसा नही । इस प्रकार प्राणी मात्र के प्रति आचार्य श्री के हृदय मे करुणा का स्रोत वहा करता था ।

नम्रता की अप्रतिम विभूति :

आचार्य श्री का अतिम समय जानकर मैंने उपाचार्य श्री से नम्र निवेदन किया कि आप इन्हे सथारा करवा दें । एक दो दिन चले तो कोई परवाह नही, लेकिन डाक्टरो ने तथा श्रावकसघ ने मना किया । तीसरे दिन रूई द्वारा दूध पिला रहा था, तब गले से घर्-घर् आवाज आने लगी । जवान वद हो गई । मैंने उपाचार्य श्री से कहा—अव क्या करना ? उपाचार्य श्री ने कहा म सा अपने मुह से कह दें, तो मैं अभी सथारा करवा दू । वाद मे मैंने अपनी वुद्धि-अनुसार उपचार किया तो कुछ क्षण के वाद आचार्य श्री वोल उठे । मैंने कहा, समय चूक जाने से कार्य नही होगा । १२ वजे विधि-सहित सथारा दिया गया । सथारा देने के वाद आचार्य श्री के अतिम उद्गार थे, "मुझे कोई वदन नही करना । मैं सवमे छोटा हूं ।" ऐसी नम्रता एवं लघुता ने ही आपको आचार्य जैसे श्रेष्ठ एव उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया । ५ घटे के वाद, स २००० मे आपाढ शुक्ला अष्टमी के दिन आपका स्वर्ग-वास हुआ ।



अहिंसा का पालन करो । जीवन को सत्य मे ओतप्रोत वनाओ । जीवन-रूपी महल की आधारशिला अहिंसा और सत्य हो । इन्हीं की सुदृढ नीव पर अपने अजेय जीवन-दुर्ग का निर्माण करो । विलासिता तजो । सयम और सादगी को अपनाओ ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म)

एक योग्यतम अनुशास्ता

● श्री मधुकर मुनि

आचार्यश्री जी अपने युग के एक योग्यतम अनुशास्ता थे। वे आचार्य-सम्पदा से सम्पन्न आचार्य थे। यद्यपि वे एक सम्प्रदाय–विशेष के आचार्य थे, परन्तु उनका प्रभाव सर्वतो–मुखी था।

उनके जीवन में शान्ति, क्रान्ति व सयम साधना का सुन्दर त्रिवेणी–सगम था। मन में मनस्विता, वाणी में ओजस्विता, मुख-मडल पर ब्रह्मतेजस्विता आदि अनेक प्रमुख गुणो के कारण आचार्यश्री जी जन–जन के आकर्षण के केन्द्र बने हुए थे।

सस्कृति की सयोजना की ओर और समाज में इतस्तत प्रसृत रुढिवादिता और अध–विश्वासो को दूर करने की ओर उनकी आभामयी उद्घोषणा थी।

वे स्वय शुद्ध सयम साधना के धनी थे। साधु–साध्वियो व श्रावक–श्राविकाओ के लिये भी सतत सयम–निष्ठ होकर रहने की प्रेरणा निरतर देते रहते थे वे।

अपने विचारो मे पूर्णत सुदृढ रह कर भी वे दूसरो के विचार सुनने व समझने की सजग क्षमता रखते थे।

अल्पारम्भ व महारम्भ को लेकर उस समय जैन–समाज मे प्रमुखत स्थानकवासी जैन समाज मे काफी ऊहापोह चलता था। इस बात को लेकर जन–मस्तिष्क मे नानाविध प्रश्न प्रस्फुटित होते रहते थे। सही समाधान न पाकर वे अपने ही प्रश्न–जाल मे उलझते जाते थे। आचार्यश्री जी के सम्मुख भी ऐसी प्रश्नावली आई। उन्होंने इस पर गहरा चिन्तन–मनन किया। उनके इस निदिध्यासन से जो निष्कर्ष–नवनीत निकला, उससे जनता को शुद्ध श्रद्धा का पोषण मिला।

कृषि व अन्य ऐसे व्यवसाय उनकी तर्क-सम्मत विचार-धारा में महारंभ के कार्य नही माने गये । बुद्धिजीवी लोगो को उनकी यह विचार-धारा बहुत पसन्द आई ।

कुछ समय पूर्व स्थानकवासी जैन समाज मे गन्दे रहने की प्रवृत्ति को उच्च स्थान दिया जाने लगा था । आज भी समाज मे यत्र-तत्र ऐसी मान्यता बल पकडी हुई है । जिन लोगो ने आचार्य श्री जी के श्रीमुख से साक्षात् प्रवचन सुने हैं या जिन्होने उनके प्रवचन साहित्य का अवगाहन किया है, उन्हें यह जानकारी मिली होगी कि आचार्य श्री जी की मान्यता मे इस विचार-धारा को कही भी स्थान नही मिल पाया ।

गाधी-युग का प्रभाव भी आचार्य श्री जी पर पड़ा है । वे स्वय शुद्ध खादी व स्वदेशी वस्तुओ को ही अपने उपयोग मे लाते थे । उनके प्रवचनो मे लोगो को भी मिल के वस्त्र व विदेशी वस्तुओ के उपभोग को छोडने की प्रबल प्रेरणा मिलती थी ।

मुझे उनके दर्शनो का लाभ तो बहुधा मिला परन्तु उनकी सेवा मे रहने का सौभाग्य नही मिला । यह बात मुझे अब तक भी अखर रही है । बचपन से ही मैं उनकी विचार-धारा से प्रभावित था । आज भी मैं उनकी विचार-धारा से वैसा ही प्रभावित हूँ ।

उनके सत-जीवन के श्री चरणो मे मेरी शत-शत अभिवन्दना ।



दूसरो को कष्ट से मुक्त करने के लिये स्वय कष्टसहिष्णु बनो और दूसरो के सुख मे अपना सुख मानो । मानवधर्म की यह पहली सीढी है ।

(पूज्य श्री जवाहरलालजी म.)

आचार्यश्री की वह भविष्यवाणी

● श्री देवेन्द्रमुनि

नब्ज को पहचानने वाले सन्त-रत्न :

युगपुरुष वह व्यक्ति होता है जो अपने युग को अभिनव चेतना व नवीन जागृति का सन्देश देता है। उसके विमल-विचारो मे युग के विचार मुखरित होते हैं, उसकी अभय-वाणी मे युग के विचार झकृत होते हैं, उसकी कर्मठ क्रिया-शक्ति मे युग को नवीन स्फूर्ति प्राप्त होती है। वह अपने युग की जन-चेतना का साधिकार प्रतिनिधित्व करता है। वह जन-जन को सही दिशा की ओर प्रयाण करने की प्रबल प्रेरणा ही नही देता, अपितु भूले-भटके जीवन-राहियो का पथ-प्रदर्शन भी करता है कि जिस पथ पर तू अपने मुस्तैदी से कदम बढा रहा है वह सही पथ नही है। यदि उसी पर आख मूद कर चला तो भटक जायेगा और बीच मे अटक भी जायेगा। अत जरा सावधान होकर चिन्तन की चादनी मे और अनुभूति के आलोक मे अपने लक्ष्य का निश्चय कर। दिल और दिमाग को स्वस्थ कर, मन की दुविधा को दूर कर, मेरे पास आ, मैं तुझे तेरे लक्ष्य पर पहुचा दूगा।

परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री जवाहरलाल जी महाराज सच्चे अर्थ मे युगपुरुष थे। उन्होंने अपने युग की भोली-भाली जनता को श्रद्धा का पाठ पढाया और चिन्तनशील व्यक्तियो को धर्म का मर्म बता कर दर्शन की दृष्टि प्रदान की। अल्पारभ-महारभ के सम्बन्ध मे उन्होने सूक्ष्म चिन्तन प्रस्तुत किया। श्रमण-मर्यादा मे रह कर राष्ट्रीय विचारो की अलख जगाई। खादी आदि के सम्बन्ध मे जम कर प्रचार किया। श्रमण-शिक्षा के सम्बन्ध मे नवीन चिन्तन दिया। मैंने आचार्य प्रवर के साहित्य को पढा है, खूब जम कर पढा है। उसके आधार से मैं साधिकार कह सकता हू कि वे एक महान् क्रांतिकारी, युग की नब्ज को पहचानने वाले सन्तरत्न थे।

मैंने आचार्यश्री के दर्शन बहुत ही लघु वय मे किये थे । । मेरा सासारिक पूरा परिवार आचार्यश्री के परम भक्तो मे था। जहां भी उनका वर्षा-वास होता, वहा महीने दो महीने के लिए चौका लगा कर उनकी सेवा के लिए रह जाता । रतलाम और कपासन के वर्षावास मे मैं भी अपने अभिभावको के साथ गया था ।

विक्रम स० १९९१ में आचार्यश्री का चातुर्मास कपासन था उदयपुर से सन्निकट होने के कारण पूरा परिवार आचार्यश्री के दर्शनार्थ वहा पहुचा था। मैं भी उस समय साथ था । उस समय मेरी उम्र तीन वर्ष की थी ।

जब मैं सिर्फ इक्कीस दिन का था, तब मेरे पिताजी का अठाईस वर्ष की उम्र में सथारे के साथ स्वर्गवास हुआ था । माताजी की उम्र छोटी थी, दादाजी मे धार्मिक भावनाए कूट-कूट कर भरी थी। उनकी प्रेरणा से मेरी माताजी उदयपुर मे स्थानापन्न विराजिता परम विदुषी महासती श्री सोहनकुवर जी म की सेवा मे प्रतिदिन जाती और थोकड़े व शास्त्र कटस्थ करती थी । उनका अधिकाश समय सतीजी की सेवा मे व्यतीत होता था । मैं भी मा के साथ दिन भर सतियो के स्थान पर ही रहता था । आर्य वज्रस्वामी की भाति मुझे भी साध्वियो से धार्मिक सस्कार मिले थे और साधुवेश मे रहना मुझे बहुत ही सुहाता था । जब मैं व्याख्यान सुनने के लिए जाता, साधुवेश मे ही जाता था ।

दीक्षा ले तो इन्कार मत होना :

एक दिन मैं साधुवेश मे अपने दादाजी के साथ गया था। आचार्यश्री शौचभूमि के लिए बाहर पधारे हुए थे । मैं बाल-सुलभ प्रकृति के कारण चबुतरी मे लगे हुए आचार्यश्री के पट्टे पर, जो छोटा पट्टा प्रवचन के लिए लगा था, उस पर जाकर बैठ गया और आचार्यश्री के प्रवचन की नकल करने लगा। दादाजी आदि अपने स्वाध्याय मे तल्लीन थे । उनका ध्यान मेरी ओर नहीं था । इतने मे आचार्यश्री अपने शिष्यो सहित पधारे, अपने बैठने के पट्टे पर मुझे साधुवेश मे बैठा हुआ देख कर उनकी पैनी दृष्टि मुझ पर गिरी और उन्होने सभी बैठे हुए व्यक्तियो को सम्बोधित कर पूछा-यह लड़का किसका है ?

दादाजी आगे बढे, अपने अपराध की क्षमा याचना करने के लिए, किन्तु आचार्यश्री ने मेरे सिर पर हाथ रख कर दादाजी को कहा—बड़ा होने पर यदि यह दीक्षा ले तो इन्कार मत होना । यह होनहार लड़का है, जैनधर्म की ज्योति को जगायेगा ।"

दादाजी व माताजी ने आचार्यश्री से नियम ले लिया कि हम इन्कार न करेंगे ।

मैंने पूज्य गुरुदेव महास्थविर श्री ताराचन्द जी म , राजस्थान केशरी अध्यात्मयोगी श्री पुष्करमुनि जी म के पास ६ वर्ष की लघुवय मे दीक्षा ग्रहण की ।

श्रमण बनने के पश्चात् सर्वप्रथम आचार्यश्री के प्रधान अन्तेवासी आचार्यश्री गणेशीलाल जी म के सादडी सन्त–सम्मेलन के अवसर पर दर्शन हुये । मुझे देख कर उनका हृदय आनन्द से विभोर हो गया । वे मुझे बहुत ही स्नेह करते थे । उसके पश्चात् जब भी उनके दर्शन हुए और साथ मे रहने का सुअवसर मिला, उस समय वार्तालाप के प्रसग मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म की भविष्य–वाणी दुहराया करते थे ।

मैं चिन्तन करता हूँ—मेरे मे कुछ भी सामर्थ्य नही है, पर आचार्य प्रवर के आशीर्वाद का ही प्रतिफल है कि मैं साधना व साहित्य के क्षेत्र मे अपने कदम आगे बढा रहा हू ।

मैं उस युगपुरुष आचार्यदेव के श्रीचरणो मे अत्यन्त श्रद्धा के साथ श्रद्धाजलि समर्पित करता हू ।



जैसे काल का अन्त नहीं है, वैसे ही आत्मा का भी अन्त नही है । यह बात जानते हुए भी दो दिन टिकने वाली चीज के लिए प्रयत्न करना और अनन्त काल तक रहने वाले आत्मा के लिए कुछ भी प्रयत्न न करना, कितनी गम्भीर भूल है !

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

इष्ट हमारा बने वही जो मंत्र आपने है प्रेरा

● श्री केसरीचन्द सेठिया

चुम्बकीय व्यक्तित्व :

आचार्यश्री से मेरा सर्वप्रथम साक्षात्कार कब और कहा हुआ, मुझे याद नहीं, किन्तु उनके सम्पर्क मे आने का, उनके प्रवचन सुनने का सुअवसर अनेक बार मिला। गौर वर्ण, विशाल काय, तेजस्वी मुखमडल पर स्मित-हास्य, ब्रह्मचर्य एव साधुत्व का तेज, बच्चो की सी सरलता और न जाने कितनी-कितनी भावनावो का सम्मिश्रण एक ही स्थान पर एकत्र हो गया था। उनका अथाह सागर सा गहन, अद्भुत व्यक्तित्व था। जिसका एक बार उनसे साक्षात्कार हो जाता, वह उनका होकर रहता, उनकी ओर खिचा चला जाता। ऐसा लगता, जैसे उनके सारे शरीर मे चुबक लगा हो।

मेरा जन्म जिस सेठिया परिवार मे हुआ, वह स्थानकवासी समाज मे अग्रणी माना जाता है। परिवार के लोग जहा भी आचार्यश्री का चातुर्मास होता, अवश्य जाते। मैं प्रारम्भ से ही अन्ध श्रद्धालु नही रहा वरन् सच तो यह है कि बहुत सी रूढिगत परम्पराओ को मानने वाले लोग रूढियो के इतने अधिक कायल हो गये थे कि उन बातो के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करना पसद ही नहीं करते थे। पर आचार्यश्री क्रातिकारी विचारो के प्रबुद्ध चिन्तक थे। इसीलिए मैं उनसे प्रारम्भ से ही बडा प्रभावित रहा।

दूरदृष्टि और गतिशील व्यक्तित्व :

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा के समय मे साधुओ का विद्याध्ययन नही के बराबर था। या फिर कुछ थोकडे, एक आध शास्त्र के वाचन से ही इतिश्री मान लेते थे। आचार्यश्री की दूरदृष्टि ने देखा कि जिस गति

से समय बदल रहा है, अगर साधु-समाज ने संस्कृत, प्राकृत एवं अन्य विषयो का अध्ययन नही किया तो कोई आश्चर्य नही कि समाज के युवकवर्ग उनसे दूर, अति दूर होते जायेंगे। पडितो से न पढने की परम्परा मे उन्होने समयानुसार सुधार किया। कहा— जब तक कुछ साधु इस योग्य तैयार नहीं हो जाते कि वे अन्य साधुओ को विद्याध्ययन कराने मे सहायक हो जाए, तब तक वे पडितो मे अध्ययन करें। यही कारण है कि आचार्यश्री स्वर्गीय पडितरत्न श्री घासीलाल जी म सा, स्वर्गीय पूज्य श्री गणेशीलाल जी म सा जैसे अनेक विद्वान साधुओ को तैयार कराने मे सफल हुए। पडित श्री घासीलाल जी म सा ने तो अपने जीवन का लक्ष्य ही शास्त्रोद्धार बना लिया था। कुछ वर्षो पूर्व अहमदाबाद मे उनके अतिम दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जहा वे विराजित थे, उस स्थान पर केवल उनका चेहरा ही दिखता था। इधर-उधर बडे-बडे ग्रथ पडे थे जिनसे उनकी सारी देह ढक गई थी। वार्तालाप मे उन्होने कहा कि आज जो कुछ भी बन पाया हूँ, जो कुछ भी शासन की सेवा कर रहा हू, वह आचार्य गुरुदेव की महती कृपा का ही फल है। श्री गणेशीलाल जी म सा पर शासन की अन्य जिम्मेदारिया आ पडी, अत वे इन सब कामो मे अधिक समय नही दे सके। उनकी सरलता, भद्रता, नम्रता, मृदुता, उच्च साधुत्व, क्षमा आदि इतने गुण थे कि पूरे साधु-समाज मे उपाचार्य के रूप मे प्रतिनिधित्व मिला।

ज्ञानपिपासु और जिज्ञासा :

जो लोग प्रारम्भ मे ही आचार्यश्री के सम्पर्क मे आए, वे जानते थे कि उन्होने स्वय जहा भी अध्ययन का, ज्ञान की उपलब्धि का अवसर मिला, उसका लाभ लिया। अन्य-अन्य धर्मो का भी तुलनात्मक अध्ययन किया। नए नए ज्ञान सीखने की पिपासा अतिम समय तक उनमे थी।

निराली प्रवचन शैली :

प्रवचन देने की उनकी अपनी, निराली शैली थी प्रारम्भ मे विनय चद चौबीसी मे से या अन्य किसी प्रार्थना की २, ४ कडियो के साथ अपना प्रवचन प्रारम्भ करते और उसी के माध्यम मे घन्टों जिस विषय पर बोलना होता, धाराप्रवाह बोलते। जिस विषय को ले लेते, उसका बडे ही सुन्दर ढग से विवेचन एव प्रतिपादन करते कि श्रोतागण मत्र-मुग्ध हो जाते। वे अपने प्रवचनो मे धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सब विषयो पर अपने मौलिक विचार रखते। समाज मे फैली हुई गलत धारणाओं, मान्यताओं

का उन्होंने निवारण किया। खेती मे महारम्भ मानने वाले लोगो के भ्रम का निवारण किया। समाज मे फैली हुई कुरीतियो के लिए भी वे स्पष्ट विचार रखते थे। खादी के वे बहुत बडे हिमायती थे। उनके राष्ट्रीय एव क्रातिकारी विचार केवल श्रावक-श्राविकाओ तक ही सीमित नही थे। वे साधु-समाज मे भी बढती हुई आत्म-प्रशसा, शिथिलता, अपने या अपने गुरुओ के नाम से सस्थाओ के सचालन, बेशकीमती विलायती वस्त्रो (उस समय पाच पी या ग्लासगो आदि लट्ठे का ही अधिक उपयोग था) का उपयोग, शिक्षा के प्रति उपेक्षा आदि के प्रति उन्हे सजग करते थे। वे फरमाते थे कि—साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओ का चतुर्विध सघ भगवान महावीर ने गठित किया है, उसका एक दूसरे के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध है, जितना कि शरीर के प्रत्येक अग का एक दूसरे के साथ।

विचारो मे स्पष्टता :

इस सदर्भ मे मुझे आज भी याद है—रात को जब प्रश्नोत्तर होते थे तो किसी ने पूछा था—आचार्य देव! जैनधर्म तो जातिवाद को नही मानता फिर आप लोग हरिजनो की बस्ती मे पधार कर गोचरी क्यो नही लेते ?

जहा तक मुझे स्मरण है, आचार्यश्री ने फरमाया था— तुम ठीक कहते हो। जैनधर्म जातिवाद को नहीं मानता। वह हमेशा गुणो का पूजक रहा है लेकिन हम जिस समाज के गुरु हैं उसमे छुआछूत की बीमारी अत्यधिक फैली हुई है। ब्राह्मण सस्कृति का काफी प्रभाव आप लोगो के गृहस्थ-जीवन पर पडा हुआ है। कोई भी सामाजिक उत्सव आप लोगो का उनके बिना पूरा नहीं होता। अगर आप लोगो को एतराज नही हो तो हमे इसमे कोई आपत्ति नही सिर्फ वह निरामिषभोजी होना चाहिए। हममे इतना आत्मबल नहीं आया कि हम आप लोगो की उपेक्षा कर सके। आचार्यश्री के स्पष्ट विचार सुन कर मैं अवाक् रह गया। अगर अन्य साधु होता तो अनेक प्रकार से प्रश्न को टालता।

नियमित जीवनचर्या :

आचार्यश्री का दैनिक जीवन बहुत व्यस्त रहता। सुबह व व्यायाम, ध्यान, प्रार्थना, अध्ययन तथा अन्य साधु-क्रियाओ मे व्यस्त रहते। वे इन सब क्रियाओ मे बडे चुस्त थे। प्रत्येक सोमवार को मौन रखते। उनकी कथनी और करनी मे इतना एकाकार था कि छोटे से छोटे साधु के दिल मे भी नही

आता कि इतनी बडी सम्प्रदाय के आचार्य का जीवन साधुचर्या मे अन्य साधुओ से कुछ भिन्न है।

सद्धर्म का प्रचार :

तेरहपथी सम्प्रदाय मे उस समय दया–दान सम्बन्धी कुछ ऐसी मान्यताए प्रचलित थी जिनसे जैनधर्म के मूल मत्र अहिंसा पर ही कुठाराघात होता था । आचार्यश्री के दिल मे इसकी मार्मिक पीडा थी कि यह क्या हो रहा है ! जिस सिद्धान्त पर हमारे धर्म की नीव है, उसी अहिंसा पर इतना भ्रातिपूर्ण प्रचार ! आचार्यश्री ने घर–घर, गाव–गाव अनेक दु सह परिषहो, कठिनाइयो को सहकर भी भ्राति को दूर करने की चेष्टा की। खास कर इसके लिए उन्हे थली जैसे उग्र प्रदेश मे विचरना पडा । 'सद्धर्म–मण्डन", "अनुकम्पा विचार " नामक पुस्तको की रचना की, जो आज भी जैन–साहित्य के भडार मे अमूल्य ग्रथ है । उस समय अनेक विद्वान साधु व आचार्य स्थानकवासी समाज मे तथा अन्य सम्प्रदायो मे थे, किन्तु यह बीडा सिर्फ वे ही उठा सके। उस समय आचार्यश्री को घोर परिश्रम करना पडा । उपलब्ध शास्त्रो, बडे-बडे ग्रथो का अवलोकन चलता था रेफरेंस के लिए । सेठिया ग्रथालय का भाग्योदय था कि उस समय उस ग्रथालय का जितना उपयोग हुआ, शायद उसके बाद कभी नही ।

उनके सारे व्याख्यान सकेत लिपि मे लिखे जाते । बाद मे 'जवाहर-किरणावली' के नाम से अनेक भागो मे उनका प्रकाशन हुआ । जहा–जहा साधु नही पहुँच सकते श्रावक उनको पढ कर व्याख्यान सुनाते है । यही क्यो, नव–दीक्षित साधुओ के लिए व्यक्तृत्व कला सीखने के लिए ये किरणावलिया अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है ।

अपार आत्मसतोष :

अतिम समय मे आचार्यश्री काफी अस्वस्थ रहे । मुझे अच्छी तरह स्मरण है । आचार्यश्री बीकानेर मे सेठिया कोटडी मे विराजते थे । बीकानेर, भीनासर, गगाशहर, देशनोक, नोखा आदि सारे नजदीक के निवासी चाहते थे कि आचार्यश्री हमारे यहा विराजें ताकि हम उनके पावन चरणो के दर्शन का लाभ उठा सकें । बीकानेर सघ सबसे बडा सघ था । आचार्यश्री ने सघ के प्रमुख श्रावको से पूछा—सबने कहा आचार्यश्री आप हमारे यहा ही विराजें । आचार्यश्री की दृष्टि बाबूजी (भैरोदान जी सेठिया) पर ठहर गई । आचार्यश्री

ने फरमाया—सेठियाजी, आपकी क्या राय है? बाबूजी ने बडी नम्रता के साथ कहा—हमारे बडे भाग्य कि आप जैसे पुण्यवान महापुरुष यहा विराजें और हमे सत-समागम का ही नही, चतुर्विध सघ की सेवा का लाभ मिले। लेकिन आपकी अस्वस्थता को एव चिकित्सकों के मत को जान कर मैं तो यही अर्ज कर सकता हूँ कि आपका भीनासर मे विराजना अधिक उपयुक्त है। वहा की खुली भूमि, शुद्ध हवा, शात वातावरण आदि आपके स्वास्थ्य के लिए अधिक अनुकूल हैं। हम गृहस्थो का क्या, हम तो किसी भी सवारी मे बैठ कर आ सकते हैं। आचार्यश्री के चेहरे पर एक अपार आत्मसतोष के भाव छा गए। जैसे वे प्रगट करते हो कि—मेरी तरह मेरे श्रावको मे भी निडर एव विलक्षण श्रावक हैं। आचार्यश्री की एक-एक बात को याद करें तो एक स्वतत्र पुस्तक बन सकती है। मैं अपनी 'श्रद्धाजलि' अपनी कविता की इन पक्तियो के साथ अर्पित करता हूँ, जो सन् १९४८ मे मैंने लिखी थी—

मोक्ष मार्ग के पथिक पूज्यवर,
हम कृत-कृत्य आज सारे।
तपोधनी, ऋषिवर्य! तुम्हारी,
महिमा से उज्ज्वल तारे।
. . ..
इष्ट हमारा बने वही जो,
मन्त्र आपने है प्रेरा॥

❀ ❀ ❀

सत्य विचार, सत्य भाषण और सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य ही उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है। जिस मनुष्य मे सत्य नही है, समझना चाहिए कि उसकी देह निर्जीव काष्ठ-पाषाण की तरह धर्म के लिए अनुपयोगी है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.)

दिव्य विभूति

● पं० 'उदय' जैन

पूज्यश्री जवाहराचार्य ईसा की प्रारम्भिक अर्द्ध वीसवी सदी की महान दिव्य विभूति थे। यह युग राष्ट्रीय क्राति का था, महात्मा गाधी की सत्याग्रह एव स्वतन्त्रता प्राप्ति के युद्ध की विभीषिका का था। भारत की पराधीनता से जनमन ऊब चुका था। अग्रेजो के राज्य से भारत मुक्त होना चाहता था और इसके लिये सब प्रकार के प्रयत्न चल रहे थे।

जनता स्वाश्रित बने। विदेशी सामग्री एव विदेशी व्यवस्था से विलग हो, अपना ग्रामाश्रयी उत्पादन बढावे और किसी वस्तु के लिये अग्रेजो के आश्रित न रहे। इस तरह का स्वदेशी आदोलन जोरो पर चल रहा था। ऐसे समय मे एक दिव्य विभूति पूज्यश्री जवाहर ने भी अपना धार्मिक क्राति का बिगुल बजा दिया। पुरानी मान्यताओं को शास्त्र विरुद्ध और जनमन को हानिकारक बताते हुए सच्चे शास्त्रीय प्रवचनो एव साहित्य का प्रसार करने के लिये आगे आये। कई साम्प्रदायिक आचार्यो ने उन्हे "निह्नव" की उपाधि से विभूषित किया। फिर भी वे बराबर अपने विचारो का प्रचार करते रहे।

आचार की प्रधानता के साथ आपने साधु समाज मे हाथ कते और बुने सूत के कपडो का व्यवहार चालू किया। सच्चे श्रुतज्ञान का भण्डार खोल कर श्रावको के सामने रखा। आनन्द, कामदेव आदि श्रावको के स्वाश्रयी जीवन एव त्यागमय व्यवहार तथा जनपालक कार्यो का विस्तारपूर्वक विवेचन किया। दस धर्मो का व्याख्यान किया। श्रावको को स्वय उत्पादक प्रवृत्ति का भान कराया। भारत के उत्तर पश्चिम और दक्षिण प्रदेशो मे भ्रमण कर राष्ट्रीयता का बोध कराया। राष्ट्र धर्म, कुल धर्म, गण धर्म आदि की उपादेयता का प्रचुर मात्रा मे प्रचार किया। उनके बडे २ श्रेष्ठि भक्त खद्दरधारी बने, व्रती बने। कृषि और पशुपालन क्रिया को अपनाया। 'पिंजरा पोल' खोले।

आपने धार्मिक शिक्षण हेतु ट्रेनिंग कालेज चलाने की प्रेरणा दी। उस समय राष्ट्रीय प्रचार-प्रसार मे उनके श्रावक भक्त बहुत आगे आये।

भारत मे जैन समाज के जितने राष्ट्रीय नेता हुए, वे प्राय उनके भक्त थे। उनके भक्त स्पीकर, विधायक, लोक सभा सदस्य और मन्त्री बने। जेलो मे गये। राष्ट्रीय प्रोग्रामो मे आगे आये। गुरुकुल खोले और समय की पुकार के साथ सभी प्रकार के योग दिये।

वह दिव्य विभूति जिधर भी विहार करते हजारो भक्त जन आगे-पीछे चलते। भाषण करते तो मुग्ध होकर सुनते। उनका साहित्य, उस समय और इस समय के लिये बडा ग्राह्य है। उनके युग मे उनके साहित्य और भाषण की बडी धूम थी। भारत के बडे २ नेता—गाधी, नेहरू, मालवीय आदि उनके भाषणो मे आये और उनकी दिव्य शरीराकृति एव विचारो तथा प्रवृत्ति की भूरि-भूरि प्रशसा की। "यदि जवाहर साधु न होता, तो यह भारत का महान् नेता बनता" यह वाणी सब के मुख से उच्चरित होती।

जन-जन के मन मे एक बार इस दिव्य विभूति ने अपना नाम, काम और वाणी को बिठा दिया। महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, दिल्ली और मध्य प्रदेश मे जहा देखते उन्ही के श्रावको का, भक्तो का और मानने वालो का विस्तार था। सारी कान्फ्रेन्स उनके भक्तो मे भरी थी। उनकी वाणी का सभी जगह बडा आदर था। सच्चे मायने मे एक आचार्य के नाते जैन और अजैन समाज को समयानुकूल जो कुछ वे दे सकते थे, सब कुछ दिया, जिसे आज का समाज भूल नही सकता।

उनकी शरीराकृति इतनी आकर्षक थी कि उनके दर्शन मात्र से जनता झुक जाती थी। उनका ध्यान, उनका ज्ञान और उनका तेज ऐश्वर्य-युक्त था। दिव्यता निखरती रहती थी। देवत्व झलकता रहता था। किसी भी शक्तिधर नेता या मानव की शक्ति उनके सामने सवाल-जवाब करने की नहीं होती थी। वे जब प्रवचन के पूर्व प्रार्थना आरभ करते तो सारी जनता उनके दिव्य चेहरे और आसनयुक्त शरीर पर मोहित हो जाती। सारा समव-सरण शात और नीरव होकर प्रार्थनामय हो जाता। हजारो की सख्या मे जनता प्रवचन श्रवण मे सम्मिलित होती, लेकिन किसी को सुनने मे बाधा या दुर्मन नही होता। यही इस विभूति की दिव्यता थी।

वृहद् साधु सम्मेलन, अजमेर के समय सारे स्थानकवासी समाज के साधु रह अजमेर शहर मे सामने लेने गये। गाजे बाजे के साथ अगवानी करने

गये अत वे नही आये और दूसरे दिन साधारण स्थिति में विहार कर अजमेर सम्मेलन मे सम्मिलित हुए । वहा पर भी उनकी दिव्यता की बडी छाप थी ।

मच पर लाखो के सामने जब उन्हे 'लाउड स्पीकर' मे बोलने के लिये विनती की तो वे नीचे उतर आये और दूसरे दिन, जो साधु 'लाउड स्पीकर' मे बोले उनको प्रायश्चित्त लेना पडा । वे धुन के धनी और दिव्यता के देव थे । उनकी विभूति दिव्य थी और उनका आचार एवं विचार दिव्य थे । भौतिक शरीर और आध्यात्मिक क्राति भी दिव्य थी । उनके प्रवचन दिव्य थे और उनका साहित्य दिव्य था । उनके दर्शन दिव्य थे और स्पर्शन दिव्य था। उनके आचार्य पद के सभी लक्षण दिव्य थे, अत वे दिव्य विभूति थे ।

सारा भारत परतन्त्रता की बेडी मे जकडा हुआ था । सारा जैन समाज भी स्थानकवासी परम्परा मे बन्धा हुआ था । जगह २ स्थानको में साधुओ की परिग्रह की सामग्रिया उनके कब्जे मे पडी हुई रहती थी । श्रावक की जगह साधु स्थानकवास के आदी हो गये थे । साधु वृन्दो ने क्षेत्र-ममत्वी होकर अपने २ क्षेत्र मे अपनी-अपनी सप्रदाय के अखाडे जमा रखे थे । बहुत कम आचार्य अपने क्षेत्र से बाहर निकलते और धर्म प्रचार करते थे । श्रावक भी उन्ही के अवभक्त थे । साधु चारित्र से गिरने लग गये थे । ममत्वी और गृहस्थ परस्थ बन गये थे । साधुचर्या से गिरते हुए यतिप्रथा के अनुकूल ढलने लगे थे । एक आचार्य जीवरक्षा मे पाप बताते हुए अपने पथ का प्रबल सगठन बनाये हुए थे । उनके क्षेत्र मे किसी भी साधु के जाने की हिम्मत नही होती थी । ऐसे समय मे युग-प्रवर्तक, एक महान् आचार्यश्री जवाहर का धर्म-प्रसार कार्य बडा प्रभावक बना ।

वे साध्वाचार की कठोर प्रवृत्तिया स्वय पालते हुए, वैसा ही उपदेश देते हुए सभी सप्रदायो के गठित क्षेत्रो, प्रान्तो और श्रावक समुदायो मे विचरे। उनकी सप्रदाय को विदेशी कह कर सभी क्षेत्र के साधु और श्रावक बोलते थे लेकिन उनकी दिव्य हस्ती ने जहा गये, वही उनका बोलबाला कर दिया । सभी क्षेत्रो मे उनके विचार और प्रचार के भक्त बन गये । जिधर विचरे, उधर उन्ही का गान होने लगा। उन्ही की प्रशसा की जाने लगी । उन्ही का साहित्य फैलने लगा । उनके सच्चे सूत्रो के अर्थदान, सच्ची क्रियाशीलता, सच्चे श्रावक धर्म, सच्ची आचार परिपाटी एव सच्ची राष्ट्रीय धर्मप्रियता ने नये युग का आरम्भ कर दिया ।

अनेकात, अल्पारभ और महारभ करना, कराना और अनुमोदना, धर्म और पाप तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि पर उनकी चितना सारे राष्ट्र में

एव विचार सरणि का उद्गम बनी । पुराणी विचारणा पर प्रबल प्रहार हुआ और इनकी नई दृष्टिया आदरणीय बन गई । इनकी स्पष्टवादिता, निर्भीकता एव प्रामाणिकता की छाप ने युग का प्रवर्तन और परिवर्तन कर दिया । श्रावक सच्चे गृहस्थ धर्मारूढ बने और साधु, साधुता पर आये । साधुमार्गी सघ का अभ्युदय हुआ । कुल धर्म, राष्ट्र धर्म, गण धर्म आदि का विस्तार हुआ । स्थानको का मोह छूटा, क्षेत्र–ममत्व टूटा । साधु क्षेत्र मे बाहर निकलने लगे । शास्त्रो के सही अर्थ–प्रतिपादन करने लगे । "सद्धर्म मडन" एक दिव्य ग्रन्थ धर्म प्रतिपादन के लिये जैन समाज को मिला । थलियो मे विचरणकर कष्ट एव परिषह को जीतते हुए सद्धर्म का प्रचार प्रसार किया । सारा देश इनके उपदेश और साहित्य का अनुगमन करने लगा । राष्ट्रीयता और धार्मिकता का सगम एव नई विचार धारा का प्रवाहीकरण युगप्रवर्तक आचार्यश्री जवाहर का पुण्यकार्य था । अत वे युगप्रवर्तक कहलाये ।

महान् आध्यात्मिक नेता, साधु और आचार्यश्री जवाहर थे, जिन्होने नये युग के सूत्रपात के साथ आध्यात्मिक साधना का भी विस्तार किया । उनकी प्रार्थना स्वय ज्योति स्वरूप थी । प्रार्थना करते समय उनके दिव्य ललाट और मुखाकृति पर ज्योति विराजित हो जाती थी । दिव्य प्रभा आलोकित हो जाती थी । प्रार्थना स्वर के निकलते ही उनकी आत्मा का दिव्य स्वर प्रसारित हो जाता था । जिन्होने उनका प्रवचन सुना और प्रवचन के पूर्व उनकी प्रार्थना सुनी, वे ही इसका सही ज्ञान पा सके हैं ।

उनमे इतना आत्मतेज था कि उनके बडे बडे भक्त भी उनकी दिव्य फटकार से रो पडते थे । उनकी आध्यात्मिक क्राति, शाति एव तेजस्विता उनके दर्शन से ही अनुभवित हो जाती । अनेकान्त का सच्चा विस्तार और समन्वय की सरिता का प्रवाह ज्योतिर्धर श्रीजवाहर ने अपने युग मे निरन्तर बहाया ।

वे वेदान्त के विज्ञ वेत्ता थे और वेदान्त के साथ जिन–दर्शन का बडे मार्मिक ढग से समन्वय करते थे । वे उपनिषदो और गीता के परम रहस्य के जानकार थे । उनके बताये हुए शुद्धिकरण को लोकमान्य तिलक ने सहर्ष स्वीकार किया । वे जिन–धर्म के प्रबल पोषक एव महान् विज्ञानी आचार्य थे । उनके आध्यात्मिक ज्ञान के खजाने का पता अध्यात्मवादी जन लगाते थे । वे निरन्तर पिछली रात को ३ घन्टे का ध्यान करते थे । उनके हाथ का आपरेशन हुआ तब बेहोश करने की कोई वस्तु सू घने के काम मे नहीं ली और हाथ को इतना सीधा और सही ढग से बिना हिलाये–डुलाये रख कर

आपरेशन कराया कि डाक्टर लोग चकित रह गये। वे उनकी ज्योति में स्वयं प्रकाशित हो जाते थे और अपने आपको निस्तेज अनुभव करते थे। ऐसे कई संकट समय आये। निश्चिन्त, निर्भय और निर्मम रहते हुए पार किये। उनकी ज्योति से वे सभी प्रभावित हैं, जो उनके संपर्क में आये।

प्रबल धाक के धनी, दिव्य आत्मशक्ति के पुञ्ज, परम मेधावी, महान् श्रुतज्ञ, प्रख्यात प्रवचनकार, भव्य विभूति के शृङ्गार, पुराण पुरुष, आश्चर्यकारी आचार्य, कल्याणकारी मार्गदर्शक, समन्वयकारी शास्त्र ज्ञाता, अनेकांत-दर्शी, पुण्यपुरुष, चमत्कारशिरोमणि, प्रबल पुरुषार्थी, प्रबुद्धजन पूज्य, आचार्य-कुल दिवाकर, युगप्रवर्तक, दिव्य विभूति, ज्योतिर्धर पूज्य श्री जवाहर मुनि-वृन्द में उत्तम अलभ्य जवाहररत्न थे। वे महान् जन जौहरीजनों की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उत्तम जवाहर साबित हुये और अब भी उनकी छाप भारत के कोने २ में विस्तृत है।

ऐसे अपने अनन्य श्रद्धास्पद गुरु एवं पूज्यवर की असीम प्रसारजन्य विस्तृत दृष्टि को ग्रहण करने वाला यह तुच्छ मानवी अपनी श्रद्धा के सुमन भूत-काल में चढ़ाता रहा और अब भी इस तुच्छ लेख से चढ़ा रहा है। उनकी याद को, हृदय के बाहर कर पिछड़े क्षेत्र में ज्ञानज्योतिस्तंभ रूप जवाहर विद्यापीठ में समाहित कर धन्य बन रहा है।



अकसर लोग सरल काम को कठिन और कठिन काम को सरल समझ बैठते हैं। यह बुद्धि का विकार है। इसी बुद्धि-विकार के कारण परमात्मा का स्वरूप समझना कठिन कार्य जान पड़ता है। वस्तुतः परमात्मा का स्वरूप समझना सरल है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)



आचार्यश्री और समकालीन विशिष्ट व्यक्ति

● डॉ. नरेन्द्र भानावत, श्री महावीर कोटिया

महात्मा गांधी :

सवत् १६६३ मे आचार्य श्री का राजकोट मे चातुर्मास था। २६ अक्तूबर को महात्मा गाधी कार्यवश राजकोट आए। उन्हें आचार्य श्री की ओजस्वी उपदेश-शैली, उत्कृष्ट व उदार विचार धारा तथा सयम-परायणता का परिचय मिल चुका था। अत उन्होने अपने व्यस्त कार्यक्रम मे से पूज्य आचार्य श्री से भेंट करने तथा सत्सगति का लाभ लेने का निश्चय कर लिया। तदनुसार जिस दिन वे राजकोट से विदा होने वाले थे, उस दिन उन्होने सध्या से कुछ पहले पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने की सूचना भिजवा दी। जनता को इसका पता नही चल पाया। अत गाधी जी ने बडे ही शान्त वातावरण मे आचार्य श्री के सत्सग का लाभ उठाया तथा वार्तालाप किया। उन्होने वार्तालाप के समय अपनी यह भावना भी आचार्यश्री के समक्ष प्रकट की। वे उनकी उपदेश-सभा मे उपस्थित रहकर उपदेश श्रवण के भी इच्छुक थे, पर समयाभाव मे यह सभव न हो सका।

लोकमान्य तिलक :

सवत् १६७२ का चातुर्मास अहमदनगर मे पूरा करने के पश्चात् आप घोडनदी राजणगाव आदि आस पास के क्षेत्रो मे विचरण करते हुए पुन अहमदनगर पधारे। उन्ही दिनो लोकमान्य बाल गगाधर तिलक कारागार से मुक्त होने के बाद अहमदनगर पधारे थे। श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, श्री माणिकचन्द जी मूथा, सेठ किसनदास जी मूथा तथा श्री चदनमल जी आदि के द्वारा लोकमान्य को आपका परिचय मिला और उन्होने आपसे भेंट की। आचार्यश्री ने जैन धर्म का दृष्टिकोण तथा सैद्धान्तिक व्याख्या आपके समक्ष

प्रस्तुत की। लोकमान्य तिलक इससे बडे प्रभावित व हर्षित हुए और उन्होंने आचार्यश्री के प्रति अपनी भावनाए निम्न शब्दो मे प्रकट की—

मैं आचार्यश्री का आभार मानता हू कि उन्होने भारतवर्ष के एक महान धर्म के विषय मे मेरी गलतफहमी दूर की और उसका शुद्ध स्वरूप समझाया।

आज के भारतीय साधु समाज मे जैन–साधु त्याग–तपस्या आदि सद्गुणो मे सर्वोत्कृष्ट हैं। उनमे से एक आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज हैं जिनका मै दर्शन कर रहा हूँ और जिनके व्याख्यान सुनने का आनन्द उठा चुका हू। आप सर्वश्रेष्ठ तथा सफल साधु हैं।

महामना मदनमोहन मालवीय

सवत् १९८४ मे आचार्यश्री जब भीनासर मे चातुर्मास पूर्ण कर बीकानेर मे पधारे हुए थे, उसी समय मालवीय जी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के सम्बन्ध मे बीकानेर आए। उन्हें आचार्यश्री के बारे मे जानकारी मिल चुकी थी। अत वे उनका प्रवचन सुनने पहुचे। प्रवचन के पश्चात् मालवीय जी ने आचार्यश्री के प्रवचन की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की और उनके प्रति हार्दिक सद्भावना प्रकट की।

श्रीमती कस्तूर बा गांधी :

घाटकोपर (बम्बई) मे सवत् १९८० के चातुर्मास काल मे श्रीमती कस्तूर बा गाधी पूज्य श्री के दर्शनार्थ आई। पूज्य आचार्यश्री ने अपने प्रवचन मे 'बा' का आदर्श प्रस्तुत करते हुए महिलाओ को खादी पहनने और सादगी से रहने का उपदेश दिया। प्रवचन के पश्चात् आचार्यश्री ने 'बा' से भी कुछ बोलने के लिए कहा। वे बोली 'मैं आज अपना अहोभाग्य समझती हूं कि पूज्य श्री के दर्शन हुए। मैं जिस उद्देश्य से आई थी, वह पूरा हो गया। मुझे अब बोलने की आवश्यकता नही रही। पूज्य श्री ने मेरा मन्तव्य पूरा कर दिया है।

श्री विट्ठल भाई पटेल .

इसी चातुर्मास काल मे केन्द्रीय धारा सभा के प्रेसीडेंट श्रीयुत विट्ठल भाई पटेल भी पूज्य श्री के दर्शन करने व प्रवचन सुनने आए। आचार्यश्री के व्यापक दृष्टिकोण और उच्च विचारो से, उनके तप और त्याग से तथा वक्तृत्व शक्ति से वे बडे प्रभावित हुए और उनकी भूरि–भूरि प्रशसा की।

सेनापति बापट :

संवत् १९७१ में चातुर्मास से पूर्व आचार्यश्री जवाहरलाल जी पारनेर पधारे। उनके दैनिक प्रवचनों में उपस्थित रहने वाले अनेक व्यक्तियों में एक विशिष्ट व्यक्ति थे, सेनापति बापट। उनकी स्मरण शक्ति और प्रतिभा का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे आचार्यश्री के प्रवचन को सुनने के तुरन्त बाद उसे मराठी कविता में आबद्ध कर सुना दिया करते थे। आचार्यश्री के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी और आचार्यश्री भी उनसे बड़े प्रभावित थे।

बापट साहब का संक्षिप्त परिचय यहां उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर पा रहे हैं। विद्यार्थी अवस्था में वे बड़े प्रतिभाशाली थे। आई सी एस की परीक्षा में वे सर्वप्रथम आए। अंग्रेजी नौकरशाही रूपी मशीन का एक पुर्जा बनने के लिए वे इंग्लैण्ड भेजे गए। लाला लाजपतराय की भारत में गिरफ्तारी होने के अवसर पर उन्होंने वहां एक भाषण दिया जो सरकार की आंखों में बहुत खटका। सरकार उन्हें खतरनाक आदमी समझने लगी और पुलिस उन पर निगाह रखने लगी। बापट साहब ने आई सी एस को छोड़कर वहां रहते हुए बैरिस्टरी की परीक्षा पास की। इंग्लैण्ड से आप जर्मनी चले गए और बम बनाना सीखा तथा भारत आकर नवयुवकों को बम बनाना सिखाया और ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के कार्य में संलग्न हो गए। सरकार उनसे सदैव सतर्क रहती और उनकी निगरानी रखी जाती। उनकी दिनचर्या के महत्त्वपूर्ण कार्य थे प्रातःकाल ही टोकरी, कुदाली और झाड़ू लेकर घर से निकल जाना तथा सड़कें व नालियां साफ करना, दिन में अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखना, सायंकाल गली-मुहल्लों में जा जाकर देशोत्थान सम्बन्धी प्रवचन करना तथा रात्रि में अछूत बालकों को पढ़ाना।

प्रोफेसर राममूर्ति :

संवत् १९७२ में जब आचार्यश्री अहमदनगर में चातुर्मास कर रहे थे तब कलियुगी भीम कहे जाने वाले प्रो० राममूर्ति अपनी सरकस कम्पनी के साथ अहमदनगर आए। अहमदनगर में मुनिश्री के उपदेशों की उस समय बड़ी प्रसिद्धी थी। प्रो० राममूर्ति भी यह ख्याति सुनकर अपने कार्यकर्ताओं के साथ आचार्यश्री का प्रवचन सुनने आए। आचार्यश्री का प्रवचन सुनकर वे बड़े प्रभावित हुए और प्रवचन के पश्चात् उन्होंने कहा—"इस समय मैं क्या बोलूं? सूर्य के निकल आने पर जिस प्रकार जुगनू का चमकना अनावश्यक है, उसी प्रकार आचार्यश्री के अमृत तुल्य उपदेश के बाद मेरा कुछ बोलना अनावश्यक है। मैं न वक्ता हूं, न विद्वान् हूं। मैं तो एक कसरती पहलवान हूं। किन्तु

वडे-वडे विद्वानो का व्याख्यान सुनने का मुझे शौक है । आज आचार्य श्री के उपदेश को सुनकर मेरे हृदय पर जो प्रभाव पडा है, वह आज तक किसी के उपदेश ने नही पडा । यदि भारत में ऐसे दस साधु भी हो तो निश्चित रूप से भारत का पुनरुत्थान हो जाय ।

जब मैं अपने डेरे से चला तो मुझे यह आशा नही थी कि मैं जिनका उपदेश सुनने जा रहा हूँ वे मुनिराज इतने वडे ज्ञानी और इतने सुन्दर उपदेशक हैं । आज मेरा हृदय एक अभूतपूर्व आनन्द से प्रफुल्लित हो रहा है। मैं जीवन भर इस सुन्दर उपदेश को नही भूलूंगा ।

श्री विनोवा भावे :

सवत् १९९१ मे जलगाव चातुर्मास के अवसर पर श्री विनोवा भावे आचार्यश्री का सत्सग करने पधारे । उस समय विनोवा जी तीन-चार दिन तक आपके साथ रहे तथा तत्त्व-चर्चा के मधुर रस का आस्वादन किया ।

श्री जमनलाल वजाज

इसी चातुर्मास काल मे प्रमुख राष्ट्रसेवी सेठ श्री जमनालाल वजाज भी आचार्य श्री के दर्शन करने व उनका सत्सग करने उपस्थित हुए ।

सर मनुभाई मेहता

श्री मेहता वीकानेर राज्य मे प्रधान मन्त्री थे । लन्दन मे प्रथम गोलमेज कान्फ्रेन्स मे आपने देश का प्रतिनिधित्व किया । सवत् १९८४ मे आचार्यश्री के भीनासर-वीकानेर मे चातुर्मास के समय आप उनकी प्रवचन शैली और व्यक्तित्व तथा विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि उनके विशिष्ट श्रद्धालु वन गए। अनेक वार आप सपरिवार आचार्य श्री के प्रवचनो मे उपस्थित हुए। गोलमेज कान्फरेन्स मे भाग लेने जाने के अवसर पर भी आप आचार्य श्री के पास आशीर्वाद लेने आए ।

श्री रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और लोकसाहित्य के अध्येता विद्वान् श्री रामनरेश त्रिपाठी फतहपुर (राजस्थान) मे आचार्य श्री के सम्पर्क मे आए और उनके श्रद्धालु वन गए । सवत् १९८७ मे पूज्य श्री के वीकानेर चातुर्मास के

अवसर पर आपने उपस्थित होकर अनेक प्रवचन सुनने का लाभ उठाया। पश्चात् हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' मे उन्होने एक लेख प्रकाशित किया जिसकी कुछ पक्तिया यहा उद्धृत हैं—'गत वर्ष फतहपुर मे श्री जवाहरलाल जी महाराज से मेरा साक्षात्कार हुआ था। उनका चरित्र बहुत ही अच्छा, पवित्र और तपस्या से पूर्ण है। वे अच्छे विद्वान, निरभिमानी, उदार, सहृदय और निस्पृह हैं। उनके व्याख्यान मे सामयिकता रहती है। वे बडे निर्भय वक्ता हैं, पर अप्रियवादी नही।"

काका कालेलकर एवं बुखारी बन्धु :

आचार्यश्री ने सवत् १९८८ मे देहली मे चातुर्मास किया। इस चातुर्मास काल मे उनके प्रभावशाली व्याख्यानो ने उन्हे शीघ्र ही देहली की जैन-जैनेतर जनता मे प्रिय बना दिया। अनेक हिन्दू व मुस्लिम राष्ट्रीय नेता भी आपके विचारो से प्रेरणा लेने व्याख्यानो मे उपस्थित होते। प्रसिद्ध विचारक विद्वान् काका कालेलकर भी आपके प्रवचन मे उपस्थित हुए और आपके राष्ट्रोन्नति सम्बन्धी विचार सुनकर अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त की। इसी प्रकार कांग्रेस के तत्कालीन प्रसिद्ध नेता शेख अताउल्लाशाह बुखारी और उनके भाई हबीबुल्ला शाह बुखारी भी आपके व्याख्यान सुनने उपस्थित हुए। व्याख्यान के पश्चात् उन्होंने मुक्तकठ से आचार्यश्री के उपदेशो की प्रशसा की।

सरदार पटेल :

सवत् १९९३ मे राजकोट चातुर्मास के अवसर पर १३ अक्तूबर को अपरान्ह तीन बजे सरदार वल्लभ भाई पटेल पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे। सरदार पटेल का आगमन सुनकर जैनेतर जनता भी बडी सख्या मे एकत्र हुई। आचार्यश्री के प्रवचन के बाद सरदार पटेल ने जनता को सबोधित करते हुए कहा—"आप लोग धन्य हैं, जिन्हे ऐसे महात्मा मिले हैं और जिनको नित्य ऐसे व्याख्यान सुनने को मिलते हैं। मगर यह सुनना तभी सफल है जब उपदेशो को जीवन मे उतारा जाय।"

पट्टाभि सीतारामैय्या :

सवत् १९९३ मे राजकोट चातुर्मास के पश्चात् विहार करके जब आचार्यश्री पोरबन्दर विराज रहे थे, तब वहा स्वतन्त्रता सग्राम-सेनानी प्रसिद्ध विद्वान व प्रभावशाली वक्ता श्री पट्टाभि सीतारामैय्या का आगमन हुआ। पूज्य

श्री की ख्याति सुनकर आप दर्शनार्थ पधारे तथा पूज्य श्री से मिलकर व वार्तालाप कर बड़े प्रसन्न हुए।

श्री ठक्कर बापा तथा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू :

संवत् १९९४ में आचार्य श्री का चातुर्मास जामनगर में था। वहीं दिनांक ४-१०-१९३७ को स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी तथा गांधी जी के हरिजनोद्धार कार्यक्रम से सम्बन्धित प्रसिद्ध नेता श्री ठक्कर बापा व श्रीमती रामेश्वरी नेहरू पूज्य श्री के दर्शनार्थ आए तथा उनसे हरिजनोद्धार सम्बन्धी वार्तालाप करके अत्यधिक प्रसन्न हुए।



यों तो अचेत अवस्था में पड़े हुए आत्मा में भी राग-द्वेष प्रतीत नहीं होते, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अचेत आत्मा राग द्वेष से रहित हो गया है। जो आत्मा ज्ञान के आलोक में राग-द्वेष को देखता है– राग-द्वेष के विपाक को जानता है और फिर उसे हेय समझकर उसका नाश करता है वही राग-द्वेष का विजेता है। दुमुही का क्रुद्ध न होना क्रोध को जीत लेने का प्रमाण नहीं है। क्रोध न करना उसके लिए स्वाभाविक है। अगर कोई सर्प ज्ञानी होकर क्रोध न करे तो कहा जायगा कि उसने क्रोध को जीत लिया है, जैसे चंडकौशिक ने भगवान् के दर्शन के पश्चात् क्रोध को जीता था। जिसमें जिस वृत्ति का उदय ही नहीं है, वह उस वृत्ति का विजेता नहीं कहा जा सकता अन्यथा समस्त बालक काम-विजेता कहलाएंगे।

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म.

★★

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी

● श्री विजयसिंह नाहर

आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के 'जन्म शताब्दी समारोह' के उपलक्ष्य मे "श्रमणोपासक" का विशेषाक प्रकाशित किया जा रहा है, यह जान कर प्रसन्नता हुई । केवल स्थानकवासी जैन-समाज मे ही नही, सारे जैन एव जैनेतर समाज मे आपके प्रति श्रद्धा थी । एक समय था, जब जैन-समाज मे रूढिवाद बहुत जबर्दस्त था । उस समय परिवर्तन की बाते करना भी मुश्किल था । समाज वाले नई बातें ग्रहण नही करना चाहते थे । विरोध भी होता था । लेकिन समय, काल, पात्र देखते हुए आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ने समाज में, धर्मसाधना मे, आहार-व्यवहार मे रूढिवाद तोड कर समयानुकूल एव शास्त्रानुसार आचार-व्यवहार एव साधना का मार्ग समाज मे प्रचलित करने की प्रचेष्टा की थी । किसी का भय नही, किसी की खुशामद नही, जो सही मार्ग है, उस पर चलने का साहस उनमे था । साधुत्व के आदर्श को सामने रखते हुए त्याग और तपस्या, एव साथ-साथ समाज मे जनता को मार्ग-दर्शन कराने मे वे सदा तत्पर रहते थे ।

आपका क्रान्तिकारी विचार बहुत आगे बढा हुआ था । महावीर की वाणी जीओ और जीने दो" की आपने समयानुकूल विवेचना की । साधारणतया, प्राणी हत्या नही करना, केवल यही अर्थ इसका होता है, लेकिन आचार्यश्री ने बताया कि प्राणीमात्र के अन्दर, मनुष्य भी आता है, एव जीने दो याने किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट न दो, पडौसी से सद्भाव रखो, उनके दु ख-सुख के साथी बनो, मानव-मात्र एक है, अत किसी का शोषण नहीं करो ।

महात्मा गाधीजी व अन्यान्य स्वतत्रता-सग्रामी नेताओ से आपका सपर्क बना था । स्वतत्रता-सग्राम को आपने अहिसा की लडाई बताया एव

साथ-साथ खादी को अपनाया । यह राजनैतिक भावना से नही, वरन् अहिंसक भावना से । खादी वस्त्र का सबको व्यवहार करना चाहिए, इसका प्रचार भी किया था । मिल के वस्त्र बनाने मे चर्बी आदि हिंसक द्रव्यो का व्यवहार होता है, परन्तु चरखा-करघा मे शुद्धता से उत्पादन होता है । इनके आदर्श का समाज मे काफी प्रभाव पडा था ।

सामाजिक, धार्मिक एव देश की भलाई के कार्य मे आचार्यश्री सदा लगे रहते थे । समाज-सेवा के कार्य का उपदेश देकर, अनेक स्थानो पर विद्यालय, पुस्तकालय, चिकित्सालय आदि समाज-कल्याण के कार्यो की आप प्रेरणा दिया करते थे । समाज की उन्नति होने से धर्म की प्रभावना होगी, इसलिए विद्याभ्यास, पुस्तक प्रकाशन आदि अनेक कार्य आचार्यश्री के उपदेशो से प्रभावित होकर श्रावको ने किये । स्वय भी महत्त्वपूर्ण अनेक ग्रथो की रचना की थी । श्री जवाहरलाल जी महाराज प्रकाड विद्वान थे । सूत्रों का ज्ञान उन्हे अच्छा था । मौका पडने पर वे शास्त्रार्थ मे सामना भी करते थे । सुवक्ता होने से सब श्रोताओ पर उनका प्रभाव जोरो का पडता था । स्वय साधक एव निष्ठावान बाल-ब्रह्मचारी थे । उनके मुखमडल पर एक अपूर्व ज्योति विराजमान थी । उनके सपर्क मे आने वाले काफी प्रभावित होते थे ।

आचार्यश्री की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । राष्ट्रीय, सामाजिक आध्यात्मिक अथवा व्यावहारिक हरेक विषय पर आपकी सेवा अपूर्व है । एक त्यागी आचारवान जैन-साधु होने पर भी, इतना व्यापक चिन्तन, आचरण एक महत्त्वपूर्ण जीवन का प्रतीक है । उच्चकोटि के साधु एव धर्म-प्रभावना मे अग्रणी क्रान्तिकारी चिन्तक, समाज-सुधारक आचार्यश्री जवाहरलाल जी के जन्म-शताब्दी उत्सव को यदि सार्थक करना है तो यह तब ही सभव होगा जब उनके बताये पथ पर समाज के लोग आगे बढेंगे और अपने जीवन मे सद्-श्रावक का आचरण ग्रहण करेंगे । उनके आशीर्वाद से जैन-समाज, विश्व-समाज मे अपना स्थान प्राप्त करे, यही सदा कामना रहती है ।



मेरी एकमात्र यही आकाक्षा है कि मेरे अन्त करण की मलीमस वासनाओ का विनाश हो जाय ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.)

लोकप्रिय आकर्षक व्यक्तित्व

● श्री ग्रानन्दराज सुराणा

पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज वास्तव मे जैन-समाज के अमूल्य जवाहर थे । लोकमान्य तिलक, महात्मा गाधी, सरदार वल्लभभाई पटेल तथा प० मदनमोहन मालवीय आदि राष्ट्र के सम्माननीय व्यक्तियो ने ग्रापके प्रवचनो का वहुत लाभ उठाया था । जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र मे पण्डित श्री जवाहरलाल नेहरू लोकप्रिय थे, उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र मे पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा लोकप्रिय थे । ग्रापके प्रवचनो से केवल नेता ग्रौर विद्वान् ही ग्राकर्षित नही होते थे वरन् सामान्य ग्रौर ग्राम्य जनता भी ग्रापके प्रवचनो से ग्राकर्षित होती थी । पूज्य श्री श्रीलाल जी म सा के वाद ग्राप इस सप्रदाय के ग्राचार्य वने ।

सन् १६०८ मे जव मैं तारवावू होकर वीकानेर गया, तव से ही मैं पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज साहव की सेवा मे जाने लगा था । मलकापुर के चातुर्मास मे मुझे पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा ने चौविहार का नियम दिलाया था । मोरवी चातुर्मास मे भी मैं ग्राचार्य श्री जी की सेवा मे गया । जव-जव ग्राचार्यश्री थली प्रदेश मे जाया करते, मैं भी उनकी सेवा मे चूरू, सरदारशहर ग्रादि शहरो मे जाया करता था । मुझे उनकी सेवा करने मे वहुत ग्रानन्द ग्राया करता था । मारवाड के थली प्रदेश स्थित तेरापन्थ सम्प्रदाय ग्रौर उसके ग्रनुयायियो के वीच मे ग्रनेक परिषह सहन कर, ग्राचार्यश्री जी वहा पधारते ग्रौर ग्रपनी पवित्र वाणी का स्रोत वहाते ।

मेरे ऊपर पूज्य श्री जी की वडी कृपा थी । मुझे याद है, जव मैं ग्राचार्यश्री जी की सेवा मे गया तो वडे खुश हुए ग्रौर वोले "भगवान् महावीर के ग्रानन्द श्रावक थे, मेरा श्रावक वावू ग्रानन्दराज है ।" मेरी याद ग्रव कमजोर हो गई है, वहुत सी वातें भूल रहा हू । ग्राचार्यश्री जी मे ग्रपार गुण थे

और वे एक महान् सन्त थे । उन्होने रेशम की साडियो का त्याग करा कर खादी को अच्छा प्रोत्साहन दिया ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म सा ही के अनुशासन और शिक्षण का प्रभाव था कि सादडी सम्मेलन मे पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज साहब को उपाचार्य पद प्रदान किया गया ।

मैं "श्रमणोपासक" के "आचार्य श्री जवाहर जन्म-शताब्दी विशेषाक" के प्रति अपनी शुभकामना भेजता हू तथा आशा करता हूँ कि पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के विचारो को समाज मे अधिक से अधिक पहुचाने मे यह प्रयास लाभदायक सिद्ध होगा ।



वैर भूल जाओ। परस्पर प्रेम का झरना बहाओ, जिससे तुम्हारा और दूसरे का सताप मिट जाय, शान्ति प्राप्त हो और अपूर्व आनन्द का प्रसार हो । लेन--देन मे, बोल--चाल मे, किसी से कोई झगडा हुआ हो, मनमुटाव हुआ हो, कलह हुआ हो तो उसे भुला दो। किसी प्रकार की कलुषता हृदय मे मत रहने दो । चित्त के विकारो की होली जलाओ, आत्मिक प्रकाश की दीपमालिका जगाओ, प्राणीमात्र की रक्षा के बन्धन मे बध जाओ तो इस महामहिमामय पर्व (पर्युषण) मे सभी पापो की समाप्ति हो जाएगी ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म)

साहसी और दृढ़ व्यक्तित्व

● श्री सौभाग्यमल जैन

श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज का यह सौभाग्य रहा है कि उसने कई क्रातिकारी विचारो के हामी साधु-मुनिराजो को जन्म दिया। वीर लोकाशाह एक ऐसे सुश्रावक थे कि जिन्होंने तत्कालीन साधु-यतियो मे व्याप्त शिथिलाचार के विरुद्ध विद्रोह का शख फूका। इसी सुश्रावक की क्रातिकारी परम्परा को कई प्रभावशाली मुनिजनो ने आगे बढाया। हमारे पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज भी उसी क्रातिकारी परम्परा के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। आचार्यश्री ने तत्कालीन समाज मे मान्य निरर्थक मान्यताओ को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। जैन-समाज मे कृषि कार्य को उस समय पाप-व्यापार माना जाता था। पन्द्रह कर्मादान मे "फोडीकम्मे" शब्द का तात्पर्य यही निकाला जाता था, किन्तु आचार्यश्री ने यह उचित माना तथा यह मत व्यक्त किया कि यदि देश मे शाकाहार को प्रोत्साहन देना है या दूसरे शब्दो मे मासाहार का निषेध करना है तो कृषि को महारभ कैसे कहा जा सकता है? कृषि से ही अन्न उत्पादन होगा, जो विकल्प है। आज चाहे यह घटना महत्व की न लगे किन्तु आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व की सामाजिक स्थिति को देखते हुए यह एक साहस का कार्य था। यह एक खुला तथ्य है कि जिस साधु-मुनिराज को समाज मे पद, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है या यू कहे कि निहित स्वार्थ (चाहे सम्पत्ति का न हो अपितु पद-प्रतिष्ठा का) होता है वह यथापूर्व स्थिति मे स्वय की तथा अन्य समान सुविधा-भोगी समुदाय की सुरक्षितता मानता है। इसकी परवाह किये बिना सामान्य मान्यता का विरोध करके आचार्यश्री ने साहस का कार्य किया था।

आचार्यश्री ने उस समय साधु तथा श्रावक के बीच मे एक वर्ग-स्थापना का विचार समाज के सम्मुख रखा जो उन कार्यो को, जो साधु-मुनि अपने

सयमित जीवन मे सपन्न नही कर सकते थे, उन सामाजिक कार्यों को करता रहे । "वीर सघ" के नाम से प्रसिद्ध योजना यदि मूर्त रुप से लेती तो समाज के सामाजिक कार्य आज की भाति उपेक्षित नही रहते । किन्तु यह खेद का विषय है कि समाज ने उस क्रात-द्रष्टा महापुरुष की इस योजना के कार्यान्वयन मे रुचि नही ली अन्यथा सामाजिक कार्यों की यथाशक्य प्रगति इससे होती[1] ।

आचार्यश्री के प्रवचन सग्रह को देखने मे यह भलीभाति स्पष्ट है कि आचार्यश्री का सामाजिक क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण योगदान था । उन्होंने तत्कालीन समाज मे व्याप्त कुरूढि, अन्ध–विश्वास को समाप्त करने का सकल्प ले रखा था। अपने अनुयायी श्रावको की प्रसन्नता–अप्रसन्नता का खयाल किये बिना बहुत दृढता के साथ साहस से इस योगदान को जारी रखा तथा आजीवन उससे विमुख नही हुए । आचार्यश्री का राष्ट्रीय क्षेत्र मे गहन चितन था । स्वय शुद्ध खादी के वस्त्र उपयोग मे लाते तथा राष्ट्रीय समस्याओ मे दिलचस्पी लेते थे । उनका हृदय राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत था ।

ऐसी बहुमुखी प्रतिभा के धनी स्व० आचार्यश्री के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू । उनकी प्रतिभा, साहस व योगदान के प्रति नत–मस्तक हूँ ।

---

१ अब यह योजना जवाहर जन्म शताब्दी वर्ष' मे क्रियान्वित की जा चुकी है । — सम्पादक



धर्म कोई बाहर की वस्तु नही है । वह अन्दर से पैदा होता है। खराब कामो से बचना और सदाचार के साथ सम्बन्ध जोडना ही धर्म है ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

नूतन आध्यात्म-दृष्टि के सूत्रधार

श्री कल्याणमल लोढ़ा

मैं जब विद्यार्थी था, तब पूज्यपाद जोधपुर पधारे थे। उनके व्याख्यानो की बडी धूम और चर्चा थी। इतना स्पष्टत याद है कि हजारो की सख्या मे विभिन्न धर्मानुयायी उनके उपदेश सुनते थे। मेरे किशोर हृदय पर भी उनकी दिव्य वाणी की अमिट छाप पडी। पीछे मैंने 'जवाहर किरणावली' के कई भाग पढ़े। वे एक क्रातिद्रष्टा आचार्य प्रवर थे। उनके सारे प्रवचन ...क्ति और समष्टि चेतना-आत्मोदय से लोकोदय की भूमिका मे पूर्ण हुआ ...रते थे। सैद्धान्तिक अध्यात्मवाद से हटकर उन्होने व्यावहारिक आध्यात्म की ...र दृष्टि रखी, जिससे जीवन को नैतिक उच्चता और सामाजिक उत्कृष्टता प्राप्त ...हो सके। जैन सास्कृतिक जागरण को उन्होने नई दिशा और गति दी। यही ...कारण था कि जैनेतर समाज भी उनकी ओर पूर्ण रूप से आकर्षित हुआ।

मैं धर्म को व्यक्ति से अधिक सामाजिक सस्थान और उपक्रम के रूप ...में स्वीकार करता हूँ। वह व्यक्ति को समाज के व्यापक हित की ओर उन्मुख करता हुआ उसकी चेतना का विस्तार ही नही, विकास भी करता है। जैन धर्म की यही मूलभूत विशेपता है कि उसका आत्मबोध चेतना के विकास की पूर्णता और समग्रता को समाहित करके चलता है। अर्थ-वैज्ञानिक मान्यताओ के परे वह मनोदार्शनिक और नैतिकतावाद के उन मूल्यो के अवधारण की प्रेरणा देता है जो मनुष्य के कर्तृत्व को सम्यक् और सम्पूर्णता देता हुआ उसे केवल अपने 'होने' का, अह के अस्तित्व का बोध ही नही कराता वरन् कर्म निमुक्त उस सनातन सत्ता का, 'होने' के प्रयोजन और उसकी सार्थकता का मगल-सूत्र भी प्रस्तुत करता है। जैन धर्म की यह अनन्य विशेपता मैंने आचार्य श्री के प्रवचनो और लेखो मे पाई।

आज का युग विज्ञानवाद का युग है। विज्ञान अनेकान्तवादी नही

अनेकतावादी होता है। जहा ज्ञान अनेकता मे व्याप्त एकता का प्रतिपादन करता है, वहा विज्ञान एकता मे अनेकता का। इसीसे उसकी दृष्टि वस्तुवादी, भौतिकवादी और यथार्थपरक होती है, परन्तु विज्ञान ने भी आज अपनी दिशा वदल दी। विश्व के सभी वैज्ञानिक अव अपने अनुसधानो और आविष्कारों को व्यापक और विराट मानवीय उच्चता के हितार्थ प्रस्तुत करना चाहते हैं। विज्ञान अपनी गति के अतिम चरण पर पहुच रहा है और यही कारण है कि अव विज्ञान और दर्शनभूत–सृष्टि और मनो–सृष्टि समवाय होकर किसी चिरन्तन आत्मतत्व की ओर उन्मुख हो रही है। यही वैज्ञानिक अध्यात्म आज मनुष्य की समस्त मानसिक और जैविक सगतियो के नए धरातल खोज रहा है। धर्म की मर्यादा का भी यही प्रयोजन है–जो मनुष्य को विवेकयुक्त करे, उसे शुभ और अशुभ की परिणाम–दृष्टि देकर आत्म–विकास की सही दिशा वताए, उसकी व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना मे परिणत करे। मेरी धारणा है कि इस नूतन आध्यात्म दृष्टि का सूत्रपात जैन जगत् मे आचार्यश्री जवाहरलाल जी ने वहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था। वे अतिशय ज्ञानी थे। जन्म शताब्दी के पुण्य महोत्सव पर उन्हे मेरी अशेष प्रणति।



कोई भी वल चारित्रवल की तुलना नही कर सकता। जिसमे चारित्र का वल है, उसे दूसरे वल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। राम के पास चारित्रवल के सिवाय और क्या था? चारित्रवल की वदौलत सभी वल उन्हे प्राप्त हो गए। उसके विरुद्ध रावण के पास सभी वल थे, मगर चारित्रवल के अभाव में वे सव निरर्थक सिद्ध हुए।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

प्रभावशाली आचार्य

● श्री अगरचन्द नाहटा

पूज्यता का भाव ·

आत्मा अनंत शक्ति का स्रोत है पर उसकी वह शक्ति दवी हुई है, छिपी हुई है। उसे जो जितने अश मे प्रगट कर लेते हैं, वे उतने ही अश में पुरुष से महापुरुष वन जाते हैं। पुरुष रूप मे तो व्यक्ति पैदा होता है और महापुरुष वनता है, अपने पुरुपार्थ और सत्कार्यों से। जो व्यक्ति अपने गुणो का विकास कर केवल अपने उत्थान तक ही सीमित नही रहता, पर देश एव समाज के उत्थान मे अर्थात् दूसरो के उत्थान मे सहयोगी वनता है, वह पूज्य वन जाता है। पूज्यता चाहने से नही मिलती, गुणो से मिलती है। दूसरे व्यक्ति स्वय उनके गुणो से आकर्पित होकर पूज्य भाव रखने लगते हैं। जो दूसरों का उपकार करता है, कल्याण करता है, उत्थान करता है, वह श्रद्धा एव भक्ति का पात्र या केन्द्र स्वय वन जाता है। इसी वात को महान् तत्त्वज्ञ श्रीमद् देवचन्द जी ने वडे ही सुन्दर शब्दो मे हृदयस्पर्शी एव मार्मिक वाक्यो मे १२ वें तीर्थंकर वासुपूज्य भगवान् के स्तवन मे कहा है—

पूजना तो कीजे रे जिन तणी रे, जसु प्रगट्यो पूज्य स्वभाव।
परकृत पूजा रे जे इच्छे नही रे साधक कारज दाव ॥पू०॥१॥

इसी स्तवन के अन्त मे उन्होंने एक वहुत ही सुन्दर उक्ति कही है—

जिनवर पूजा रे ते निज पूजना रे, प्रगटे अन्वय शक्ति।
परमानद विलासी अनुभवे रे, देवचन्द्र पद व्यक्ति ॥पू०॥

अर्थात् भगवान् अपने को कोई पूज्य माने या पूजा करे यह कभी नही चाहते, उनका पूज्य भाव तो उनके विशिप्ट गुणो के कारण स्वय प्रगट हो जाता है और साधको के लिये सिद्धि का कारण वन जाता है। जिनेश्वर या महापुरुप की पूजा वास्तव मे अपनी आत्मा की ही पूजा है क्योंकि उनसे

प्रेरणा ग्रहण कर अपनी आत्मा, गुणों का विकास कर स्वयं पूज्य बन जाती है। जिन गुणों से वे पूज्य बने, उन गुणों का प्रगटीकरण जब भक्त की आत्मा में हो जाता है, वह अपने आप भगवान् या पूज्य बन जाता है।

आचार्यश्री का महत्त्व :

तीर्थंकरों की तो अपनी विशिष्टता होती ही है। उनके अभाव में आचार्यगण चतुर्विध संघ का संचलन करते हैं, उनके योग एवं क्षेम का निर्वाह करते हैं, इसलिये अर्हन्त और सिद्ध के बाद आचार्यों को नमस्कार किया जाता है। पंच परमेष्ठी में उनको तीसरा स्थान दिया गया है। समय समय पर ऐसे समर्थ आचार्यों के द्वारा ही जैन संघ आगे बढ़ा और उन्नत बना। आचार्य, संघ के नेता होते हैं, वे युगानुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार संघ को नया मोड देते हैं। पथ प्रदर्शन करते हैं। इसलिये 'गुरु' पद बड़े महत्त्व का माना गया है।

युगपुरुष जवाहर :

१६ वीं शताब्दी में लोकाशाह ने जो विचार-धारा रखी, उससे प्रभावित होकर ऋषि भाणा आदि दीक्षित हुए। लोकाशाह के अनुयायी अनेक समुदायों में विभक्त हो गये क्योंकि उनमें एक कुशल नेतृत्व का अभाव रहा। उनके अनुयायियों की प्रमुख ४ शाखाएं थीं—(१) गुजराती लोंका (२) नागोरी लोंका (३) उत्तरार्ध गच्छ और (४) बीजामती। इनमें से बीजामतियों ने तो अपना स्वतन्त्र विजय गच्छ चलाया और मूर्तिपूजा को स्वीकार किया। उत्तरार्ध गच्छ, ऋषि सरवा से पंजाब में प्रवर्तित हुआ। नागोरी लोंका गच्छ नागोर के हीरागर और रूपजी से प्रवर्तित हुआ और ऋषि भाणा की परम्परा गुजराती लोंका गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस परम्परा में १८ वीं शताब्दी में श्री लवजी, धर्मदास जी और धर्मसिंह जी की परम्परा ढूंढिया, स्थानकवासी २२ टोला या साधुमार्गी के नाम से प्रसिद्ध हुई। आगे चलकर उसी परम्परा में पूज्यश्री श्रीलाल जी हुए जिनके पट्टधर पूज्यश्री जवाहरलाल जी अपने समय के युगपुरुष प्रभावशाली आचार्य हुए, जो छोटे से गांव में और साधारण स्थिति के घर में संवत् १९३२ में जन्मे। उन्हें छोटी सी उमर में माता और पिता, फिर आश्रयदाता मामा का भी वियोग सहना पड़ा। साधुओं के सत्संग से वैराग्य उत्पन्न हुआ और १६ वर्ष की अवस्था में ही दीक्षित हो गये। घर में तो पढ़ाई विशेष नहीं हो सकी पर लगन और प्रतिभा थी, इसलिये आगे चल कर वे शास्त्रों के गंभीर विद्वान और कुशल वक्ता बने। संस्कृत भाषा का ज्ञान

आवश्यक समझ कर इन्होने अपने शिष्य श्री गणेशीलालजी व श्री घासीलालजी को संस्कृत की अच्छी शिक्षा दिलवाई । इसी का परिणाम है कि श्री घासीलालजी ने आगमो की सस्कृत टीकाए रची । स्थानकवासी समाज मे आगमो की सबसे पहले टीका उन्होने ही बनाई एव सस्कृत मे कुछ काव्य भी रचे । पूज्य श्री जवाहरलाल जी की दूरदर्शिता व कुशल नेतृत्व के कारण उनके समुदाय की काफी उन्नति हुई और आज भी हो रही है ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी से मेरा सम्पर्क अधिक नही हो सका पर जब वे बीकानेर एव भीनासर मे विराजते थे, तब दर्शन व व्याख्यान सुनने का कभी कभी मौका मिला था । उनका व्यक्तित्व आकर्षक और व्याख्यान प्रभावशाली होता था। वे स्पष्ट एव निर्भीक वक्ता थे । युगानुकूल प्रवृत्तियो को उन्होने पनपाया और आगे बढाया, जब कि उनके सम्प्रदाय व समुदाय के कुछ व्यक्तियो को वे अनुकूल नही पटती थी फिर भी उन्होंने अपने मन्तव्यो व विचारो को दृढता के साथ रखा और खादी पहनने आदि प्रवृत्तियो को तो स्वय अपनाया एव श्रावको को अपनाने की प्रेरणा दी । लोकमान्य तिलक, एव गाधीजी आदि उनके सम्पर्क मे आये और गाधीजी के विचारो का तो उन पर काफी प्रभाव भी पडा । इसी से कई राष्ट्रीय प्रवृत्तियो को अपनाने की, उन्होंने श्रावक समाज को भी प्रेरणा दी ।

बीकानेर आने पर तेरापथी विचारधारा से उन्हे सघर्ष करना पडा । थली मे, जो तेरापथी सम्प्रदाय का गढ माना जाता था, वहा भी उन्होने विहार करके सरदारशहर, चूरु आदि मे अच्छा प्रभाव डाला । तेरापथी विचार धारा के खण्डन मे उन्होंने 'अनुकम्पा विचार' और 'सद्धर्म मडन' जैसे ग्रन्थो की रचना की ।

आपके व्याख्यानो का सग्रह करने का जो प्रयत्न किया गया, वह बहुत ही लाभदायक बना । उन्ही के आधार से 'जवाहर किरणावली' के ३५ भाग प्रकाशित हुए । श्री चम्पालाल जी बाठिया उनके विशेष भक्त श्रावको मे से हैं, जिनके प्रयत्न से उनकी विस्तृत जीवनी सवत् २००४ मे प्रकाशित हुई और उनके विचारो का सकलन 'जवाहर विचारसार' के नाम मे प्रकाशित किया गया । इन दोनो ग्रन्थो एव जवाहर किरणावली आदि मे आपके जीवन चरित्र, विचार, उपदेश, व्याख्यान शैली आदि का भली भाति परिचय मिल जाता है । अनेक प्रान्तो मे घूम कर उन्होंने अच्छा धर्म प्रचार किया । आपके व्याख्यान-सग्रह के कई ग्रथ गुजराती मे भी छपे हैं ।

व्याख्यानो के सग्रह एव प्रकाशन से उनकी वाणी का लाभ आज भी मिल रहा है एव आगे भी मिलता रहेगा।

जिन दिनो आप बीकानेर एवं भीनासर मे विराज रहे थे, उन दिनों फलोदी के विशिष्ट श्रावक फूलचन्द जी झावक जब बीकानेर पधारते थे तो पूज्यश्री जवाहरलाल जी से मिलने व व्याख्यान सुनने कभी–कभी जाया करते थे। वे कट्टर मूर्तिपूजक और मूर्तिपूजक समाज के मुखिया थे, फिर भी वे बडे गुणग्राही थे, इसलिए पूज्यश्री जवाहरलाल जी की प्रसशा किया करते थे। फूलचन्द जी से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध था, इसलिए पूज्यश्री जवाहरलाल जी के गुणों की चर्चा से मे भी प्रभावित हुआ।

वास्तव मे श्री जवाहरलाल जी अपने समय के विशेषत स्थानकवासी समाज के तो उल्लेखनीय प्रभावशाली सत एव आचार्य थे। सवत् २०३२ मे उनकी जन्म शताब्दी मनाई जा रही है। यह एक युगपुरुष व प्रभावशाली आचार्य की स्मृति रूप मे अवश्य ही साधुमार्गी सघ की कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता की द्योतक है। उनकी विचार धारा के कुछ नमूने 'श्रमणोपासक, मे नियमित रूप मे प्रकाशित होते रहे हैं। कई जैन कथानको पर भी उन्होंने खूब विस्तृत रूप म प्रकाश डाला है। शताब्दी के प्रसग से मैं प्रस्तुत लेख द्वारा अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हू।



जैसे दीपक के प्रकाश के सामने अन्धकार नही रह सकता, उसी प्रकार शील के प्रकाश के सामने पाप का अन्धकार नही ठहर सकता। मगर पाप के अन्धकार को मिटाने और शील के प्रकाश को फैलाने के लिए दृढता, धैर्य और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

गरिमामय व्यक्तित्व

श्री मोतीलाल सुराना

[१]

बड़ों की बडी बातें :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब तथा आचार्य श्री हस्ती-मलजी महाराज साहब का जब सगम हो गया तो विहार भी एक साथ ही हुआ। दोनो आचार्यों एव साथी सन्त–समुदाय को पहुचाने भी बडी सख्या मे श्रावक–श्राविकाए एकत्रित हुई थी। गाव की सीमा के बाहर जन समुदाय को आचार्य श्री जवाहरलाल जी म ने मगलिक सुनकर वापस लौट जाने का अव-सर देखने को कहा। अत मगलिक फरमाने के लिये प्रार्थना की गई। दोनो आचार्यश्री वहा से भिन्न–भिन्न दिशा मे विहार करने वाले थे। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा न केवल वय मे ही, अपितु दीक्षा मे भी काफी बडे थे। परिपाटी के अनुसार तथा अनुशासन के लिहाज से तो मगलिक फरमाने के अधिकारी आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा ही थे पर वडो की तो वातें ही वडी होती हैं। स्वयं आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा ने आचार्य श्री हस्तीमल जी म सा को मगलिक फरमाने के लिये आग्रह किया। आचार्य श्री हस्तीमल जी म सा से मगलिक सुनकर जनता–जनार्दन वापिस लौट गई। सच है, जो दूसरो को वडा समझता है, वही वडा होता है।

[२]

सहज विनम्रता :

महात्मा गाधी आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के स्थान पर पधारने वाले थे। शाम का समय निश्चित हुआ था। आचार्यश्री ने वार्ता-लाप के समय की स्थिति को पहले से सोचा। राष्ट्र के सर्वोच्च नेता राष्ट्रपिता आयेंगे, तब क्या मैं पाट पर बैठा रहू तथा महात्मा जी नीचे फर्श पर बैठें,